गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

दसवाँ अंक–2018

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल – 132001, हरियाणा

Day &
वी. प्रधान

गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

दसवाँ अंक–2018

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल – 132001, हरियाणा

अनुज कुमार, राज पाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, स्नेह नरवाल एवं सोनिया श्योरान (2018) गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल – 132001, पृष्ठ संख्या – 112

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

दसवाँ अंक

सम्पादक मंडल :

मुख्य सम्पादक : अनुज कुमार

सम्पादक : राज पाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, स्नेह नरवाल एवं सोनिया श्योरान

संरक्षक एवं प्रकाशक : ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान,

करनाल – 132001, हरियाणा

दूरभाष : 0184–2267490 फैक्स : 0184–2267390

वेबसाइट : www.iiwbr.icar.gov.in

प्रतियाँ : 300

छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

मुद्रण : एरोन मीडिया

यू.जी. 17, सुपर मॉल, सेक्टर–12, करनाल

दूरभाष : 9896433225, 9996547747

प्राक्कथन

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा किसानों के द्वारा गेहूँ की खेती में हर वर्ष नये कीर्तिमान स्थापित किए जा रहे हैं। विगत छः वर्षों में गेहूँ का क्षेत्रफल लगभग 30 मिलियन हैक्टर रहा है तथा इसी समय में गेहूँ का उत्पादन 93.5 मिलियन टन से बढ़कर लगभग 100 मिलियन टन के पास पहुँच गया है। भारत में गेहूँ की उत्पादकता भी इन्हीं वर्षों में 31.2 कुंतल हैक्टर से बढ़कर 33.7 कुंतल हैक्टर हो गई है। तीव्र गति से हो रहे कृषि क्षेत्र में विकास के लिए सभी कृषक बधाई के पात्र हैं जिनके अथक प्रयासों से यह संभव हुआ है। किसानों ने कृषि की नवीनतम तकनीकियों को अपनाकर तथा कृषि वैज्ञानिकों की सलाहों पर अमल कर गेहूँ को यह ऊँचाई प्रदान की है।

''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा'' कृषि की नवीवतम तकनीकों एवं जानकारी को किसानों तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम है। इस माध्यम से भारतीय किसान कृषि से जुड़ी विभिन्न कृषि विधाओं को अंगीकृत करते हैं परिणामतः उचित लाभ प्राप्त कर जीविका में सुधार भी करते हैं। इस पत्रिका का यह अंक मुख्यतः **''टिकाऊ एवं सतत् कृषि के लिए उत्पादन प्रौद्योगिकियाँ''** विषय पर आधारित है। इस अंक में टिकाऊ एवं सतत् उत्पादन हेतु पठनीय लेख विभिन्न लेखकों द्वारा संकलित किए गए हैं जो कृषि उत्पादन बढ़ाने में उपयोगी होंगे।

विगत् वर्ष **''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा''** के नौवें अंक को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली द्वारा **''गणेश शंकर विद्यार्थी''** हिन्दी पत्रिका द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मैं पत्रिका के सम्पादक मंडल को हार्दिक बधाई देता हूँ साथ ही आशा करता हूँ कि यह पत्रिका किसानों एवं वैज्ञानिक के बीच एक मजबूत कड़ी बनी रहेगी तथा कृषि की नवीनतम विधियों को किसानों तक पहुँचाने का सराहनीय कार्य करती रहेगी।

मैं विभिन्न लेखकों को उत्कृष्ट लेख प्रदान करने एवं सम्पादक मंडल को इस महत्वपूर्ण अंक को रचनात्मक रूप देने के लिए बधाई देता हूँ तथा गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा के अनवरत प्रकाशन की कामना करता हूँ।

जय किसान, जय विज्ञान!

ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक
भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

आप सभी पाठकों के समक्ष भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल की वार्षिक हिन्दी पत्रिका **''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा''** का दसवाँ अंक प्रस्तुत करते हुए मुझे बेहद खुशी हो रही है। इस पत्रिका के माध्यम से हमारा लगातार प्रयास रहा है कि पाठकों को समसामयिक विषयों पर रोचक लेख प्रस्तुत किए जाएं साथ ही कृषि से जुड़ी हुई विभिन्न विधाओं का समुचित प्रतिनिधित्व हो।

सभी लेखकों के सराहनीय योगदान व सम्पादक मंडल के रचनात्मक प्रयासों की वजह से इस पत्रिका के नौवें अंक (वर्ष 2017) को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रतिष्ठित **''गणेश शंकर विद्यार्थी''** हिन्दी पत्रिका द्वितीय पुरस्कार से नवाजा गया। स्वर्णिमा पत्रिका के नौ वर्षों के स्वर्णिम सफर में यह दूसरा अवसर था जब इसे यह सम्मान मिला है।

कृषि के क्षेत्र में नित नए प्रयोगों के साथ–साथ पाम्परिक तकनीकों के समावेश से कृषि को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है तथा उसी भूखंड से सतत् उत्पादन की परिकल्पना भी की जा सकती है। दसवाँ अंक **''टिकाऊ एवं सतत् कृषि के लिए उत्पादन प्रौद्योगिकियाँ''** विषय पर आधारित है। इस अंक के सभी लेख, पाठकों विशेषकर किसानों के लिए रोचक एवं ज्ञानवर्धक साबित होंगे ऐसा हमारा प्रयास है। इस अंक में दक्ष तकनीकों से उत्पादन, जैविक खेती, जैव उर्वरकों का प्रयोग, जल संरक्षण की विधियाँ, मोबाईल ऐप, आदि पर लेख संकलित हैं। साथ ही किसानों के भी लेख सम्मिलित हैं जो अन्य किसानों के लिए प्रेरणा के स्त्रोत्र साबित होंगे।

मैं सम्पादक मंड़ल के सभी सदस्यों को इस पत्रिका को नई ऊँचाई पर ले जाने के लिए बधाई देता हूँ और आभार भी प्रकट करता हूँ साथ ही सभी लेखकों को उनके अतुलनीय योगदान के लिए धन्यवाद देता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि **''गेहूँ एवं जौ स्वार्णिमा''** का दसवाँ अंक पाठकों को खूब पसंद आएगा।

इस हिन्दी पत्रिका के प्रबुद्ध पाठकों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे इस अंक में प्रकाशित विभिन्न लेखों के बारे में अपनी प्रतिक्रियाएं एवं सुझाव अवश्य भेजें। आप सभी की प्रतिक्रिया और सुझाव इस हिन्दी पत्रिका को और रोचक एवं उपयोगी बनाने में अहम भूमिका अदा करेगी।

जय हिन्द!

अनुज कुमार
प्रधान वैज्ञानिक, मुख्य संपादक एवं प्रभारी राजभाषा

विषय सूची

क्र.सं.	अंतर्वस्तु एवं लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	**दक्ष तकनीकियों द्वारा टिकाऊ खेती एवं सतत् उत्पादन** अनुज कुमार, राज पाल मीना, आर.एस. छोकर, सेन्दिल आर. एवं रमेश चन्द	01
2	**कृषि में पुआल प्रबंधन** गरिमा सिंगरोहा, सतीश कुमार एवं चंद्रनाथ मिश्र	04
3	**जैविक खेती में उन्नत जल प्रबंधन** रणबीर सिंह, मुकेश कुमार सिंह एवं रिंकी	06
4	**जैविक खेती : संपोषणीय विकास के नये आयाम** विकास कुमार, पवन कुमार, गौतम कुमार प्रियाजोय कर एवं चन्दन कुमार राय	08
5	**जैविक खेती में समन्वित कीट, रोग एवं सूत्रकृमि प्रबंधन** हेमराज गुर्जर एवं विष्णु शंकर मीना	10
6	**गेहूँ की फसल पर धान के भूसे का सकारात्मक प्रभाव** अंकिता झा, राजीव रंजन, राज पाल मीना, आर.के. शर्मा एवं आर.एस. छोकर	14
7	**किसानों को लाभान्वित करती टिकाऊ खेती** दीपक, विष्णु कुमार एवं ए.एस. खरब	16
8	**भारत में जल की उपलब्धता एवं पारम्परिक जल संरक्षण के उपाय** राज पाल मीना, अनुज कुमार, कर्णम वेंकटेश, राहुल कुमार एवं अंकिता झा	18
9	**हरी खाद ढैंचा द्वारा लवणग्रस्त मृदाओं का सुधार** देवेंद्र दम्बीवाल, मनीष कुशवाहा एवं गोविन्द मकराना	20
10	**आधुनिक तकनीकों से सटीक कीट प्रंबधन** जयंत यादव, पूनम जसरोटिया, प्रेम लाल कश्यप, सुधीर कुमार एवं कविंदर	21
11	**भारत के उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि प्रणालियाँ** आर. करूप्पैयन, राजेश कुमार, बृजमोहन सिंह बघेल एवं रविकान्त अवस्थी	23
12	**गेहूँ की खेती में जैव उर्वरक** अंजु, डी.पी. सिंह, सुधीर कुमार, पी.एल., कश्यप, ईश्वर सिंह एवं कृष्ण गोपाल	32
13	**भारत में सिंचाई जल एवं कृषि** राज पाल मीना, अनुज कुमार, कर्णम वेंकटेश एवं अंकिता झा	34
14	**किसानों की आय को दोगुना करना–रणनीति** निशा कटारिया, सतीश कुमार एवं चंद्र नाथ मिश्र	37
15	**उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की प्रमुख फसलों में लगने वाले मुख्य रोग व उनका प्रबंधन** रविन्द्र कुमार, अनुजा गुप्ता, राजेश कुमार मीना एवं वी.के.	39
16	**फसल उत्पादन में बीज उपचार की भूमिका** अनुज, पूनम जसरोटिया प्रेम लाल कश्यप एवं सुधीर कुमार	42
17	**कृषि फसलों में सुत्रकृमियों से आर्थिक नुकसान एवं प्रबंधन** हेमराज गुर्जर, विष्णु शंकर मीना, लोकेश कुमार एवं डा. सुरेश कुमार	44
18	**धान उत्पादन एवं जलवायु परिवर्तन** रेनू सिंह, रूमा दास एवं श्रीला दास	47
19	**गेहूँ की फसल में अन्तस्थ ताप का दुष्प्रभाव, सम्बंधित शोध तथा किस्मों का विकास** संतोश कुमार बिश्नोई, जोगेन्द्र सिंह, राजेन्द्र कुमार, चरण सिंह एवं प्रियरंजन कुमार	48

20	**फसल संरक्षण** राहुल कुमार	53
21	**गेहूँ में बिजाई के समय का महत्त्व** शारिक अली, सोनू सिंह यादव, सतीश कुमार एवं चंद्र नाथ मिश्र	56
22	**जैव प्रौद्योगिकी द्वारा कृषि में उन्नति** रिंकी, अंकिता पाण्डेय, राकेश, योगेश कुमार एवं माम्रुथा एच.एम.	59
23	**गेहूँ का बीज उत्पादनः आय वृद्धि के लिए एक उपयोगी व्यवसाय** विजय राणा, रवि शर्मा, आशिमा एवं शुभांशु अनुभव	61
24	**समृद्ध भारत की आधारशिला किसान** ऋषिपाल गंगवार, स्नेहांशु सिंह, सुरेश कुमार एवं संजय कुमार सिंह	65
25	**अनाज का सुरक्षित भंडारण** उत्तम कुमार, राकेश कुमार एवं हरदेव राम	68
26	**भण्डारण एवं प्रंसस्करण का गेहूँ की पौषणिक गुणवत्ता पर प्रभाव** ओम प्रकाश गुप्ता, गोपाल रेड्डी के, स्नेह नरवाल, वनिता पाण्डेय, प्रदीप शर्मा, संजय कुमार सिंह, तुषार खन्डाले, रितु सैनी, विपिन कुमार मलिक, अनुज कुमार एवं सेवा राम	70
27	**सीलिएक रोगः कारण और निवारण** स्नेह नरवाल, ओ पी गुप्ता, वनिता पाण्डेय, रीतू सैनी एवं सेवा राम	72
28	**समन्वित फार्म प्रबंधन द्वारा किसानों की आय में वृद्धि** विष्णु शंकर मीना, हेमराज गुर्जर एवं शिरीष शर्मा	73
29	**भारत में मशरूम की खेती की संभावनाएँ** जे.के. पाण्डेय, अनुज कुमार, एवं राजेन्द्र कुमार	75
30	**रागी की खेती** रामेती जांगिड़, सुनील कुमार, दिक्षा ताजन एवं क्रांति पाटिल	76
31	**वर्तमान परिदृश्य में भारतवर्ष की देशज पशुधन विविधता एवं उनका संरक्षण** अविनाश सिंह, डा. सोनिका अहलावत, डा. रेखा शर्मा एवं डा. मधूसुदन टांटिया	80
32	**ऊँट का दुधः एक प्राकृतिक, प्रभावशाली एवं औषधीय आहार** हिमानी शर्मा, रेणुका नेहरा, सोनिया अहलावत, रेखा शर्मा एवं एम.एस टांटिया	83
33	**मोबाईल एप्लिकेशन ''जौ जानकारी''** सुमन लता, ए.एस. खरब, दिनेश कुमार एवं विष्णु कुमार	86
34	**बायोडीजल उत्पादन** रेनू सिंह एवं रूमा दास	87
35	**मिट्टी की तैयारी हेतु पावर चालित मशीनरी** अनुराग पटेल एवं मुकेश कुमार सिंह	91
36	**भारतीय कृषक व उन्नत आटोमेटिक डेरी प्रोसेसिंग** चित्रनायक, मंजुनाथ एम, महेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी एवं जितेन्द्र डबास	95
37	**लाभकारी आय हेतू उपयुक्त कृषि प्रणालीः वानिकी/कृषि वानिकी में महिलाओं का योगदान** पंकज कुमार सिंह एवं शिव मंगल प्रसाद	99
38	**उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकियों द्वारा टिकाऊ एवं सतत् कृषि** महेन्द्र सिंह कटियार	100
39	**टिकाऊ खेती की प्रौद्योगिकियाँ** आनन्द कुमार ठाकुर	102
38	**राजभाषा खण्ड**	103

दक्ष तकनीकियों द्वारा टिकाऊ खेती एवं सतत् उत्पादन

अनुज कुमार, राज पाल मीना, आर.एस. छोकर, सेन्दिल आर. एवं रमेश चन्द
भा.कृ.अनु.प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ कृषि एक व्यवसाय ही नहीं अपितु एक परंपरा है एक संस्कृति है। शायद ही कोई राष्ट्र ऐसा है जहाँ पर इतनी बड़ी जनसंख्या कृषि पर आधारित हो। **''कृषि धर्मम् कृषि कर्मम्''** तो हमारे आचार–व्यवहार में बसता है। परन्तु कृषि एक व्यवसाय है यह आज भी भारतीय कृषि की परिकल्पना है। कुछ हद तक व्यवसायीकरण ने इसको प्रभावित किया है परन्तु व्यवसायीकरण की सोच ने ही कई अन्य पहलुओं पर हमारा ध्यान खींचा है और इसी की वजह से नई तरह की समस्याएँ, चुनौतियाँ हमारे सामने आई हैं। पारंपरिक कृषि प्रणालियों की जगह आधुनिक प्रणालियों ने ले लिया है। सभी फसल–चक्रों में कुछ न कुछ बदलाव आया है। गुजर–बसर वाली खेती ने आधुनिक खेती का रूप ले लिया और ऐसी किस्मों व तकनीकों का विकास किया जाने लगा जिसकी वजह से किसान अधिक से अधिक उत्पादन ले सके। इसी का नतीजा है कि खेती में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग बहुत बढ़ा, सिंचाई के लिए भूमिगत जल का अधिकाधिक दोहन हुआ, मृदा की संरचना एवं उसकी उर्वरा शक्ति प्रभावित हुई। कुछ ऐसे फसल–चक्रों का प्रादुर्भाव हुआ है जो अधिक मात्रा में कृषि आदानों की मांग वाली थीं। नई–नई फसलों को नए–नए क्षेत्रों में उगाया जाने लगा जिसके परिणामस्वरूप मृदा का स्वास्थ्य प्रभावित हुआ, भूमिगत जल का स्तर गिरता चला गया, साथ ही भूमि उत्पादकता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा। यदि हम इनकी विवेचना करें तो पाते हैं कि हमारी प्राचीन कृषि व्यवस्था सभी घटकों को संजोये हुए थी जिसमें पशुपालन, तालाब, बागवानी, वानिकी आदि का भी भरपूर खयाल रखा जाता था। यह परंपरा किसान के सभी संसाधनों का समुचित उपयोग और संवर्धन का भी खयाल रखती थी। परंतु आधुनिक खेती रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों जैसे पानी को अत्यधिक दोहन पर आधारित होने की वजह से सतत् कृषि व टिकाऊ कृषि की परिकल्पना कहीं न कहीं धूमिल होती नजर आ रही है। अतः वर्तमान स्थिति में स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियों द्वारा फसलों का उत्पादन कर अधिक उपज के साथ–साथ संसाधनों का संरक्षण भी होगा तथा पर्यावरण की सुरक्षा भी होगी।

टिकाऊ खेती के लिए स्मार्ट तकनीकें

जल दक्ष तकनीकें

पानी के बिना धरती पर जीवन की परिकल्पना नहीं हो सकती। कृषि की भी व्याख्या जल के बैगर संभव नहीं है। खेती में भी पानी का भरपूर मात्रा में इस्तेमाल होता है। इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि एक किलोग्राम चावल के उत्पादन में 3000 से 5000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है जबकि वहीं एक किलोग्राम गेहूँ के लिए 600–800 किलोग्राम पानी चाहिए। इसका मतलब है कि धान–गेहूँ फसल प्रणाली उच्च जल मांग वाली फसल प्रणाली है जिसका विविधीकरण आवश्यक है। यह उन्हीं क्षेत्रों में टिकाऊ हो सकता है जहाँ औसत वर्षा साल में 1000 मिलीमीटर से ऊपर या उसके आस–पास हो। उसी प्रकार गन्ना में बहुत पानी की आवश्यकता होती है। अतः ऐसी फसलों की खेती में जल प्रबंधन का विशेष ध्यान बुआई से ही रखना चाहिए। धान–गेहूँ की बुआई में जीरो टिलेज, टर्बो

हैप्पी सीटर तथा रोटरी डिस्क ड्रील का प्रयोग कर गेहूँ की बिना जुताई बिजाई की जा सकती है। वहीं धान के लिए सीधी बिजाई तकनीक का प्रयोग कर 30 प्रतिशत तक जल बचाया जा सकता है। सिंचाई की नई तकनीकों जैसे फव्वारा विधि या टपका विधि का प्रयोग कर जल उपयोग दक्षता को सुधारा जा सकता है। सब्जियों की मेड़ पर खेती और फिर टपका विधि से सिंचाई जल संरक्षण का उत्तम जरिया है। बहुत सी ऐसी फसलें हैं जिनको मेंड़ पर लगाने से सिंचाई में लगने वाले पानी की बचत होती है और उत्पादन भी अधिक मिलता है। बागवानी फसलों में भी सूक्ष्म सिंचाई प्रबंधन तकनीकों का प्रयोग काफी बढ़ा है और इसे प्रचारित करने की आवश्यकता है। इन पद्धतियों से 30–37 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना की परिकल्पना **''प्रतिबूंद से अधिक उत्पादन''** को साकार करने लिए कारगर उपाय किया जाना चाहिए। फसल–प्रणालियों में कम पानी की मांग वाली फसलों का भी समावेश उतना ही आवश्यक है। साथ ही

स्थानीय जलवायु और पानी की उपलब्धता को ध्यान में रखकर ही फसलों का चयन करना चाहिए ताकि क्षेत्र विशेष की खेती टिकाऊ बनी रहे और सतत् उत्पादन की प्रक्रिया बिना व्यवधान के चलती रहे।

पोषक दक्ष तकनीक

फसलों के उत्पादन में पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कुल 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता पौधों के पूरे जीवन काल में होती है। इनमें नत्रजन, फास्फोरस और पोटाश को वृहत् या प्राथमिक पोषक तत्वों की श्रेणी में रखा गया है। जिनकी आवश्यकता पौधों को अधिक मात्रा में होती है। द्वितीयक पोषक तत्वों में कैल्शियम, मैग्निशियम और सल्फर आता है। प्राथमिक पोषक तत्वों की तुलना में इनकी आवश्यकता कम मात्रा में होती है। इसके बाद सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिसमें बोरान, क्लोरीन, ताँबा, लोहा, मैग्नीज, मॉलिब्डिनम और जस्ता की बहुत कमतर मात्रा पौधों को चाहिए। लेकिन किसी भी सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की वजह से उत्पादन एवं उत्पाद की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। अतः फसल व मृद्रा के अनुरूप उर्वरकों और पोषक तत्वों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा चलाई गई मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का लाभ सभी किसान भाईयों का उठाना चाहिए। सरकार पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए अनुदान दे रही है ताकि **"स्वस्थ धरा खेत हरा"** की परिकल्पना को साकार किया जा सके।

अतः किसानों को पोषक प्रबंधन के अनूठे पहलुओं को अपनाकर कृषि लागत को कम करते हुए उत्पादन को बढ़ाना चाहिए। कुछ कारगर प्रौद्योगिकियों को अपनाना टिकाऊ खेती के संदर्भ में तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है जैसे –

1. समेकित पोषक तत्व प्रबंधन
2. स्थान विशेष के लिए पोषक तत्व प्रबंधन
3. मृदा स्वास्थ्य कार्ड आधारित पोषण प्रबंधन
4. ग्रीन सीकर तथा लीफ कलर चार्ट के प्रयोग से नत्रजन प्रबंधन
5. न्यूट्रियेंट एक्सपर्ट के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग
6. दो धन्य फसलों के बीच एक दलहनी फसल की खेती
7. हरी व भूरी खाद का प्रयोग
8. गेहूँ में सिंचाई से पहले यूरिया का प्रयोग
9. संरक्षण कृषि द्वारा फसल अवशेषों को मृदा में मिलाना

3. उर्जा दक्ष तकनीकियाँ

कृषि कार्यों को संपादित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होता है जिस पर धन का व्यय भी होता है और उत्पादन लागत भी बढ़ती है। कृषि में उत्पादन लागत को कम करने के लिए ऐसी प्रौद्योगिकियों को अमल में लाना चाहिए जो ऊर्जा दक्ष हों। जैसे : गेहूँ की बीजाई के लिए शून्य जुताई तकनीकें ; जीरो टिलेज मशीन, टर्बो हैप्पी

सीडर एवं रोटरी डिस्क ड्रील, साथ ही मेड़ पर बुआई से भी उर्जा की बचत की जा सकती है। धान की बुआई के लिए सीधी बीजाई धान की मशीन का प्रयोग किया जा सकता है। फसल की कटाई के लिए एस एम एस युक्त कंबाईन हार्वेस्टर के प्रयोग द्वारा कटाई की प्रक्रिया का भी सम्पादन बहुत कम समय में हो सकता है। सिंचाई के लिए उपयोग किये जाने वाले डीजल आधारित पंप सेट की जगह बिजली आधारित पंप का प्रयोग कर उर्जा की बड़ी मात्रा में बचत की जा सकती है। जुताई से लेकर कटाई एवं गहाई तक उर्जा दक्ष तकनीकों के प्रयोग सेउत्पादन लागत में कमी की जा सकती है।

(4) कार्बन दक्ष तकनीकें

खेती में कार्बन का उत्सर्जन फसलों, कृषि प्रणालियों, फसल–चक्रों तथा कृषि क्रियाओं पर निर्भर करता है। अगर गेहूँ की खेती के संदर्भ में बात करें तो संसाधन सरक्षण तकनीकों; जैसे जीरों टिलेज/टर्बो हैप्पी सीडर से बुआई, पुआल के प्रबंधन के लिए रीपर, चॉपर, बेलर का प्रयोग, फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने के लिए रिवर्सिबल एम बी प्लाउ का प्रयोग आदि को प्रश्रय दिया जाना चाहिए। सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से इस तरह की तकनीकों को बढ़ावा दिया जा रहा है। आवश्यकता है किसानों को जागरूक कर इन तकनीकों को अंगीकृत करवाने की। टिकाऊ कृषि एवं सतत् उत्पादन का एक मुख्य घटक कृषि अपशिष्टों का प्रसंस्करण भी है जिसका प्रबंधन कर कार्बन उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।

(5) जलवायु स्मार्ट प्रौद्योगिकी

मौसम बदल रहा है इसके सभी साक्ष्य मौजूद है और इस पर गहन मंथन भी हो रहा है ताकि इसका कृषि उत्पादन पर कम से कम प्रभाव पड़े। तापमान में वृद्धि, वर्षा का असमय और अधिक मात्रा में होना, चक्रवात, तूफान आदि द्वारा हाल के वर्षों में कृषि काफी प्रभावित हुआ है और आने वाले समय में और

अधिक प्रभावित होने की संभावना है। फसलों में लगने वाले कीट व बिमारियाँ भी जलवायु से प्रभावित है। अतः बदलते जलवायु परिवेश में नई बिमारियों व नए कीड़ों के उद्भव को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। अतः ऐसी स्थिति में जलवायु दक्ष प्रौद्योगिकियों को पहचानने, उनका पुनर्मूल्यांकन एवं प्रसार द्वारा बहुत हद तक उत्पादन प्रणाली को चाक–चौबंद किया जा सकता है। इस संबध में संरक्षण कृषि के सिद्धांतों को अमल में लाना तर्क संगत लगता है। पशुपालन के क्षेत्र में देशी नस्ल के पशुओं को बढ़ावा देकर मौसम की विसंगतियों से पड़ने वाले दुष्प्रभाव से निपटा जा सकता है। किसानों को मौसम से संबंधित जानकारी के लिए विभिन्न स्रोतों से जारी होने वाले पुर्वानुमान के हिसाब से ही कृषि कार्यों को संपादित करना चाहिए। साथ ही नुकसान से होने वाली आर्थिक क्षति के लिए प्रधानमंत्री कृषि बीमा योजना का भी लाभ उठाना चाहिए।

हाल के वर्षों में कुछ जलवायु दक्ष ग्राम भी बनाए गए हैं जिनमें जलवायु दक्ष तकनीकों, जलवायु सूचना सेवाओं के मार्फत समग्र ग्राम विकास को मूर्त रूप दिया जा रहा है। इन गाँवों में मौसम दक्ष, जल दक्ष, कार्बन दक्ष, नाईट्रोजन दक्ष, उर्जा दक्ष व ज्ञान दक्ष क्रियाओं द्वारा कृषि एवं ग्रामीण विकास के कार्यों को गति एवं नई दिशा दी जा रही है।

(6) ज्ञान दक्ष तकनीकें

कहते हैं कि आज की खेती ज्ञान व कौशल आधारित हो गई है। टिकाऊ खेती का मुख्य घटक है; कृषि लागत में कमी, मुनाफादायक मूल्य की प्राप्ति तथा गैर कृषि आधारित रोजगारों के सृजन द्वारा अतिरिक्त आय की प्राप्ति। अतः हमारी खेती जितनी परिशुद्ध होगी उतनी ही टिकाऊ होगी। इसके लिए किसानों को उन उत्पादन से लागत कम होती है साथ ही उत्पादन भी बढ़ता है। मुनाफा देने वाली वैकल्पिक फसलों की जानकारी साथ ही उपभोक्ताओं के मांग के आधार पर फसलों का उत्पादन भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। आय के अन्य स्त्रोत जैसे पशुपालन, मछलीपालन, मुर्गीपालन, खुम्ब की खेती, बागवानी, सब्जियों की खेती कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन से संबधित ज्ञान तथा उनको बाजार में बेचने में हुनर आदि का समुचित ज्ञान किसानों को आर्थिक आत्मनिर्भरता देता है और एक टिकाऊ कृषि प्रणाली का सृजन करता है जो सतत् उत्पादन और लाभार्जन का जरिया बन सकें। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता कृषि उत्पादों के विपणन की है। इसी दिशा में किसानों का क्षमता विकास जरूरी है। उन्हें सक्षम बनाकर कृषि उत्पादन की प्रक्रिया को पुनर्नियोजित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

आज के दौर में कृषि उत्पादन करने में किसान सक्षम तो हो गया है परन्तु मृदा स्वास्थ्य, सिंचाई जल, कृषि लागत, कृषि रसायनों का प्रयोग आदि के बारे में चैतन्य रहने का समय आ गया है। साथ ही उसे कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण और विक्रय जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं पर अधिक सशक्त होने का समय आ गया है। तभी उसको उपभोक्ता द्वारा खर्च किए गए पैसे का अधिकतम हिस्सा प्राप्त हो सकता है। इंटनेट के युग में बाजार की समुचित व्यवस्था द्वारा टिकाऊ खेती के सपने को साकार किया जा सकता है। सतत् उत्पादन कायम रखा जा सकता है और वह भी तब जब किसानों को इन सभी क्रियाओं से समुचित लाभार्जन हो।

कृषि में पुआल प्रबंधन

गरिमा सिंगरोहा, सतीश कुमार एवं चंद्र नाथ मिश्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है जहाँ 50 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि उत्पादों की खेती में लगी हुई है। भारत गेहूँ, चावल, गन्ना और कई अन्य फसलों के उत्पादन में अग्रणी देशों में से एक है। कृषि में कृषि उत्पादों के साथ बड़ी मात्रा में कृषि अपशिष्ट भी उत्पन्न होते हैं। भारत 371 मिलियन टन का वार्षिक सकल फसल अवशेष उत्पादक है,

जिसमें से गेहूँ और धान के अवशेष क्रमशः 27–36 प्रतिशत और 51–57 प्रतिशत है। भारत प्रतिवर्ष 98 मिलियन टन धान का उत्पादन करता है जिसमें 130 मिलियन टन पराली कृषि अवशेषों के रूप में उत्पादित होती है। सबसे बड़ी समस्या मुख्यतः धान के बचे हुए अवशेषों की होती है। अत्याधुनिक मशीनों के उपयोग से भारतीय कृषि को बहुत फायदा हुआ है जैसे की कम लागत, कम समय और आसानी से कार्यों का निपटारा हो जाना। अधिक लागत और समय की बचत को देखते हुए किसान, मजदूरों से कटाई की बजाय कंबाईन हार्वेस्टर से कटाई को तवज्जों देते हैं, जिसमें तने का बड़ा भाग पुआल के रूप में पीछे रह जाता हैं। किसान आम तौर पर पुआल को खेत में ही आग लगा देते हैं। गेहूँ की बिजाई और धान की कटाई के बीच में बहुत कम अंतराल होने के कारण किसानों को यह तरीका सबसे आसान लगता है परन्तु इसके बहुत से दुष्प्रभाव हैं।

पराली जलने से होने वाले दुष्प्रभाव

1. एयरोसोल बनने से वायु की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव

पराली के जलने से हानिकारक धुआँ निकलता है जो प्रदूषण का कारण बनता है। भूसी को खुला जलाना प्रकृति में अपूर्ण दहन है, इसलिए वायुमंडल में बड़ी मात्रा में जहरीले प्रदूषक उत्सर्जित होते हैं। प्रदूषकों में मीथेन, कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), वाष्पशील कार्बनिक यौगिक (VOC) और कार्सिनोजेनिक पॉलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन जैसी हानिकारक गैसें होती हैं। राख और धुएँ के बादल हजार किलोमीटर से अधिक की यात्रा कर सकते हैं। धुएं से बने बादल वायु में प्रदूषकों के स्तर को कई गुना तक बढ़ा सकते हैं, जिससे सांस लेना मुश्किल हो जाता है। वातावरण में जारी होने के बाद, ये प्रदूषक वातावरण में फैल जाते हैं, शारीरिक और रासायनिक परिवर्तन से गुजर सकते हैं और अंततः मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। बार–बार पुआल/भूसी जलने से भूरे बादलों का निर्माण होता है जो स्थानीय वायु गुणवत्ता, वायुमंडलीय दृश्यता और पृथ्वी की जलवायु को प्रभावित करते हैं।

2. मृदा स्वास्थ्य और उपजाऊपन क्षमता में गिरावट

किसान सोचते हैं कि पुआल जलाना एक त्वरित, आसान और सस्ता तरीका है क्योंकि इससे सभी अवांछित पुआल, पौधें और झाड़ियाँ नष्ट हो जाती हैं। लेकिन जमीन पर पुआल जलाने से मिट्टी में पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं, जिससे इसका उपजाऊपन कम होता है। खेत में बार–बार भूसी जलने से माइक्रोबियल सूक्ष्मजीव आबादी (मिट्टी मृदा) स्थायी

चित्र:2 पराली को आग लगाकर प्रबंधन

रूप से कम हो जाती है। पुआल के जलने से मिट्टी के तापमान में वृद्धि होती है और 75 मिमी स्तर तक की मिट्टी में कार्बन–नाइट्रोजन संतुलन तेजी से प्रभावित होता है।

3. मानव, पशु और पक्षियों के लिए स्वास्थ्य संबंधी खतरा

अवशेषों के जलने से हानिकारक विषैले तत्वों का निर्माण होता है जो की मानव स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध होते हैं। लगातार ऐसी विपरीत गुणवत्ता की हवा में साँस लेने से दिल की बिमारियों, अस्थमा, खांसी और अन्य साँस सम्बन्धी समस्याओं में इजाफा होता है। इसके कारण आरबीसी की संख्या कम हो

जाती है जोकि मानव रक्त में ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता को प्रभावित करती है। पुआल जलने से न सिर्फ मनुष्य बल्कि पशु और पक्षी भी प्रभावित होते हैं। गंभीर जोखिम के कारण पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी होती है। कभी–कभी रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड की अधिक मात्रा की वजह से पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है। किसान मित्र कीट और सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, केंचुआ आदि आग के कारण मर जाते हैं। सरीसृप की तरह सांप, मेंढक, केंचुए, छिपकली आदि बिलों में ही मर जाते हैं। पेड़ों की पत्तियां जल जाने से चारों ओर हरियाली खत्म हो जाती है। इसके कारण पक्षियों के घोंसले भी बिखर जाते हैं। गौरैया, चील, गिद्ध आदि प्रजातिओं के विलुप्त हाने का एक मुख्य कारण पुआल का जलना भी है।

4. पौधों के पोषक तत्वों / वनस्पति का नुकसान

अवशेष जलने से पोषक तत्वों की हानि और मिट्टी के गुणों को नुकसान पहुँचता है। अनुमान के अनुसार एक टन भूसा जलाने से 5.5 किलोग्राम नाइट्रोजन, 2.3 किलोग्राम फास्फोरस, 1.2 किलोग्राम सल्फर, और 25 किलोग्राम पोटैशियम का नुकसान होता हैं। पुआल में मौजूद कार्बन, नाइट्रोजन और सल्फर पूरी तरह से जल जाते हैं और वातावरण में खो जाते हैं। फसल के अवशेष मिट्टी को मुख्य रूप से जैविक कार्बन और नाइट्रोजन के साथ समृद्ध करते हैं। वातावरण में खत्म हो जाने के कारण इन पोषक तत्वों को जैविक या अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से मृदा को फिर से उपलब्ध करना पड़ता है जिसमे और अधिक लागत आती है।

पुआल जलाने से होने वाले हानिकारक परिणामों को देखते हुए नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने सभी उत्तरी राज्यों को कड़े दिशा–निर्देश दिए हैं, जिससे पुआल जलना बंद किया जा सके। हाल ही में हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के किसानों द्वारा पुआल जलाने के मामलों में दंडित किया गया है। सरकार, वैज्ञानिकों और किसानों की ओर से पुआल प्रबंधन प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए आक्रामक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। पुआल जलाने के कुछ संभावित विकल्प निम्नलिखित हो सकते हैं;

विकल्प

1. पुआल इकट्ठा करने के लिए किसानों को पुआल संग्रह मशीन प्रदान करना या सब्सिडी प्रदान करना।
2. खेत के मैदान में डंठल को तोड़कर उपयोगी खाद में बदलना।
3. एकत्र किए गए ठूंठ में से पशुओं के लिए चारा बनाना।
4. धान के पुआल का उपयोग करके ईंधन उत्पन्न करने के लिए जैव ईंधन संयंत्रों की स्थापना।
5. सरकार को लाभकारी रूप से उपयोग करने के लिए पुआल / पतवार या ठूंठ संग्रह में सहयोग करने के लिए सीमेंट उद्योग जैसे लाभकारी उद्योगों को शामिल या आमंत्रित करना चाहिए।
6. पैकेजिंग उद्योगों को आमंत्रित करने के लिए पैकेजिंग बक्से बनाने के लिए ठूंठ इकट्ठा करना जो थर्मोकोल और प्लास्टिक जैसी अन्य गैर–डिस्पोजेबल सामग्रियों की तुलना में अधिक पर्यावरण के हितैषी हैं।
7. ज़ीरो–टिलेज एक और विकल्प है, जो बिना ठूंठ निकाले गेहूँ के बीज बोता है। ट्रैक्टर पर लगे हुए हैप्पी सीडर्स, रोटावेटर और स्ट्रॉ–रीपर एक साथ धान के ठूंठ को काटते हैं और गेहूँ के बीज को बोते हैं, कटे हुए ठूंठ को गीली घास के रूप में जमा करते हैं।
8. धान की पुआल में राख असामान्य रूप से अधिक होती है जो कि 92–95 प्रतिशत सिलिका होती है। यह अत्यधिक हल्की और झरझरी होती है। इसकी अद्भूत पोषक क्षमता और इंसुलेटिंग गुणों के कारण यह कई औद्योगिक अनुप्रयोगों में उपयोगी होती हैं जैसे कि निर्माण सामग्री में एजेंट को मजबूत करने के रूप में कार्य करना।

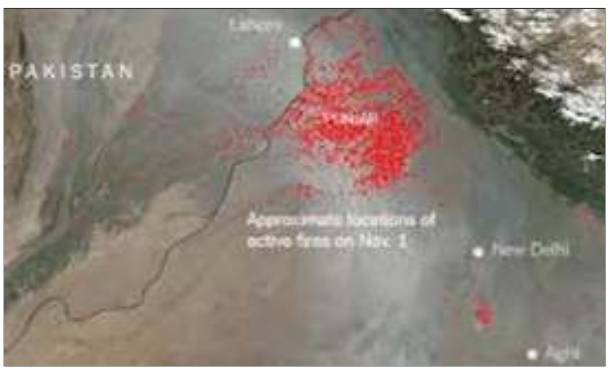

चित्र:1 नासा द्वारा जारी, 7 मई, 2018 कृषि अवशेषों को जलाने के लिए लगाई गई आग

जैविक खेती में जल प्रबंधन

रणबीर सिंह[1], मुकेश कुमार सिंह[1] एवं रिंकी[2]
भा.कृ.अनु.सं.–फार्म संचालन सेवा इकाई, नई दिल्ली
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जैविक खेती एक टिकाऊ उत्पादन प्रक्रिया है, जो पूरी तरह से प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है तथा जिसमें कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों के सड़े–गले अवशेषों को सम्मिलित किया जाता है, जो विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं को भोजन प्रदान करते हैं। साथ ही केंचुआ दीमक और अन्य प्रकार के कीट–पतगों को आवास और अन्य सुविधायें भी मिलती है, जो अपने–अपने तरीकों से मृदा को समृद्ध करते हैं। संक्षिप्त शब्दों में हम कह सकते हैं कि जैविक कृषि एक उत्पादन प्रणाली है जो मिट्टी, पारिस्थितिक तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखती है। प्रकृति ने स्वयं संचालन के लिये जीवों का विकास किया है, जो प्रकृति को पुनः ऊर्जा प्रदान करने वाली जैव संयंत्र भी हैं। यही जैविक व्यवस्था खेतों में कार्य करती है। जैविक खेती में संश्लेषित रसायनों का प्रयोग न करने के कारण सतत् मृदा लम्बे समय तक बनी रहती है, पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं होता तथा कृषि लागत घटने व उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ने से किसानों को अधिक लाभ भी मिलता है। जैविक खेती, रासायनिक खेती की अपेक्षा सस्ती, स्वावलम्बी व स्थायी है। जैविक खेती में फसल पोषण, अपनाने की विधियों, प्रबंधन प्रक्रियाएं, जैविक फसल सुरक्षा के नवीनतम एवं आधुनिक मानदंडों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में जैविक खेती द्वारा स्वच्छ भारत, जैविक भारत, समृद्ध भारत, जैविक भोजन, सतत् कृषि विकास, आमदनी वृद्धि हेतु परम्परागत भारतीय खेती को नवीन आयामों तक ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख में जैविक खेती में उन्नत जल प्रबंधन विधियों का समझाने का प्रयास किया जा रहा है जो किसानों के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करेगी।

प्रायः यह देखा गया है कि जैविक पदार्थ सड़ने के बाद मृदा में सम्मिलित किये जाये तो बेहतर होता है। इसलिए हमारी पारम्पारिक कृषि विधियों में पहले हर प्रकार के कार्बनिक कूड़े–कचरे को घरेलू स्तर पर गोबर के साथ अच्छी तरह से सड़ाकर तैयार किया जाता था जिसमें प्रायः 4–6 माह का समय लगता था। अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद जिसमें विभिन्न प्रकार के अन्य कार्बनिक पदार्थों को भी मिलाकर सड़ाया जाता था एक बहुत ही ऊर्जावान, ताकतवर, पोषक जीवाणुओं से भरी हुई, भोज्य पदार्थो से युक्त चीज को मृदा में सम्मिलित करने से विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म और अति सूक्ष्म जीवधारियों को कई प्रकार की रासायनिक और जैविक अभिक्रियाओं को करने हेतु एक उत्तम वातावरण प्राप्त होता था। इसके लिए मिट्टी का नम होना आवश्यक रहता था। इस नम वातावरण के कारण सूक्ष्म और अति सूक्ष्म जीव अपने क्रिया–कलाप सुचारु रूप से संचालित करते हैं। यद्यपि कार्बनिक पदार्थ जल को अवशोषण कर लेते है और फिर उन्हें धीरे–धीरे छोड़ते हैं जिससे मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है क्योंकि कार्बनिक पदार्थों द्वारा अवशोषित जल जड़ क्षेत्र को छोड़कर मिट्टी की निचली सतहों में विलीन होकर जल के तल तक शीघ्रता से नहीं पहुँच सकता और साथ ही साथ मृदा की पारगम्यता अधिक हो जाने के कारण वहाँ तक पहुँचने की प्रक्रिया में समय लगता है इसलिए वहाँ जल की मात्रा कम हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जड़ क्षेत्र में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा अधिक होगी उसमें जल की मात्रा अधिक होती है साथ ही जल की उपलब्धता का समय भी बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त यदि सिंचाई के द्वारा ऐसी मृदाओं को जल उपलब्ध करवाया जाये अथवा थोड़ी और साधारण वर्षा काल में नमी प्राप्त हो सकें तो भी मृदा में जल की मात्रा बढ़ जायेगी। यदि वातावरण शुष्क हो, तापमान में वृद्धि हो तो मृदा की ऊपरी परतों में से जल का वाष्पन हो जायेगा परन्तु ऊष्मा न पहुँच पाने के कारण मृदा की निचली परतों के तापमान में वृद्धि न के बराबर होगी और फिर निचली परतों से मृदा जल का वाष्पन कम हो जायेगा। परिणामस्वरूप मृदा की निचली परतों में जल बना रहेगा जिससे अपेक्षाकृत इस प्रकार की परिस्थितियों में पौधों की जीवित रहने की सम्भावना प्रबल होगी। यदि पौधे अधिक समय तक जीवित रहेंगें तो निश्चित रूप से प्रकाश संश्लेषण करेंगे और अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ पैदा करेंगे और इस प्रकार यह चक्र चलता ही रहेगा। इस प्रकार वनस्पतियाँ और मृदा एक–दूसरे के पूरक रहते हुए एक दूसरे की मदद करते रहेंगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि जैविक खेती के लिए उन्नत जल प्रबंधन की क्या–क्या विधियाँ हैं अथवा वह कौन–कौन सी प्रविधियाँ हैं जो उन्नत जल प्रबंधन के द्वारा जैविक खेती को बढ़ावा दे सकें, इनमें से कुछ इस प्रकार हैं जैसे;

1. स्थायी संसाधन प्रबंधनः मृदा, जल, जलवायु, पेड़–पौधे और वनस्पतियाँ खेती के विकास में काम आने वाले ऐसे मूलभूत प्राकृतिक संसाधन हैं जिन पर कई बातों का विपरीत प्रभाव पड़ता है। खेती के उचित विकास के लिए इनका संरक्षण एवं प्रबंधन आवश्यक है। जिनके संरक्षण हेतु पर्यावरण के अनुरूप खेती करनी होगी जिससे कि परिस्थितिकीय संतुलन बना रहे और निवेशों के कुशलतापूर्वक उपयोग से आर्थिक लाभप्रदता बनाये रखने में मदद मिले। हमें ऐसी तकनीकों को अपनाना होगा जिससे खेती उत्पादन और अनाज की गुणवत्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और साथ ही जमीन, जल एवं विविधता भी असंतुलित न हो। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने, वायु, जल तथा खाद्य पदार्थों की शुद्धता बनाये रखने के लिए तथा मृदा की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए हमें कार्बनिक खादों

का प्रयोग करके जैविक खेती को बढ़ावा देना होगा।

2. भूमि का उचित प्रबंधनः मृदा उन्नतिकरण में मृदा के चार प्रमुख गुणों; मृदा संरक्षण, जल धारण क्षमता, अंतस्यंदन तथा मृदा निर्माण प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए सफल फसल–चक्रण, सिंचाई, उर्वरण इत्यादि पर ध्यान दिया जाता है। अतः जैविक खेती में मृदा प्रबंधन एवं संरक्षण के लिए जल प्रयोग को लेकर कुछ उपाय इस प्रकार हैं:

- अपवाह को नियमित व निर्देशित करना
- मृदा जल के प्रभाव को कम करना
- मृदा की अंतस्यंदन क्षमता को बढ़ाना
- मृदा संरचना में सुधार करना
- भूमि को समतल रखना
- जल का कम से कम प्रयोग
- मृदा को जल सोखने का पर्याप्त समय मिलना
- जल का ह्रास न होना

3. अन्तर्वर्तीय फसलः इसके अंतर्गत अनाज वाली फसलों के साथ दलहनी फसलों को एक निश्चित क्रम या अनुपात में उगाया जाता है। इन फसलों की नमी और पोषक तत्वों की आवश्यकता भिन्न होने के कारण यह एक दूसरे के साथ अच्छी प्रकार सामजंस्य स्थापित कर लेती हैं। यदि नमी के अभाव में एक फसल को क्षति होने की स्थिति आ जाती है तो कम अवधि वाली साथ में उगाई गई दूसरी फसल से कुछ पैदावार मिल जाती है। इसलिए जैविक खेती में अन्तवर्तीय फसल जल संरक्षण के साथ एक निश्चित आमदनी वृद्धि का स्रोत भी है।

4. मृदा संरक्षणकारी फसलें: मृदा संरक्षणकारी फसलें उन फसलों को कहा जाता है, जो बिना किसी निराई–गुड़ाई से उत्पन्न होती हैं तथा मृदा सतह पर कम समय पर अच्छा आवरण प्रदान कर मृदा क्षरण को रोकने में सहायक होती है। इनके अन्तर्गत दलहनी फसलें एवं घासें आती हैं। ये फसलें मृदा संरचना में सुधार एवं मृदा की जल सोखने की क्षमता में वृद्धि करती है।

5. खेतों में पलवार का प्रयोगः फसल की पंक्तियों के बीच

यदि घास, खरपतवार, पुआल आदि फैला दिया जाये तो मृदा की ऊपरी सतह से वाष्पीकरण द्वारा होने वाले ह्रास को कम किया जा सकता है। पलवार बिछाने के लिए यदि फसल अवशेष की व्यवस्था न हो सकें तो हल्की निराई–गुड़ाई करके खेत को खरपतवार मुक्त रख कर भी मृदा सतह से वाष्पीकरण को कम किया जा सकता है।

6. जीवांश खादों का उपयोगः जीवांश खाद के बिना जैविक खेती अधूरी है, क्योंकि यह खाद भूमि में उपस्थित अधुलनशील तत्वों को घुलनशील बनाकर उनकी उपलब्धता बढ़ा देता है। जीवांश खाद के उपयोग से भूमि की भौतिक दशा में सुधार आता है और भूमि में जल धारण क्षमता बढ़ जाती है।

7. खेत में नमी संरक्षण के उपायः जैविक खेती में ग्रीष्मकालीन जुताई अवश्य करनी चाहिए। इससे न केवल कीट–व्याधियों का नाश होता है बल्कि खेत में नमी का संरक्षण भी होता है तथा खेत की मृदा में ढेले बन जाने से वर्षा जल सोखने की क्षमता बढ़ जाती हैं जिससे खेत में अधिक समय तक नमी बनी रहती है। ग्रीष्मकालीन जुताई से खेत का जल खेत में ही रह जाता है तथा बहकर नष्ट नहीं होता तथा वर्षा जल के बहाव के द्वारा होने वाले मृदा क्षरण में भारी कमी होती है। ज्वार की बुवाई चौरस खेत में करने के अपेक्षा खेत में चौड़ी उठी हुई क्यारियों के बीच जल संचयन के लिए पतली नाली छोड़ दी जाये तो इन कूड़ों में वर्षा का जल संचय रहेगा, जिससे फसल की वृद्धि और उपज पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। बलुई मृदाओं में गोबर की खाद खेत में डालकर मृदा के जैविक कार्बन स्तर में वृद्धि की जा सकती है। खेत में जैविक कार्बन का स्तर उपयुक्त मात्रा में बनाये रखना फसल उत्पादन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इससे खेत में नमी धारण क्षमता में वृद्धि होगी, साथ ही साथ मृदा में कार्बन–नत्रजन अनुपात संतुलित रहता है। इस प्रकार अनेक उपायों द्वारा खेत में नमी का संरक्षण किया जा सकता है।

8. सिंचाई की उन्नत विधियाँः जल के कम ह्रास और इसकी गुणवत्ता में वृद्धि करने हेतु सिंचाई की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया गया है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि फव्वारा विधि के प्रयोग से, गेहूँ की उपज क्यारी विधि की अपेक्षा 33 से 37 प्रतिशत अधिक हुई। बूंद–बूंद (टपका विधि) द्वारा 30 से 50 प्रतिशत तक जल की बचत की जा सकती है। जैविक खेती पर्यावरण की शुद्धता को बढ़ाने वाली, मृदा का प्राकृतिक स्वरूप बनाए रखने वाली, जल धारण क्षमता बढ़ाने वाली, संश्लेषित रसायनों का प्रयोग करते हुए किसानों को कम से कम लागत में लंबे समय तक स्थिर व अच्छी गुणवत्ता देने वाली पारम्परिक पद्धति है।

जैविक खेतीः संपोषणीय विकास के नये आयाम

विकाश कुमार, पवन कुमार गौतम, प्रियाजोय कर एवं चन्दन कुमार राय
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

जैविक खेती कृषि की वह विधि है जो रासायनिक उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों का न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है तथा जिसमें भूमि की उर्वरक शक्ति को बनाए रखने के लिये फसल–चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग किया जाता है। यह खेती रासायन–मुक्त हैं जिसमें सूक्ष्म जीवों का उपयोग पौधों के उचित विकास तथा उत्पादन में वृद्धि हेतु किया जाता है। यह मूल रूप से वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा परंपरागत संस्पर्श है। जैविक खेती में रसायनों के उपयोग की मनाही है क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य मिट्टी की उर्वरकता में सुधार कर पारिस्थितिक तंत्र को बनाये रखना है। इसे शुरू करने से पूर्व मिट्टी का परीक्षण कर पोषक तत्वों की आवश्यकता तथा अधिकता का पता करना चाहिए। फसल क्रमावर्तन के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि एक फसल या एक तरह की फसल को लगातार न लगाये क्योंकि इससे कुछ पोषक–तत्वों का अत्याधिक ह्रास होता है तथा इससे हानिकारक सूक्ष्म जीवों की अधिकता हो जाएगी अन्य कारकों में पौधों से पौधे के बीच उचित दूरी, सिंचाई की उचित अवधि तथा आवृति, मिश्रित फसल इत्यादि का ध्यान रखना चाहिए। कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशक, खरपतवारों के बजाय हरी खाद, गोबर–खाद, केंचुआ–खाद, पंचगव्य, रसोई–कचरे, हड्डी–मील, नीम–केक और अन्य कार्बनिक पदार्थों के उपयोग को प्राथमिकता देनी चाहिए। प्राकृतिक कीटनाशक जैसे पाइरेथ्रिन, क्रिस्टेंथेमम के फूलों से बने योजकों को प्रयोग में लाना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में खेत को गहराई से जोतकर अन्दर से मिट्टी को ऊपर के सतह पर लाने से हानिकारक सूक्ष्म जीवों से निदान मिलता है। रोगग्रस्त पौधों को, उनके हिस्सों तथा वैकल्पिक मेजबानो (जैविक और अजैविक जिनमें सूक्ष्म जीव प्रतिकूल समय में रह अपने जीवन–चक्र को पूरा करते हैं) को हटा देना चाहिए।

जैविक खेती की महत्ता

परम्परागत खाद्यन्न उत्पादन प्रौद्योगिकियाँ अत्याधिक उर्जा–ग्रहण करती हैं जिसके फलस्वरुप कृषि रसायन द्वारा मिट्टी और खाद्य–प्रदूषण, भू–जल के स्तर में गिरावट तथा मिट्टी की उर्वरकता में कमी आई है। इसके परिणामस्वरुप प्राकृतिक संसाधनों में अपरिवर्तनीय नुकसान भी हुए हैं जैसे कि मिट्टी का क्षरण तथा पानी के स्तर में गिरावट। उपचारात्मक उपायों में राष्ट्रीय जल संसाधन विकास कार्यक्रम के तहत लोगों की सामूहिक सहभागिता सुनिश्चित होनी चाहिए, ताकि जल स्तर बना रहे तथा मृदा–अपरदन को नियंत्रित किया जा सके। कृषि से होने वाले मुनाफे में कमी के कारण राष्ट्रीय स्तर पर कृषि को बढ़ावा देने वाली योजनायें हैं जैसे कि परम्परागत कृषि विकास योजना को वृहत पैमाने पर प्रश्रय दिया जाना चाहिए।

जैविक खेती से होने वाले लाभ

1. भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि
2. सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है, रासायनिक संयोजको का न्यूनतम प्रयोग
3. फसलों की उत्पादकता में वृद्धि
4. भूमि की गुणवत्ता में सुधार
5. भूमि की जल धारण क्षमता में बढ़ोत्तरी
6. भूमि के जल स्तर में वृद्धि
7. मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी
8. कचरे का उपयोग खाद बनाने में होने से बीमारियों की आवृत्ति में गिरावट
9. फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि
10. अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में उत्पाद गुणवत्ता में वृद्धि

जैविक खेती हेतु प्रमुख जैविक खाद एवं दवाईयाँ

1. नाडेप खादः यह खाद विधि नारायण देवराव पंडरी पांडे द्वारा विकसित की गइ थी। भू–नाडेप/कच्चा नाडेप परम्परागत तरीके के विपरीत बिना गड्ढा खोदे जमीन पर एक निश्चित आकार (12फीट, 5फीट, 3फीट अथवा 10फीट, 6फीट, 3फीट) का ख़ाका देकर व्यवस्थित ढ़ेर बनाया जाता है। इसकी भराई नाडेप टांके अनुसार की जाती है। इस प्रकार लगभग 5 से 6 फीट तक सामग्री जम जाने के बाद एक आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारों ओर से गीली मिट्टी व गोबर से लीपकर बंदकर कर दिया जाता है। बंद करने के दूसरे अथवा तीसरे दिन जब गीली मिट्टी कुछ कड़ी हो जाये तब गोलाकार अथवा आयताकार टीन के डिब्बे से ढेर की लंबाई व चौड़ाई में 9–9 इंच के अंतर पर 7–8 इंच के गहरे छिद्र बनाये जाते हैं। छिद्रों से हवा का अवागमन होता है और आवश्यकता पड़ने पर पानी भी डाला जा सकता है, ताकि बायोमास में पर्याप्त नमी रहे और विघटन क्रिया अच्छी तरह से हो सके। इस तरह से भरा बायोमास 3 से 4 माह के भीतर भली–भांति पक जाता है तथा अच्छी तरह पकी हुई, भुरभुरी दुर्गंध रहित भूरे रंग की उत्तम गुणवत्ता की जैविक खाद तैयार हो जाती है। नाडेप का

एक अन्य प्रकार बीएचयू–नाडेप के रूप में जाना जाता

2. भभूत अमृत पानी: यह 250 ग्राम देसी घी और 500 ग्राम शहद का मिश्रण 10 किलोग्राम गोबर में तैयार किया जाता है। इस सामग्री को 200 लीटर पानी के साथ मिलाया जाता है और फसल बुवाई के बाद में क्षेत्र छिड़का जाता है।

3. अमृत संजीवनी: यह 60 किलोग्राम गोबर, 3 किलोग्राम यूरिया, 3 किलोग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट का बना किण्वित है। 1.0 किलोग्राम पोटाश का म्यूरेट, 2 किलोग्राम अखरोट केक और 200 पानी लीटर का मिश्रण एक बर्तन में दो दिनों के लिए किण्वित किया जाता है। इस सामग्री का एक क्षेत्र में दो–तीन बार फसल पर छिड़काव किया जाता है।

4. जैव उर्वरक: एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिल्लुम, हिर्जोबियम, जैसे सूक्ष्मजीवों, नीली हरी शैवाल इत्यादि को घुलनशील कर विभिन्न फसलों में जैव उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। नीली हरी शैवाल और अजोला का प्रयोग धान में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

5. केंचुआ खाद: केंचुआ खाद उत्पादन के लिए केंचुओं को विशेष प्रकार के गड्ढों में डाल, केचुओं के माध्यम से अनुपयोगी जैविक वानस्पतिक जीवांशो को अल्प अवधि में जैविक खाद का निर्माण किया जाता है। इसके उपयोग से मृदा के स्वास्थ्य में वांछनीय सुधार होता है एवं मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है जिससे फसल उत्पाादन में स्थिरता के साथ गुणात्मक सुधार होता है। इस प्रकार केंचुओं के माध्यम से जो जैविक खाद बनायी जाती है उसे वर्मीकम्पोमस्ट कहते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन के अवयव

केंचुओं का चुनाव: ये केचुए भूरे लाल रंग के एवं छोटे आकार के होते हैं, जो अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थों को विघटित करते हैं।

नमी की मात्रा: केंचुओं की अधिक बढ़वार एवं त्वरित प्रजनन के लिए 30 से 35 प्रतिशत नमी होना अति आवश्यक है।

वायु: उचित वातायन की व्यवस्था तथा गड्ढे की गहराई ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

अंधेरा: केचुओं के गड्ढों के ऊपर बोरी अथवा छप्परयुक्त

छाया या मचान की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि अंधेरा सुनिश्चित हो सके।

पोषक पदार्थ: अपघटित कूड़े–कचरे एवं गोबर की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

भारत के 99 प्रतिशत खाद उत्पादक असंगठित लघु क्षेत्र से सम्बंधित है जिनमें से अधिकांश बिना प्रमाणीकरण करवाएँ जैविक खाद की आपूर्ति करते हैं। अधिकांश जैविक खेती अपनाने वाले किसानों की यह शिकायत है कि उन्हें उक्त खाद से की हुई उपज की आधा उपज भी जैविक खाद से प्राप्त नहीं होता है। इसके कारण अन्य किसान जैविक खेती करने का इरादा त्याग देते हैं जोकि जैविक खेती न अपनाए जाने का यह एक बड़ा कारण है। भारत में जैविक खेती की संभावनाओं को भुनाने के लिए सरकार को जैविक खेती करने वाले किसानों को प्रमाणीकृत खाद स्वयं के संस्थानों से सब्सिडी पर उपलब्ध करवाए जाने की जरुरत है। सरकार को चार साल के लिए आमदनी की गारंटी का बीमा सुनिश्चित करना चाहिए ताकि प्रारम्भिक सालों में होने वाले घाटे की क्षतिपूर्ति की जा सके। पशुपालन को बढ़ावा देना एक उचित विकल्प है जिससे किसान जैविक खाद के लिए पूरी तरह बाजार पर आश्रित नहीं रहेंगे।

निष्कर्ष

भारत को परम्परागत धरती पोषण की नीति को अपनाकर गोबर, गोमूत्र और पत्ते की पौष्टिक खाद का प्रयोग करना चाहिए तथा रासायनिक पदार्थों का नियंत्रित प्रयोग करना चाहिए। पिछले कुछ ही दशकों से रासायनिक खाद का अंधाधुंध प्रचार–प्रसार किया गया है और इसका आयात बड़े पैमाने पर हुआ है। गोबर इत्यादि की खाद से किसान पीढ़ियों से अपनी खेत की उपज बढ़ा रहे हैं। इसके व्यापक असर होने के लिए सरकार को हानिकारक रासायनिक खाद का आयात बंद कर देसी खाद से खेती करने को प्रोत्साहित करना चाहिए। जैविक खेती करने के लिए किसान को गायों का पालन कर गोबर और गोमूत्र द्वारा जैविक खाद बना के खेतों में उसका उपयोग करना चाहिए।

जैविक खेती में समन्वित कीट, रोग एवं सूत्रकृमि प्रबंधन

हेमराज गुर्जर एवं विष्णु शंकर मीना
कृषि अनुसंधान केंद्र–नोगावा, अलवर
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय–जोबनेर, जयपुर

जैविक खेती वर्तमान भारत में अहम आवश्कता है क्योंकि रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों के अंधाधुंध उपयोग से भूमि प्रदूषण के साथ–साथ मनुष्य जीवन एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ रहा हैं साथ ही मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म जीव, एक्टिनोमाईसीट्स एवं केचुए नष्ट हो गए हैं जिसके कारण मृदा प्रदूषण एवं पशओुं तथा मनुष्य में विभिन्न प्रकार के रोग पैदा हो रहे हैं। इन सबको ध्यान में रखते हुए कृषि फसलों में होने वाले रोग, कीट एवं सूत्रकृमियों का समन्वित नियंत्रण जैव कारक एवं जैव कीटनाशियों द्वारा किया जाये तथा इनसे होने वाले भारी नुकसान से फसलों को बचाया जा सके। कृषि फसलों में रोग विभिन्न प्रकार के रोग कारकों के कारण पैदा होते हैं। इन रोग कारकों में मुख्य रूप से फफूंद, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि तथा हानिकारक सूक्ष्म जीव होते हैं। रोगों के अलावा विभिन्न प्रकार के कीट फसलों को नुकसान पहुंचाते हैं। कीट फसलों को उगने से लेकर पकने तक एवं फसल कटाई उपरांत भी भंडारग्रहों में भी नुकसान पहुंचाते हैं जिसमे विशेषकर भंडारगृह के कीट जैसे, खपरा बीटल, धान की इल्ली, ढोरा, पल्स बीटल आदि है। रोग एवं कीटों के अलावा फसलों को नुकसान पहुँचने में सूत्रकृमियों की भी अहम भूमिका होती हैं। सूत्रकृमि फसलों के अदृश्य शत्रु होते हैं। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए किसानों की फसलों को रोग, कीट एवं सूत्र कृमियों से बचाने हेतु कृषि फसलों में जैविक एवं समन्वित कीट प्रबंधन की आवश्यकता हैं। समन्वित कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के प्रबंधन हेतु जैविक खेती में निम्न अवयवों का उपयोग किसान भाइयों को करना चाहिए।

उन्नत कृषि क्रियाओं द्वारा नियंत्रण

कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के प्रबंधन के तरीकों में ऐसे समाधान शामिल हैं जिनमें कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के प्रबंधन के लिए नियमित रूप से की जाने वाली खेती के दौरान या तो कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों को नष्ट कर दिया जाता हैं या उनसे फसल को होने वाले आर्थिक नुकसान से बचाया जाता हैं। इन विभिन्न तरीकों को निम्नानुसार प्रयोग किया जाना चाहिए।

गर्मियों में गहरी जुताई करना एवं खरपतवारों को खेतों से नष्ट करना

नर्सरी तैयार करने के लिए एवं खेत तैयार करने के लिए गर्मियों में 15 मई से 31 मई के मध्य दो बार गहरी जुताई करनी चाहिए। जिससे कीटों, रोग कारकों एवं मृदा सूत्रकृमियों का सफाया किया जा सकता है। खेतों में खरपतवारों एवं एकांतर होस्ट प्लांट्स को हटा देना चाहिए, खेतों को साफ–सुथरा रखना चाहिए जिससे कीट, रोग कारकों एवं सूत्रकृमियों को आश्रय नहीं मिले एवं उन्हें जीवन–चक्र पूरा करने में बाधा उत्पन्न हो जाए। जंगली घास को हटाने का उपयुक्त प्रबंध किया जाना चाहिए। यह जाना–माना तथ्य है कि जंगली घास फसलों के सूक्ष्म पोषक तत्वों को तो कम करती ही है साथ ही कई कीटों का अच्छा ठिकाना भी होती है।

कार्बनिक खादों का उपयोग करना

मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों की कमी की जाँच करवाना चाहिए ताकि उसके हिसाब से खाद एवं जैव उर्वरकों का उपयोग किया जा सके। भूमि में 10–12 टन गोबर की खाद 4–5 कुंतल केंचुआ खाद एवं अखाद्य खलियों का प्रति हैक्टर की दर से फसल बुवाई से 20–21 दिन पहले खेत तैयार करते समय भूमि में मिलाया जाना चाहिए। मृदा में ज्यादा से ज्यादा कार्बनिक खादों का उपयोग करने से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती हैं जिससे भूमि की उर्वरक क्षमता बढ़ती है एवं उसकी भौतिक दशा में सुधार होता हैं। साथ ही भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ जाती हैं जिससे रोग, कीट एवं सूत्रकृमियों का प्रकोप कम होता हैं। जैव उर्वरकों (बायोफर्टीलाइजर) के उपयोग को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

बुआई से पहले साफ, स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का चुनाव करना

फसल बुवाई हेतु काम में लिए जाने वाले बीजों को फफूंद जैवकारक, जीवाणु जैवकारक एवं बायोपेस्टिसाइड्स द्वारा उपचारित करके बुआई के अनुकूल बनाना चाहिए। बीज उपचार हेतु एफ.आई.आर. थम्ब रुल का उपयोग करना चाहिए जिसमे सबसे पहले फंगल जैवकारक इसके बाद बायोपेस्टिसाइड्स एवं अंत में राइजोबियम कल्चर से बीज उपचार करना चाहिए। बीज उपचार करने से बीजों द्वारा उत्पन्न होने वाले कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों पर नियंत्रण पाया जा सकता। कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के प्रति प्रतिरोधी किस्मों के बीजों का चुनाव करना चाहिए जिससे कीटों के प्रबंधन में काफी सहायता मिलती है।

गैर मेजबान फसलों (नॉन होस्ट क्रोप्स) एवं निर्धारित दूरी रखना

फसलों को बोने के क्रम में गैर मेजबान फसलों (नॉन होस्ट क्रोप्स) को शामिल करना चाहिए जिससे मिट्टी जनित रोगों को कम करने में सहायता मिलती है। पौधों के बीच पर्याप्त दूरी रखना जिससे पौधे स्वस्थ रहते हैं। हवा, प्रकाश, जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सके एवं कीट, रोगों तथा सूत्रकृमियों के लिए आसानी से शिकार नहीं बन पाते हैं।

फसलों में उचित जल प्रबंधन

पानी के ठहराव से बचने के लिए वैकल्पिक रूप से गीला करना व सुखाना क्योंकि मिट्टी में अधिक समय तक रहने

वाली नमी रोग, कीट एवं सूत्रकृमियों के विकास में सहायक होती है, विशेषकर मिट्टी से होने वाले रोगों के लिए। अधिक जल के कारण मृदा अम्लीय प्रकृति में बदल जाती है जिससे कम जल चाहने वाली फसलों को उगाना असंभव हो जाता हैं। अतः फसलों की जल मांग के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए जिससे उत्पादन में बढ़ोत्तरी हो सके तथा कीट, रोग, एवं सूत्रकृमियों का प्रकोप कम हो साथ ही फल, सब्जी एवं खाद्यान्न स्वस्थ, स्वादिष्ट एवं उच्च गुणवत्ता वालो पैदा हो सके एवं किसान भाईयों को लाभ मिल सकें।

फसलों की उचित दूरी एवं क्रम से बुआई करना

प्रायः किसानों की कोशिश यह होनी चाहिए कि सभी फसलों की बुआई एक बड़े क्षेत्र में एक ही समय पर की जाए जिससे कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों के विकास के लिए विभिन्न तरीके से उगी हुई फसलें न मिल सकें तथा कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों का विकास रुक जाये। यदि कीट, रोग एवं सूत्रकृमि फसलों को नुकसान पहुंचाते हुए दिखाई देते हैं तो सारे खेतों में नियंत्रण की कार्रवाई एक साथ की जा सकती है।

खेतों के मुहानों और किनारों पर ट्रैप फसलें लगाना

ऐसी फसलें लगाना जो कीटों को खेतों के किनारों पर ही पकड़ लें। ऐसी कई फसलें है जिन्हें किन्हीं खास कीटों से नुकसान पहुंचने की आशंका रहती है। इन्हीं पर कीट सबसे अधिक हमला बोलते हैं। ऐसी फसलों को खेतों के किनारों पर लगा कर कीटों को वहीं पर रोका जा सकता है और उन्हें समाप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की फसल में भिन्ड़ी की फसल का उपयोग सर्वाधिक होता हैं। इन फसलों पर एकत्रित होने वाले कीटों को या तो जैवकीटनाशकों द्वारा मारा जा सकता है या वे अपने प्राकृतिक दुश्मनों के शिकार बन सकते हैं। मूल फसल की बुआई से पहले खेतों के किनारों पर ऐसी फसलें लगाना चाहिए जिनमें कीट वहीं किनारों पर ही उलझ कर रह जाएं और उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी न हो पाए।

पौध का बेयर रूट डीप ट्रीटमेंट, सीडलिंग रूट डीप ट्रीटमेंट या सीड सोकिंग ट्रीटमेंट

कीट, रोग एवं सूत्रकृमी प्रभावित क्षेत्र में सब्जियों एवं धान की पौधों की जड़ो को, बीजों को 4 घंटे तक जैव कीटनाशी नीम या आक स्रवण या जैव कवकनाशी के 220 प्रतिशत घोल में रूट डिप या सीडलिंग उपचार करना चाहिए या डुबोकर रखना चाहिए। ऐसा करने से उनमे कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों का प्रकोप नहीं हो पाता हैं तथा फसल स्वस्थ रहती हैं।

इंटर क्रॉपिंग या मल्टीपल क्रॉपिंग करना

फसल प्रणाली में जहाँ भी संभव हो वहाँ पर इंटर क्रॉपिंग या मल्टीपल क्रॉपिंग करना चाहिए। क्योंकि कोई भी एक कीट सभी प्रकार की फसलों को नुकसान नहीं पहुँचाता और ऐसी फसलें निरोधक का काम भी करती हैं। इस प्रकार कीटों को उनकी पसंदीदा फसलों से दूर रखने से भी कीटों पर काबू पाया जा सकता है। साथ ही किसानों की फसल खराब भी कम होता हैं एवं प्रतिकूल मौसम की परिस्थितियों में भी किसानों को फसल उत्पादन हो जाता है एवं किसानों को आय प्राप्त हो जाती है।

भूमि स्तर के अत्यधिक करीब तक कटाई करना

ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि कुछ कीटों, रोगों एवं सीडगाल सूत्रकृमियों का विकास अधिकतर पौधे के ऊपरी हिस्सें पर ही होता है जिससे कि अगली फसल में भी कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों के विकास की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार यदि पौधे के उस हिस्से को काट दिया जाए जिस पर इनका प्रकोप अधिक होता हैं तो अगली फसल में कीटों, रोगों एवं सीडगॉल सूत्रकृमियों के विकास को रोका जा सकता हैं। अतः ग्रसित एवं इनसे प्रभावित फसलों को भूमि स्तर के अत्यधिक करीब तक कटाई करनी चाहिए।

पौधशाला (नर्सरी) में भूमि उपचार करना

नर्सरी भूमि को फॉर्मेएल्डीहाइड से उपचारित करना चाहिए जिससे मृदा जनित रोग उत्पन्न नहीं हो सके। 45 दिन बाद पौधे को मुख्य खेत में लगाने से पहले नर्सरी पौधो परं बायोपेस्टीसाइड का छिड़काव किया जा सकता है या उन्हें बायोपेस्टीसाइड में भिगोया जा सकता है। इससे पौधों को मिट्टी से होने वाले रोगों, कीटों एवं सूत्रकृमियों से बचाया जा सकेगा एवं फसल स्वस्थ तथा निरोगी रहेगी एवं उत्पादन भी अधिक प्राप्त होगा।

उद्यानो में कटिंग एवं प्रूनिंग करना

फलों के पेड़ों की छंटाई करते समय घनी, मृत, टूटी हुई एवं बीमार शाखाओं को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए। यदि छंटाई–कटाई के समय पेड़ को अधिक नुकसान हुआ है और उस टूटे हुए हिस्से को बोरडिओक्स पेस्ट या लाइम पेंट से ढक देना चाहिए या लेप कर देना चाहिए ताकि पौधों को कीटों, रोगों के आक्रमण से बचाया जा सके।

यांत्रिक तरीके

कीटों एवं सूत्रकृमियों के जीवन–चक्र की अवस्थाओं को नष्ट करना

कीटों एवं सूत्रकृमियों के अंडों, लार्वा, संक्रामक कीटों के प्यूपा, निम्फ (शिशु) और व्यस्कों को जहाँ भी संभव हो पौधों के रोगग्रस्त हिस्सों को नष्ट कर देना चाहिए। कीटों में मुख्यतः दो प्रकार का रूपान्तरण पाया जाता हैं जिसमे 1. पूर्ण रूपांतरण, इस प्रकार के कीटों के जीवन–चक्र में चार अवस्थायें (अंडा, लार्वा, प्यूपा एवं व्यस्क) होती हैं एवं 2. अपूर्ण रूपान्तरण, इस प्रकार के कीटों के जीवन–चक्र में तीन अवस्थायें (अंडा, निम्फ (शिशु) एवं व्यस्क) होती हैं । इन अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था पर कीटों को नियंत्रित किया जा सकता हैं। पूर्ण रूपांतरण वाले कीटों की नुकसान पहुँचाने वाली अवस्था मुख्यतः लार्वा एवं वयस्क होती हैं जबकि अपूर्ण रूपांतरण वाले कीटों में नुकसान पहुँचाने वाली अवस्था मुख्यतः निम्फ (शिशु) होती हैं। सूत्रकृमियों की नुकसान पहुचाने वाली अवस्था मुख्यतः दूसरी अवस्था होती हैं जिसे जुवेनाइल–2 के नाम से जाना जाता हैं।

बाँस के पिंजरे और चिड़ियों द्वारा नियंत्रण

खेतों में बाँस के पिंजरे, प्राकृतिक शत्रु और चिड़ियों के बैठने की जगह बनाना चाहिए और उनके अंदर पैरासीटाइज्ड अंडों को डालना चाहिए जिससे की प्राकृतिक दुश्मनों का जन्म हो सकें ऐसा करने से कीटों का नियंत्रण किया सकता

है। क्योंकि प्राकृतिक शत्रु एवं पक्षी नुकसान पहुँचाने वाले कीटों का भक्षण कर लेते हैं और फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों की संख्या में कमी आ जाती हैं और जहाँ संभव हो सकें वहा कीटों पर काबू पाया जा सकें।

लाइट ट्रैप्स एवं येलो स्टिकी ट्रैप्स का उपयोग करना

प्रकाश प्रपंच एवं येलो स्टिकी प्रपंच खेतों में लगाया जाये, इससे कीट आकर्षित होकर इनके अन्दर फंस जाते हैं। फंसने वाले कीटों को नष्ट किया जा सकता हैं। येलो स्टिकी प्रपंच के लिए किसान भाई खेतों में मटकी के ऊपर

पीला रंग पोतकर उसके ऊपर ग्रीस लगाकर उपयोग कर सकते हैं जिससे कीट उसपर चिपक कर मर जाएँ एवं फसलों की सुरक्षा हो सकें।

फेरोमोन हारमोंस का उपयोग करना

नर तथा मादा कीटों के जन्म की प्रक्रिया में रुकावट डालने हेतु कीटों के जीवन–चक्र के प्रत्येक स्तर पर निगरानी रखकर और मास ट्रैपिंग के लिए फेरोमोन का उपयोग करना चाहिए। फेरोमोन हार्मोन नर–मादा कीटों को आकर्षित करते हैं आकर्षण के बाद इन्हें इकट्ठा करके नष्ट कर कीटों का नियंत्रण किया जा सकता हैं।

आनुवंशिक तरीके

प्रतिरोधी एवं सहनशील किस्मों का चुनाव करना

उचित उपज दर के साथ अपेक्षाकृत कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के प्रति प्रतिरोधी (रेजिसटेंट) एवं सहनशील (टोलरेंट) किस्मों का चुनाव करना चाहिए। इस प्रकार चयनित की गयी किस्में कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के प्रति प्रतिरोध पैदा करती हैं इसके कारण इन कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों का जीवन–चक्र पूरा नहीं हो पाता तथा वे नष्ट हो जाते हैं। सहनशील किस्में कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों का प्रकोप होने के बाद भी इन किस्मों की वानस्पतिक वृद्धि अच्छी होती हैं तथा उत्पादन भी अच्छा होता हैं। जैसे सूत्रकृमियों के प्रति प्रतिरोधी किस्में टमाटर की हिसार ललित, जौ की राजकिरण एवं गेहूँ की मोल्या रोधक किस्मों का उपयोग किया जाए।

नियामक कार्रवाई

इस प्रक्रिया में नियामक नियम सरकार द्वारा तैयार किए गए है। इनके अंतर्गत कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों से ग्रसित बीजों और पौधों का देश में आना या देश के एक भाग से दूसरे भाग में ले जाना निषेध है। इन्हें संगरोध तरीके कहा जाता है। यह एक कानूनी तरीके से जिसके तहत दोषी पाए जाने पर उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जा सकती है तथा उस बीज एवं पौध विक्रेर्ता, कम्पनी का लाइसेंस रद्द किया जा सकता है। अतः पूर्णत प्रमाणित संस्था, फर्म एवं कंपनी से ही बीज एवं पौधे क्रय किये जाने चाहिए।

जैविक तरीके (बायोलोजिकल मैथड)

कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों का नियंत्रण जैविक तरीको से करने का अर्थ है जीवित जीवों द्वारा नियंत्रण करना जिसके अंतर्गत रोगाणु बायोएजेंट्स जैसे फंगस बायो एजेंट्स, विषाणु, बैक्टिरिअल बायोएजेंट्स, पैरासिटॉइड्स, प्रीडेटर्स एवं बायो पेस्टीसाइड्स होते हैं। ये रसायन रहित होते हैं तथा इनमे स्व–गुणित होने की क्षमता होती हैं। ये कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों के नियंत्रण के साथ–साथ फसलों को अतिरिक्त पोषण भी प्रदान करते हैं। आई.पी.डी.एन.एम. का सबसे महत्वपूर्ण अवयव जैविक नियंत्रण है। व्यापक अर्थ में बायोकंट्रोल का अर्थ है जीवित जीवों को प्रयोग कर फसलों को कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमियों से नुकसान होने से बचाना। कीटों में बीमारी पैदा करने वाले एजेंट को प्रयोगशाला में कम लागत पर द्रव्य या पाउडर फॉर्मुलेशन में बढ़ाया जा सकता है। इन घोलों को बायोपेसस्टिसाइड्स कहा जाता है। इन्हें किसी भी सामान्य रसायन कीटनाशक की तरह छिड़का जा सकता है।

रोगाणु

ये सूक्ष्म जीव होते हैं जो दूसरे जीवों में रोग का संचार कर देते हैं या उनमे जहर पैदा कर देते हैं, परिणामस्वरूप दूसरे जीव मर जाते हैं। रोगाणु के बड़े समूह फंगस, वायरस और बैक्टिरियां होते हैं। कुछ संक्रामक कीटों में कुछ नेमाटोड्स रोग पैदा कर देते हैं या उनमें जहर फैला देते हैं जिससे होस्ट कीट की मृत्यु हो जाती है।

1. फंगस के महत्वपूर्ण उदाहरण, पेसिलोमाईसीज लिलासिनस, ट्राईकोडरमा विरिडी एवं हर्जियानम, हरसुटेला, ब्यूवेरिया, नोम्यूरेन और मेटारहीजीबीअम होते हैं।
2. वायरस में सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण न्यूक्लियर पॉलिहेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.) और ग्रेनुओलोसिस वायरस हैं।
3. बैक्टिरिया में सबसे सामान्य उदाहरण पस्चुरिया पेनेट्रांस, श्युडोमोनास फ्लुओरेसेन्स एवं बेसीलस थरिंजीनसिस (बी.टी.), आदि हैं।

प्रीडेटर्स

ये स्वतंत्र रूप से रहने वाले जीव होते हैं, परभक्षी शिकार से बड़े होते हैं जो कि भोजन के लिए दूसरे जीवों पर निर्भर करते हैं

तथा शिकार का पूर्णतः भक्षण कर लेते हैं। उदाहरण के लिए मकड़ियां, ड्रेगन मक्खियाँ, डेमसेल मक्खी, लेडी बर्ड, भृंग, क्रायसोपा प्रजातियां एवं पक्षी आदि होते हैं।

पैरासाइट्स

ये परपोषी से छोटे होते हैं। परजीवी मिलकर परपोषी को क्षीण या कमजोर कर देते हैं जिससे होस्ट कीट की मृत्यु हो जाती हैं एवं कीट नियंत्रित हो जाता है।

ये ऐसे जीव हैं जो अपने अंडे उनके होस्ट्स के शरीर में या उनके ऊपर रखते हैं और होस्ट के शरीर में ही अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं। परिणामस्वरुप होस्ट की मृत्यु हो जाती है। पैरासिटॉइड्स होस्ट के विकास–चक्र पर निर्भर करता है जिसके आधार पर वह अपना जीवन–चक्र पूरा करता है। उदाहरण के लिए अंडा, लार्वा, एवं प्यूपा, एवं प्यूपल पैरासिटॉइड्स होते हैं। उदाहरण ट्राइकोग्रेमा, अपेंटल्स, बैराकॉन, किलोंस, ब्राकैमेरिया एवं सूडोगॉनोटोपस आदि की विभिन्न प्रजातियाँ हैं।

ई.पी.एन. (एंटोमो पैथोजेनिक निमेटोड्स)

लेपिडोप्टेरा गुण के अंतर्गत आने वाले कीट जैसे चने की सुंडी, शूट एवं फ्रूट बोरर, कट वर्म आदि के नियंत्रण के लिए ई.पी.एन. (एंटोमो पेथोजेनिक निमेटोड्स) का उपयोग जैविक नियंत्रण हेतु व्यावसायिक स्तर पर किया जा रहा है। इस प्रकार के ई.पी.एन. की फोर्मुलेसन बाजार मे डी.डी–136 के नाम से उपलब्ध हैं इसका पानी मे घोल बनाकर फसलों पर छिड़काव करना चाहिए। ई.पी.एन. की दो प्रजातियों का उपयोग जैविक नियंत्रण हेतु किया जाता हैं जिनमे 1. स्टेनरनिमा स्पेसिज तथा 2. हीटरोरेब्डीटीस स्पेसिज प्रमुख हैं। नुकसान पहुँचाने वाला कीट मरने के बाद स्टेनरनिमा स्पेसिज से नारंगी मे तथा हीटरोरेब्डीटीस स्पेसिज से ईंट जैसे लाल रंग मे बदल जाता हैं। ये प्रजातियाँ कीटों के शारीर मे बैक्टीरिया छोड़ देतीं हैं जिससे कीटों की मृत्यु हो जाती हैं। स्टेनरनिमा स्पेसिज तथा हीटरोरेब्डीटीस स्पेसिज क्रमशः जीनो रैब्ड्स तथा फोटो रैब्ड्स बैक्टीरिया छोड़ती हैं।

रसायनिक तरीके

रसायनिक नियंत्रण एक अंतिम उपाय है जिसका उपयोग सबसे अंत में करना चाहिए वह भी तब जब कीट प्रतिरक्षक अनुपात और इकोनॉमिक थ्रेशोल्ड लेवल (ई.टी.एल.) का अवलोकन कर लिया जाए। ई.टी.एल. एक ऐसा लेवल है जिस पर कीट, रोगाणु एवं सूत्रकृमियों की जनसंख्या का स्तर आर्थिक क्षति पहुँचाने के लिए उपुक्त होता हैं। इस स्तर पर फसल को आर्थिक क्षति से बचाने के लिए कीट, रोग एवं सूत्रकृमियों के नियंत्रण के लिए रसायनों का उपयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार न सिर्फ कीमत में कमी आती है बल्कि समस्याएं भी कम होती है। यदि जैविक खेती में कीटनाशकों या रसायनों का प्रयोग किया जाता है तो सिर्फ पादप एवं पशु जनित जैवकीटनाशकों (ऑर्गेनिक बायोपेस्टीसाइड्स) का ही उपयोग किया जाना चाहिए। वो भी सुझाई गई मात्रा का उचित मात्रा में घोल बना कर उपयोग करना चाहिए। अगर कीट कुछ भागों में ही मौजूद हैं तो सारे खेत में छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए।

उत्पत्ति के आधार पर कीटनाशियों को दो भागों में विभाजित किया गया है

1. पादप एवं पशु जनित जैवकीटनाशक (ऑर्गेनिक बायोपेस्टीसाइड्स)

जैसे नीम उत्पाद (अजाडीरेक्टिन), अरंडी उत्पाद (रिसीनिन), रतनजोत उत्पाद (जेट्रोपिन), अखाद्य खलियों के उत्पाद, गायमूत्र जनित उत्पाद आदि। इन जैव कीटनाशकों का उपयोग बीज उपचार, फसलों पर छिड़काव एवं रूट डीप ट्रीटमेंट हेतु किया जा सकता है। बीज उपचार एवं रूट डीप ट्रीटमेंट हेतु 4 घंटे तक बीजों एवं पोध को 20 प्रतिशत के घोल में डुबोकर रखे तथा इसके बाद बीजों को बुवाई के काम में ले एवं पौध को मुख्य खेत में रोपण हेतु काम में लें। इस घोल का उपयोग रोग एवं कीट नियंत्रण के लिए छिड़काव हेतु भी किया जा सकता है।

2.रसायनिक कीटनाशी (इनोर्गेनिक पेस्टीसाइड्स)

इन रसायनों का उपयोग किसान भाई जैविक खेती में बिल्कुल नहीं करें। इनके उपयोग से भूमि, मनुष्य जीवन तथा पशु स्वास्थ्य पर विषैला प्रभाव पड़ता हैं जिससे प्रदुषण तथा कई रोग पैदा हो जाते हैं। अतः भूमि स्वास्थ्य, मनुष्य स्वास्थ्य तथा पशुओं के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए हमेशा जैविक खेती को ही अपनाएँ और अधिक उत्पादन तथा उच्च गुणवत्ता वाली फसल पैदा करने मे भूमिका निभाए।

सब्जियों, खाद्यान्न फसलों और फलों में जैविक खेती का महत्व बढ़ता जा रहा है क्योंकि खाद्यान्न, फल और सब्जी मनुष्यों द्वारा खाई जाती हैं। जो कीटनाशक ज्यादा ज़हरीले होते हैं या अपने ज़हरीले असर के लिए जाने जाते हैं उनकी सिफारिश नहीं की जानी चाहिए। किसान ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए कीटनाशकों के असर को खत्म होने के लिए समय नहीं देते और जल्द ही फसल को बाजार में बेच देते हैं। इस वजह से कीटनाशकों का ज़हर उनमें बाकी रह जाता है कभी–कभी इस वजह से मौत तक हो जाती है। इसलिए फसलों में कीटनाशकों का प्रयोग करते समय हमें ज्यादा सावधानी बरतनी चाहिए। कीटनाशकों का प्रयोग आवश्यकतानुसार सावधानी से और इकोनॉमिक थ्रेशोल्ड लेवल (ई.टी.एल) के मुताबिक होना चाहिए। सुरक्षित कीटनाशकों को इस्तेमाल करना चाहिए उदाहरण के तौर पर सबसे पहले इस प्रकार के रसायनों का उपयोग किया जाए जो कम विषैले हो तथा उनका रसायनिक प्रभाव कम हो जिससे मृदा, मानव जीवन एवं पशुओ पर कुप्रभाव नहीं पड़े जैसे पादप जनित तथा पशु जनित जैवकीटनाशकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि पादप एवं पशु जनित जैवकीटनाशकों से कीट नियंत्रित नहीं हो पता हैं तभी रासानिक कीटनाशियों का उपयोग करना चाहिए।

गेहूँ की फसल पर धान के भूसे का सकारात्मक प्रभाव

अंकिता झा[1], राजीव रंजन[2], राज पाल मीना[1], आर.के. शर्मा[1] एवं आर.एस. छोकर[1]
[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल,
[2]गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, (उत्तराखंड)

धान–गेहूँ प्रणाली, जो कि राष्ट्रीय सुरक्षा की एक मज़बूत कड़ी है, की स्थिरता पर तेजी से गिरते भूजल, मिट्टी की घटती उर्वरता और बढ़ते वायु प्रदूषण के कारण प्रश्न चिन्ह बना हुआ है। कंबाईन हार्वेस्टर से काटने के बाद, बचे हुए धान के अवशेषों को जलाने के कारण यह समस्या और भी अधिक गंभीर हो जाती है।

भारत में धान की खेती से हर साल भारी मात्रा में फसल अवशेषों का उत्पादन होता है। धान उत्पादित क्षेत्रों में जहाँ फसल–अवशेषों को जलाने की एक भयंकर समस्या है, वहाँ इन अवशेषों को मृदा में मिलाकर या भूमि के ऊपर रखकर मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही फसल अवशेषों के जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण से भी मुक्ति मिल सकती है। इस प्रकार से फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन करके वायु प्रदूषण से होने वाली तमाम समस्याओं जैसे की अस्थमा की समस्या, ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन, दृश्यता में व्यवधान, यातायात में उत्पन्न व्यवधान इत्यादि से बचने में मदद भी मिल सकती है।

अधिकतर किसान धान–अवशेषों को मृदा में नहीं मिलाना चाहते, क्योंकि ऐसा करने के लिए उन्हें मशीन की आवश्यकता एवं फसल–अवशेषों के अपघटन के लिए आवश्यक लम्बा समय जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिससे गेहूँ की बुवाई में देरी होने की सम्भावना रहती है।

पोषक तत्वों के संदर्भ में अगर बात करें तो फसल अवशेष में पाए जाने वाले पोषक तत्वों का जलाने के दौरान काफी नुकसान हो जाता है। उदाहरण के तौर पर कार्बन एवं नत्रजन की लगभग पूरी मात्रा, 25 प्रतिशत फास्फोरस एवं सल्फर और 20 प्रतिशत तक पोटाश जलकर नष्ट हो जाते हैं, जो अन्यथा मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए आसानी से उपयोग में लाए जा सकते हैं। अतः फसल अवशेषों का सही प्रबंधन न केवल प्रदूषण को कम करेगा बल्कि फसल उत्पादकता को बढ़ाने में भी सहयोग प्रदान करेगा।

फसल अवशेषों के पलवार का प्रभाव

फसल अवशेषों को पलवार के रूप में सतह पर रखने से वाष्पीकरण की प्रक्रिया कम होगी जिससे मृदा में अधिक जल सरंक्षित रहेगा, जिसका उपयोग फसल कर सकेगी। पलवार जल के अपवाह और खरपतवारों की संख्या को कम करने में एवं मृदा में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि करने में काफी महत्वपूर्ण साबित होता है। कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि मिट्टी की संरचना में सुधार लाने में एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करती है। फसल अवशेष पलवार के रूप में इस्तेमाल करने पर मिट्टी तक पहुँचने वाले सौर विकिरण को रोकता है और जमीन के ऊपर हवा की गति को कम करके पानी के नुकसान को कम करने में भी मदद करता है। परिणामस्वरुप कम सिंचाई की आवश्यकता होती है जिससे कि जल, जो कि एक दुर्लभ प्राकृतिक संसाधन है, उसकी बचत की जा सकती है और उसको बाद में कहीं और उपयोग में लाया जा सकता है।

फसल अवशेष मृदा के तापमान को भी नियंत्रित करते हैं और वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन के अनुपात को प्रभावित

तालिका 1: धान के पुआल में उपलब्ध पोषक तत्व (1.0 टन धान के भूसे से निकाले गए पोषक तत्व)

	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश	सल्फर	सिलिका
पुआल में उपलब्ध पोषक तत्व (प्रतिशत)	0.5–0.8	0.16–0.27	1.4–2.0	0.05–0.10	4–7
एकटन पुआल, के साथ मृदा से निकलने वाले पोषक तत्वों की मात्रा (किलोग्राम)	5–8	1.6–2.7	14–20	0.5–1.0	40–70

स्रोतः राइस स्ट्रॉ मैनेजमेंट; डॉबरमैन और फेयरहर्स्ट (2002)

पलवार युक्त खेत एवं पलवार रहित खेत में अंतर

पलवार सहित खेत	पलवार रहित खेत
वाष्पीकरण प्रकिया द्वारा कम जल नुकसान	वाष्पीकरण प्रकिया द्वारा अधिक जल नुकसान
वाष्पोत्सर्जन प्रकिया के लिए अधिक जल की उपलब्धता	वाष्पोत्सर्जन प्रकिया के लिए कम जल की उपलब्धता
अधिक फसल उत्पादन	कम फसल उत्पादन
अधिक नत्रजन उपयोगिता	कम नत्रजन उपयोगिता
अधिक फसल जड़ घनत्व	कम फसल जड़ घनत्व

करते हैं जो कि फसल उपज को निर्धारित करती है। वाष्पीकरण प्रक्रिया द्वारा मृदा की ऊपरी परतों से तेज गति में पानी का नुकसान होता है, जिसके कारण शुष्क जैसी स्थिति उत्पन्न होती है। वाष्पोत्सर्जन प्रकिया कोशिका संरचना की प्रतिरोधकता को प्रभावित करती है, इसलिए इसकी दर एक मृदा की सतह से होने वाले वाष्पीकरण से कम होती है। जबकि मृदा से वाष्पीकरण की तुलना में, पलवार युक्त मृदा से वाष्पोत्सर्जन की गति तीव्र होती है। पलवार क्योंकि खरपतवारों को कम करता है, इसलिए फसल उपज में खरपतवारों के बीज मिलने की सम्भावना भी कम रहती है, साथ ही यह मृदा क्षरण को भी रोकता है।

धान की फसल जितना पोषक तत्व मृदा से लेता है, उसका 40 प्रतिशत नत्रजन, 30–35 प्रतिशत फास्फोरस, 80–85 प्रतिशत पोटाश और 40–50 प्रतिशत सल्फर धान के पुआल में रहता है (तालिका 1)। धान का पुआल सल्फर का एक अच्छा स्रोत है, खासकर वहाँ जहाँ सल्फर के बिना खनिज उर्वरकों का उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

मृदा द्वारा जल वाष्पीकरण एवं फसल द्वारा वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया एक प्राकृतिक घटना है जो विभिन्न पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। हालांकि कुशल मृदा, फसल एवं फसल अवशेष प्रबंधन द्वारा इनको कुछ हद तक नियंत्रित किया जा सकता है, जिसका फसल उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। धान के पुआल को मिट्टी में मिलाने से या पलवार के रूप में प्रयोग करने से मृदा की नमी बनी रहती है एवं मिट्टी का तापमान भी नियंत्रित रहता है। मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के साथ–साथ वायु प्रदूषण को कम करने में भी पलवार अहम भूमिका निभाता है।

किसानों को लाभान्वित करती टिकाऊ खेती

दीपक कुमार, विष्णु कुमार एवं ए.एस. खरब
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

आज देश में बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराना एक चुनौती है। नई–नई तकनीकों का प्रयोग करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के क्रम में जल प्रदूषण और मृदा प्रदूषण जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। साथ ही गत वर्षों में हमने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन से बहुत कुछ विलुप्त कर दिया है। एक ही खेत में लगातार धान्य फसलों की संघन खेती करने तथा असंतुलित मात्रा में उर्वरकों एवं रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से मृदा संरचना, मृदा वायु संचार तथा मृदा में जैविक पदार्थो का लगातार ह्रास हुआ है। कृषि में अत्यधिक रसायन के उपयोग से जहाँ एक तरफ उपज में लागत की वृद्धि हुई है वहीं मृदा की उर्वरा शक्ति का भी ह्रास हुआ है इसके अतिरिक्त मृदा में पाये जाने वाले लाभकारी सूक्ष्म जीवाणुओं तथा केंचुओं की संख्या में भी भारी कमी देखी गई है।

परिणामस्वरूप आज समय की माँग को देखते हुए कम लागत पर फसल उत्पादन हेतू टिकाऊ खेती एक कारगर तथा प्रभावी तकनीक है जिसको अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों को बिना क्षति पहुँचाये खाद्य तथा पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सकता है। टिकाऊ खेती को इको सिस्टम (पारिस्थितिक तंत्र) दृष्टिकोण के रूप में लिया जाना चाहिए जहाँ मृदा, जल, पेड़–पौधे, पर्यावरण, जीवित प्राणी, खाद्य श्रृंखला और उनसे सम्बन्धित ऊर्जा का संतुलन बना रहता है। टिकाऊ खेती व्यवसायिक तौर पर तीन मुख्य उद्देश्य के रूप में कार्य करती है; एक स्वस्थ वातावरण, अधिक लाभप्रद, सामाजिक और आर्थिक रूप से एक समानता।

टिकाऊ खेती – टिकाऊ खेती वह विधि है जो मानव की वर्तमान एवम् भावी पीढ़ी के भोजन, वस्त्र, चारे तथा ईंधन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इसमें परंपरागत विधियों एवं नई तकनीकों का समावेश करना जिससे,भूमि पर दबाव कम पड़े, जैव विविधता नष्ट ना हो, रसायनों का उपयोग कम हो, जल एवं मिट्टी का प्रबन्धन सही हो तथा फसल उत्पादन को बढ़ाना एक प्रमुख लक्ष्य हो।

टिकाऊ खेती में केंचुआ का योगदान – यद्यपि केंचुआ हमेशा से ही किसानों का अभिन्न मित्र रहा है सामान्यतः केंचुए का महत्त्व भूमि को खाकर उसको उलट–पलट करने से है जिससे, कृषि भूमि में उर्वरता बनी रहती है। केंचुआ कृषि योग्य भूमि में प्रतिवर्ष 1–5 मिलीमीटर सतह का निर्माण करते हैं। इसके अतिरिक्त केंचुए भूमि में निम्न ढ़ंग से उपयोगी एवं लाभकारी हैं;

भूमि की भौतिक गुणवत्ता में सुधार – केंचुए भूमि में उपलब्ध फसल अवशेषों को भूमि के अंदर तक ले जाता है और मृदा छिद्रों में इन अवशेषों को खाकर खाद के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। इससे मृदा में वायु संचार की क्षमता भी बढ़ती है। विशेषज्ञों के अनुसार एक केंचुआ 2 से 250 टन मिट्टी प्रतिवर्ष उलट–पुलट कर देता है, जिसके फलस्वरूप भूमि की 1 से 5 मिलीमीटर सतह प्रतिवर्ष तक बढ़ जाती है।

मृदा में निरन्तर वायु संचार – केंचुओं द्वारा निरन्तर मृदा उलट–पलट प्रकिया से वायु संचार बेहतर होता है साथ ही मृदा संरचना में भी सुधार होता है, जो भूमि में जैविक क्रियाशीलता, कार्बनिक पदार्थ निर्माण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है।

मृदा संरचना मे सुधार – भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है तथा जल रिसाव और जल आपूर्ति बढ़ने से भूमिगत जल स्तर में भी सुधार आता है।

मृदा उर्वरता में बढ़ोत्तरी – पौधों को अपनी पैदावार के लिए पोषक तत्व भूमि से प्राप्त होते हैं तथा पोषक तत्व उपलब्ध कराने की भूमि की क्षमता को भूमि उर्वरता कहते हैं। इन पोषक तत्वों का मूल स्त्रोत मृदा पैतृक पदार्थ, फसल अवशेष एवं सूक्ष्मजीव आदि होते हैं। सूक्ष्मजीवों और केंचुआ सम्मलित अपघटन से जैविक पदार्थ उत्तम खाद का निर्माण कर मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाता हैं।

टिकाऊ खेती का आधार

1. किसानों द्वारा विभिन्न फसलों को फसल प्रणाली में समावेश करने से प्रति इकाई लागत को भी कम किया जा सकता है। इससे विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न जैसे धान्य, दाल, तेल व रेशा इत्यादि आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य का भी संरक्षण होता है।
2. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें, इससे फसलों का उत्पादन गुणवत्तायुक्त होगा व मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्धता में होने वाले असंतुलन में भी कमी आयेगी।
3. एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबन्धन आवश्यक है। इसके अन्तर्गत कार्बनिक खाद जैसे गोबर की खाद हरी खाद वर्मी कम्पोस्ट इत्यादि का उचित मात्रा में उपयोग में लाकर उत्पादकता में वृद्धि के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य में भी भारी सुधार होता है।
4. फसलों मे जल के उचित प्रबन्धन से उर्वरक एवं अन्य

उत्पादन घटकों की उपयोग क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है।

5. खरपतवार का एकीकृत नियन्त्रण किया जा सकता है खरपतवारनाशकों के लिए जैविक रसायनों के उपयोग से प्रदूषण भी कम किया जा सकता है।

6. उपयुक्त फसल–चक्र अपनाएँ:– फसल–चक्र टिकाऊ तकनीकों खेती की सबसे उपयुक्त तकनीकों में से एक है। इसका उद्देश्य एक ही मिट्टी में एक ही फसल लगाने से आने वाले दुष्परिणामों से बचना है। फसल–चक्र कीटों की समस्या से निपटने मे मददगार है, क्योंकि कई कीट फसल विशेष पर ही जीवित रहते हैं। लेकिन फसल–चक्र से कीटों को खाद्य आपूर्ति नहीं हो पाती और उनका प्रजनन–चक्र टूट जाता है। फसल–चक्र में दलहनी फसलों को उगाकर मृदा में पोषक तत्व व नाइट्रोजन उर्वरक की पूर्ति काफी हद तक की जा सकती है।

7. पौध रोग तथा कीटों का एकीकृत नियन्त्रण करना।

8. खेतों की गहरी जुताई करें जिससे वर्षा के जल का संरक्षण हो तथा मृदा में वायु संचार बना रहे।

9. वर्षा जल का संरक्षण कर सिंचाई में प्रयोग करें।

10. कम समय में पकने वाली तथा कम पानी में उगने वाली फसलों का चयन करें।

11. खेतों के मृदा क्षरण रोकने के लिए व पोषक तत्वों की हानि रोकने के लिए खेत को समतल करके मेड़ बन्दी करें।

12. हमेशा उच्च गुणवत्ता के बीजों का उचित मात्रा में उपचारित कर उपयोग करें।

13. बीज की बुआई सही समय तथा उचित दूरी पर करें।

14. मृदा की सिफारिश के अनुसार उर्वरकों का उचित मात्रा में उपयोग करें।

15. सिंचाई के लिए हमेशा ड्रिप व स्प्रिंकलर विधि का प्रयोग करें इससे जल की बचत होती है।

16. उचित उत्पादन हेतु फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई अवश्य करें।

17. रोग व कीटों के एकीकृत प्रबंधन से कीटों व रोगों का रासायनिक पदार्थो के प्रति होने वाली सहनशीलता की नियन्त्रित किया जा सकता है, साथ ही कृषि लागत में भी कमी की जा सकती है।

18. कवर फसलें लगाकर हम मृदा के क्षरण को रोक सकते हैं और खरपतवार को नियन्त्रित कर सकते हैं।

19. फसलों के उचित मूल्य पाने हेतु समय पर कटाई, गहाई, सफाई, ग्रेडिंग करके मंडी ले जाएं।

20. फसल अवशेषों को किसी भी स्थिति में न जलाएं।

21. प्राकृतिक कीट शिकारियों (पक्षियों) की संख्या में वृद्धि करें ताकि वह कीटों की आबादी को प्रभावित कर सके, यह एक प्रभावी व परिष्कृत तकनीक है।

22. कृषि से जुड़े महंगे उत्पादकों पर निर्भर रहने के बजाय स्थानीय संसाधनों (जैसे गोबर, गो–मूत्र, फलों–सब्जियों के छिलके अवशेष, औषधीय महत्व के पेड़ पौधों) का बेहतर प्रयोग किया जाए।

23. आधुनिक तकनीकों को किसानों तक पहुँचाया जायें ताकि तकनीकी खेती का प्रयोग हो और किसान भाई लाभान्वित हो सकें।

24. महिलाओं को खेती संसाधन में आगे आने का समुचित अवसर मिलें। टिकाऊ खेती में महिलाएं अहम भूमिका निभा सकती हैं।

टिकाऊ खेती के लाभ

1. मृदा की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।
2. मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन लंबे समय तक बना रहता है।
3. मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में निरंतर वृद्धि।
4. भूमिगत जल स्तर बना रहता है।
5. प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग पर बल दिया जाता है।
6. रसायनों के अत्याधिक उपयोग से होने वाले प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
7. कृषि रसायनों तथा कीटनाशकों पर होने वाले लागत से बचा जा सकता है।
8. कम लागत में अच्छी गुणवत्ता के साथ अधिक पैदावार ले सकते हैं।
9. जैव विविधता को बनाए रखता है।
10. कृषि रसायनों द्वारा उत्पादित खाद्यान्न से होने वाली बिमारियों के प्रकोप से बचा जा सकता है।
11. टिकाऊ खेती से खाद्यान्न पदार्थों की पैदावार बढ़ाकर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। साथ ही किसानों की आय में भी वृद्धि की जा सकती है।

एक अनुमान के अनुसार 2050 तक विश्व की आबादी 9.6 बिलियन तथा भारत की आबादी 1.7 बिलियन हो जाने की संभावना है उनके दैनिक कैलौरी की अवशयकता के आपूर्ति के लिए 60–70 प्रतिशत अधिक भोजन को आवश्यकता होगी। यह किसी भी तरह से छोटी चुनौती नहीं है। ऐसी स्थिति में टिकाऊ खेती ही हमें भविष्य की पीढ़ीयों की क्षमता से समझौता किये बिना स्वस्थ खाद्य पदार्थों का उत्पादन की अनुमति देकर साथ ही किसान भाईयों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाकर उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में मददगार साबित होगी।

भारत में जल की उपलब्धता एवं पारम्परिक जल संरक्षण के उपाय

राज पाल मीना, अनुज कुमार, कर्णम वेंकटेश, राहुल कुमार एवं अंकिता झा
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

आज संपूर्ण विश्व जल की कमी से जूझ रहा है तथा समय के साथ ये समस्या और जटिल होने के आसार है क्योंकि विश्व जनसंख्या में सतत् वृद्धि हो रही है जिसकी विभिन्न आवश्कताओं में से जल प्रमुख स्थान रखता है। जबकि इसके विपरीत जल स्रोत कम तथा दूषित होते जा रहें हैं। आर्थिक प्रगति तेजी से होने के कारण लोगों की जीवन शैली में भी व्यापक बदलाव हुआ हैं जिससे पानी की मांग खेती के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी तेजी से बढ़ी है जैसे कि घरों में तरणताल, मनोरंजन के लिए जल पार्क, भवन निर्माण कार्य इत्यादि। इसके विपरीत जल श्रोत तेजी से घट रहें है और जो हैं वह ज्यादातर दूषित हैं एवं लगातार अत्यधिक दूषित होते जा रहें हैं। वर्ष 1951 में भारत में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 5177 घन मी. प्रति वर्ष थी जो घटकर वर्ष 2011

तालिका 1. भारत में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता का आंकलन

वर्षजन	संख्या (मिलियन)	प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता (घन मी. प्रति वर्ष)
1951	361	5177
1991	846	2209
2001	1027	1820
2011	1210	1539
2025	1394	1341
2050	1640	1140

तालिका 2. विभिन्न फसलों में जल का औसत उपयोग

फसल	आवश्यक जल मात्रा
धान	3000–5000
गेहूं	900–2000
मक्का	1000–1800
गन्ना	1500–3000
सोयाबीन	1100–2000
आलू	500–1500

स्रोतः आधुनिक सस्य विज्ञान, रणबीर सिंह एवं सी.बी. सिंह, 2015

में 1539 घन मी. प्रति वर्ष रह गई है तथा यह उपलब्धता भी कम होकर वर्ष 2050 तक 1140 घन मी. प्रति वर्ष रह जाने का अनुमान है। इसी प्रकार कृषि के लिए जल उपलब्धता में भी सतत् कमी आती जा रही है। कृषि सहित सभी प्रकार की गतिविधियों के लिए जल की आवश्यकता मुख्य रूप से वर्षा द्वारा प्राप्त जल से ही होती है, लेकिन वर्षा के होने में अनियमितता तथा अनिश्चितता हमेशा रहती है, इसलिए

कृषि एवं कृषि से समन्धित कार्यों के लिए वर्षा के अतिरिक्त जल स्रोतों की अत्यंत आवश्कता होती है। जहाँ सिंचाई जल की उपलब्धता नहीं है या प्रर्याप्त नहीं है तथा वर्षा आधारित खेती होती है उसकी उत्पादकता लगभग आधी हो जाती है। अतः देश व विश्व की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा के लिए जल प्रबंधन एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। भारत में कृषि तथा कृषि समन्धित कार्यों के लिए कुल जल उपयोग का 80 प्रतिशत तक उपयोग होता है जो किसी भी अन्य गतिविधियों से अधिक है।

जल सरंक्षण के बेहतरीन उपाय किए गए हैं इजाद किये, लेकिन उस ज्ञान एवं संसाधनों कि अनदेखी की गई, नतीजतन वर्तमान में हम जल–विपदा का सामना करने में असहाय महसूस करते हैं। हमारा आदी समाज गर्मी के चार महीनों के लिए पानी जमा करना व उसे किफायत से खर्च करने को अपनी संस्कृति मानता था। वह अपने क्षेत्र के जलवायु चक्र, मौसम, भूगर्भ, धरती एवं मिट्टी की संरचना, पानी की माँग व आपूर्ति का गणित भी जानता था। भले ही आज उन उपायों को बीते जमाने की तकनीक कहा जाए, लेकिन आज भी देश के कस्बे–शहरों में बनने वाली जन योजनाओं में पानी की खपत व आवक का वह गणित कोई नहीं आँक पाता है जो हमारे पूर्वज करते थे। उदाहरण के

लिए आज अगर किसी शहर या कस्बे की योजना बनाई जाती है तो सड़क, बाजार, पार्क, वाहन पार्किंग स्थल इत्यादि का समावेश होता है, लेकिन जल सरंक्षण के लिए झील/तालाब/जोहड़/बावड़ी या अन्य किसी जल संरचना जो क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त हो उसका समावेश शहर या कस्बे की योजना में नहीं होता। यह दर्शाती है कि जीवनयापन के लिए सबसे अधिक जरूरी प्राक्रतिक संसाधन को लेकर आज हम कितने उदासीन हैं।

अतीत के ज्ञान के कुछ उदाहरण नीचे वर्णित हैं, जिन्हें फिर से जीवित किया जाना चाहिए तथा जीवन शैली में समावेश किया जाना चाहिए

राजस्थान में तालाब, बावड़ियाँ, कुईं, झालार, टांके, तलाई, कर्नाटक में कैरे, तमिलनाडु में ऐरी, नागालैण्ड में जोबो, लेह–लद्दाख में जिंग, महाराष्ट्र में पैट, उत्तराखण्ड में गुल, हिमाचल प्रदेश में कुल और जम्मू में कुहाल कुछ ऐसे पारम्परिक जलसंवर्धन के तरीके थे जो समय के साथ आधुनिकता की दौड़ में पीछे छुट गए या भुला दिया गया और अब पानी के स्रोत सूखते जा रहे हैं तो फिर उनकी याद आ रही है या उनकी प्रासंगिकता बढ़ने लगी है।

जल व्यवस्था के आभाव कारण पलायन के लिए की पीड़ा झेल रहे बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भी पहाड़ी के ऊपर जंगल, पहाड़ी के नीचे तालाब तथा तालाब के एक उपयुक्त कोने पर अतिरिक्त पानी की निकासी की व्यवस्था करके उसे नीचे धरातल पर बने दूसरे तालाब से जोड़ने व ऐसे पाँच–पाँच तालाबों की कतार बनाने की परम्परा 900वीं सदीं में चन्देल राजाओं के काल से रही है। जल आपदा का सामना करने की यह एक बेजोड़ तकनीक थी जिसे भुला दिया गया और पानी की भयंकर कमी का सामना कर पाने में विफल हो कर लोग पलायन के लिए मजबूर हो रहे हैं।

तमिलनाडु में एक नदी या जल स्रोत को तालाबों की श्रृंखला से जोड़कर उस पानी को बड़ी नदी या समुद्र में पहुंचकर व्यर्थ होने से रोकने की अनूठी परम्परा थी। उत्तरी अराकोट व चेंगलपेट जिले में पलार एनीकेट के जरिए इस प्रणाली से 317 तालाब जुड़े हैं। रामनाथपुरम में तालाबों की अन्तरश्रृंखला भी विस्मयकारी है।

गुजरात के कच्छ के रण में वहाँ के निवासी खारे पानी के ऊपर तैरती बारीश की बूँदों के मीठे पानी को 'विरदा' के प्रयोग से संरक्षित करने की कला जानते थे। लेह–लद्दाख (हिम–रेगिस्तान) में सुबह बर्फ रहती है और दिन में धूप के कारण कुछ पानी बनता है जो शाम को बहता है। वहाँ के लोग जानते थे कि शाम को मिल रहे पानी को कैसे इस्तेमाल किया जाए।

इस बात का एहसास हम सबको है कि जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए जल अत्यंत जरूरी है तथा जल की व्यवस्था का मात्र स्रोत वर्षा के जल का संरक्षण ही है फिर भी इसमें जन भागीदारी नगण्य है। इस तरह जल सरंक्षण के लिए जरूरी है कि स्थानीय स्तर पर उपयुक्त पारम्परिक जल प्रणालियों को खोजा जाए एवं उन्हें पुनर्जीवित किया जाए। प्रोत्साहित करने के लिए जल सरंचनाओं को सहेजने एवं संचालित करने वाले व्यक्ति/समाज को सम्मानित किया जाए ताकि जल संकट से जूझ रही इस धरती को फिर से जल समृद्ध बनाया जाए। जल संरक्षण के स्थानीय व छोटे

प्रयासों से भूजल का पुनर्भरण (रिचार्ज) भी होगा जो कृषि, कारखानों एवं अन्य उपयोगों के लिए जल की आपूर्ति को सुनिश्चित करेगा।

हरी खाद ढैंचा द्वारा लवणग्रस्त मृदाओं का सुधार

देवेंद्र दम्बीवाल[1], मनीष कुशवाहा[2] एवं गोविन्द मकराना[2]
[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

लवणीय भूमियों को सुधारने के लिए हरी खाद का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। ढैंचा की खेती का उपयोग हरी खाद के लिए एक वरदान साबित हो सकता है। इसका हरी खाद के रूप में उपयोग करने पर भूमि में सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ाने में मदद मिलती है। इसके साथ–साथ मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों में भी बढ़ोत्तरी होती है। ढैंचा की हरी खाद पौधों के आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोह, जस्ता, बोरोन आदि की उपलब्धता बढ़ाता है। क्षारीय एवं लवणीय भूमियों में मौजूद कैल्सियम कार्बोनेट से कैल्सियम को विलयशील करके विनिमय योग्य सोडियम को प्रतिस्थापित करके सोडियम को घोलकर पौधों की जड़ों से बहाया जा सकता है। भूमि सुधारने में तीव्रता के लिए ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग जिप्सम के साथ भी किया जा सकता है।

ढैंचा (सेस्बानिया एकुलिएटा) फैबेसी वर्ग का पौधा है। इसको माध्यम लवणीय तथा क्षारीय जल भराव एवं सूखे में उगाया जा सकता है। ढैंच का पी. एच. मान 4.0 तथा इसकी राख़ में 35 प्रतिशत कैल्सियम होता है। ढैंचे को मिट्टी में सड़ाने तथा अपघटन से हाइड्रोजन सल्फाइड गैस निकलती है जो अम्ल बनाकर लवणीय भूमि में उपस्थित कैल्सियम कार्बोनेट को कम करने में मदद करती है।

भूमि की तैयारी

ढैंचा की फसल के लिए एक जुताई गर्मी के मौसम में तथा एक जुताई और पाटा के साथ फसल लगाने से पहले कर देनी चाहिए।

बीज की मात्रा के लिए बुआई

ढैंचा की हरी खाद के लिए 25 से 30 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिटकवा विधि द्वारा बुआई की जाती है। हरी खाद हेतु ढैंचा की फसल की बुआई का उपयुक्त समय बरसात का मौसम है।

सिंचाई

ढैंचा की फसल के लिए बुआई के बाद एक या दो सिंचाई करनी चाहिए। 30 से 40 दिन के अंतराल में वर्षा नहीं होने पर एक सिंचाई की आवश्यकता होती है।

अपघटन

वर्षों के अनुभव से यह कहा जा सकता है की ढैंचा की फसल को 50 से 55 दिन की अवस्था में जब फूल आने की शुरुआत हो उस समय डिस्क हैरो से 15 से 20 सें.मी. की गहराई में दबा देना चाहिए। यह उपयुक्त अवस्था होती है क्योकि इस अवस्था में निम्न कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात होता है।

ढैंचा की हरी खाद के लाभ

ढैंचा एक दलहनी फसल होने के कारण इसकी जड़ों में छोटी–छोटी गाँठें पायी जाती है इन गाँठों में पाये जाने वाले जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं।

ढैंचे के सड़ने से हाइड्रोजन सल्फाइड व कार्बन डाईऑक्साड गैस पानी में मिलकर गंधक व कार्बोनिक अम्ल बनाती है जिससे लवणीय व क्षारिय भूमियों के सुधार में तीव्रता आती है।

ढैंच को हरी खाद के रूप मे उपयोग करने से मिट्टी की जल धारण क्षमता मे बढ़ोत्तरी होती है।

ढैंचे की जड़े सुदृढ़ होने से मिट्टी की पारगम्यता बढ़ जाती है।

ढैंचे की हरी खाद से मिट्टी के पी.एच. मान में कमी होती है।

ढैंचे की 50 दिन की फसल से 20 टन प्रति हैक्टर हरे पदार्थ का उत्पादन हो जाता है जिससे लगभग 75 से 80 कि. ग्रा. नाइट्रोजन मृदा को मिलता है।

आधुनिक तकनीकों से सटीक कीट प्रबंधन

जयंत यादव[1], पूनम जसरोटिया[2], प्रेम लाल कश्यप[2], सुधीर कुमार[2] एवं कविंदर[1]
1 चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
2 भा.कृ.अ.नु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक इसके 10 अरब तक पहुँचने की सम्भावना है। प्रत्येक कृषि प्रधान देश का मुख्य लक्ष्य कम लागत से अधिक पैदावार करना है। इस सदर्भ में, एक किसान को प्रभावी खेती हेतु नई तकनीकों का ज्ञान और उचित जानकारी का होना बहुत ही आवश्यक है। इससे किसानो को अपनी फसल की संभावित उपज, कीटों बिमारियों का प्रकोप तथा मृदा की स्थिति को समझने में मदद मिलती है। आज के व्यापारी युग में उत्पादों की अधिक पैदावार के साथ गुणात्मक पैदावार की भी आवश्यकता है। सटीक कृषि प्रबंधन, पारम्परिक कृषि विधियों की तुलना में, बढ़ती आबादी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ पर्यावरण हितैषी भी है। यह कम लागत मे कृषि उत्पादन क्षमता बढ़ाने के साथ–साथ पर्यावरण पर कीटनाशकों के हानिकारक प्रभाव से भी बचाता है। कृषि क्षेत्र मे कीटनाशकों और उर्वरकों के प्रभाव को बढ़ाने के लिए मिट्टी एवं फसल के बारे मे पूर्ण जानकारी एकत्र करना एवं विश्लेषण करना सटीक खेती का लक्ष्य है। परिशुद्ध या सटीक कीट प्रबंधन भी सटीक कृषि का हिस्सा है। परिशुद्ध कीट प्रबंधन नवीनतम प्रौद्योगिकी के उपयोग से हानिकारक खरपतवारों, कीड़ो और बिमारियों को नियंत्रित करता है।

सटीक / परिशुद्ध कीट प्रबंधन की आवश्यकता

1. प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरणीय गुणवत्ता में ह्रास
2. वर्तमान उत्पादन विधियों के साथ लाभ में लगातार कमी आई है
3. कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग के कारण पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि
4. खेती योग्य भूमि में बढ़ता भू क्षरण
5. फसल उत्पादन की गुणवत्ता एवं मात्रा को बढ़ाने तथा कम लागत वाली आधुनिक कृषि तकनीकों के प्रसार के लिए प्रभावी परिशुद्ध कीट प्रबंधन किसानों के उद्देश्यों को पूरा करते हुए फसलों पर इन हानिकारक कीटों के प्रभाव को कम करने के लिए कई उपकरण तथा तकनीकों पर निर्भर करता है जैसे कि:

1. खेती में ड्रोन का प्रयोग
2. ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जी.पी.एस)
3. भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीयोग्राफिकल इंफार्मेशन सिस्टम
4. रिमोट सेंसिंग
5. परिवर्तनीय दर तकनीक

1. खेती में ड्रोन के उपयोग

मानव रहित हवाई वाहन (यू.ए.वी.) या ड्रोन यू.ए.वी., जिसे आमतौर पर ड्रोन के नाम से भी जाना जाता है, बिना चालक का एक छोटा विमान है। इस विमान प्रणाली में एक ड्रोन, एक मानव नियंत्रक तथा दोनों के बीच संचार सुविधा शामिल है। विकसित देशों ने पहले से ही सटीक कृषि प्रबंधन में इस तकनीक का उपयोग शुरू कर दिया है। यह एक बहुत ही तेज और किसान के कार्य भार को कम करने वाली तकनीक है। यह कीटनाशकों के छिड़काव तथा

फसल की निगरानी के लिए अच्छी गुणवत्ता के कैमरों और सेंसर का उपयोग करता है। कृषि में पहला ड्रोन, यामाहा द्वारा विकसित किया गया था जिसका प्रयोग कृषि कीट नियंत्रण और फसल निगरानी के लिए किया जा रहा है।

1. खेत एवं फसल के स्वास्थ्य की निगरानी
2. कीटनाशकों का छिड़काव
3. मिट्टी एवं कृषि क्षेत्र का विश्लेषण

यह बड़े फसल क्षेत्रों में कृषि संसाधनों के सटीक उपयोग में सहायता करता है। इसमें सबसे पहले उच्च गुणवत्ता वाले कैमरों की सहायता से एक पूरे फसल क्षेत्र का नक्शा बनाया जाता है। यह नक्शा फसल की स्थिति का मूल्यांकन करता है तथा किसान यह तय करता है की कितनी मात्रा में कीटनाशकों एवं उर्वरकों का प्रयोग करना है। ड्रोन जमीन आधारित स्प्रेयरों के समान कार्य करता है तथा इसका उपयोग गति एवं सटीकता के कारण दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। यू.ए.वी. छिड़काव प्रणाली संक्रमित क्षेत्रों पर कीटनाशकों का छिड़काव करने के लिए जीपीएस निर्देषांक का प्रयोग करती है जिससे रसायनों और पानी की बर्बादी कम होती है।

कीट प्रबंधन में ड्रोन के उपयोग के लाभ

1. एक व्यक्ति द्वारा कम समय में अधिक कार्य किया जा सकता है।
2. बड़े क्षेत्रों में कीटनाशकों एवं उर्वरकों का समान वितरण संभव है।
3. दुर्गम तथा दुर्लभ इलाकों जैसे बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र, खड़ी पहाड़ियाँ आदि तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है ।
4. ऊँची फसलों के शीर्ष पर जैव नियंत्रक कीटों को आसानी से पहुँचाया जा सकता है।
5. अधिक दक्षता के साथ कीटों, खरपतवारों और फसल रोगों का पता लगाया जा सकता है।

2. ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जी.पी.एस.)

जी.पी.एस. उपग्रहों के नेटवर्क पर आधारित एक नेविगेशन प्रणाली है जो उपयोगकर्ताओं को 100 से 0.01 मीटर के बीच सटीकता के साथ स्थिति संबंधी जानकारी (अक्षांश, देशांतर और ऊंचाई) रिकॉर्ड करने में मदद करता है। जी. पी.एस. किसानों को क्षेत्र की विशेषताओं जैसे कि मिट्टी का प्रकार, कीट एवं खरपतवार आक्रमण, पानी, सीमाएँ आदि की वास्तविक स्थिति का पता लगाने में मदद करता है। प्रकाश या ध्वनि मार्गदर्शक पैनल (डी.जी.पी.एस.), एंटीना और रिसीवर के साथ एक स्वचालित नियंत्रण प्रणाली है। उपग्रह संकेतों को प्रसारित करते हैं जो जी.पी.एस. रिसीवर को स्थिति की गणना करने में सहायता करता है। जी.पी. एस. कृषि संचालन के लिए सटीक मार्गदर्शन प्रदान करता है। जी.पी.एस. किसानों की बीजों, उर्वरकों, कीटनाशियों तथा सिंचाई के पानी के उचित उपयोग में सहायता करता है। कीट प्रबंधन कार्यों में जी.पी.एस. के विशिष्ट लाभ हैं:

1. फार्म मशीनों को सैकड़ों मीटर लंबे कृषि क्षेत्र में आसानी से संचालित किया जाता है।
2. फसल पंक्तियों को दोहराया नहीं जाता जिससे कीटनाशकों के प्रयोग के दौरान अतिव्ययता से बचा जा सकता है।
3. काम के दौरान फसल पंक्तियों की संख्या को गिना जा सकता है।
4. कृषि उपकरण एवं छिड़काव उपकरण प्रत्येक वर्ष समान तरीके से संचालित किए जा सकते हैं।
5. रात्रि तथा खड़े पानी में ठीक से काम करना संभव है।
6. कीट प्रबंधन कार्य वायु से प्रभावित नहीं होते हैं।

3. भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.)

जी.आई.एस. सटीक कीट प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जी.आई.एस. कीट आबादी एवं गतिविधियों के बारे में जानकारी देता है। कीट जनसंख्या की गतिशीलता को कंप्यूटर मॉडल के साथ जोड़कर और बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। इस प्रणाली में हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर के द्वारा स्थानीय डाटा का संकलन, भण्डारण एवं विश्लेषण करके मानचित्र तैयार किये जाते हैं। ये मानचित्र जी.आई.एस. की डिजिटल जानकारी को सरल एवं योग्य बनाते हैं जिसका उपयोग कीट एवं बिमारियों के प्रकोप, वनस्पति आवरण, उत्पादन क्षमता और भू–उपयोग का विश्लेषण करने में किया जाता है। जी.आई.एस. डेटाबेस एवं मौसम संबंधी आंकड़ों के आधार पर कीटों एवं फसल रोगों का पूर्वानुमान लगाकर रोकथाम की जा सकती है।

लेकिन जी.आई.एस. सॉफ्टवेयर पैकेजों की जटिलता के कारण कीट प्रबंधन कार्यक्रमों में इसे लागू करना मुश्किल है। इसलिए कीट प्रबंधन में इस तकनीक को बढ़ावा देने के लिए कुछ सरल और आसान प्रारूपों की आवश्यकता है।

वर्तमान में यह आलू व टमाटर में झुलसा रोग, कपास में पत्ती मरोड़, सफ़ेद मक्खी तथा टिड्डे की आबादी का पता लगाने में प्रयोग किया जाता है।

4. रिमोट सेंसिंग (आर.एस.)

यह किसी वस्तु या घटना के भौतिक संपर्क में न होकर उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने की कला और विज्ञान है। रिमोट सेंसिंग प्रक्रिया में जी.आई.एस. में रिकॉर्ड किया गया डाटा भू–संदर्भित अवलोकन एवं सटीक प्रबंधन में सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। हवाई फ़ोटोग्राफ़ी (रंग और इन्फ्रा–रेड) और वीडियोग्राफी भी आमतौर पर सटीक कृषि में कई अलग–अलग इनपुट के आधार पर कार्य करता है। उपयोग किए जाने वाले अधिकांश सेंसर इलेक्ट्रो मैग्नेटिक स्पेक्ट्रम और इन्फ्रार रेड भाग के निकट भाग में काम करते हैं। मिट्टी के मानचित्रण, स्थलाकृति विश्लेषण, फसल तनाव की निगरानी, उपज का आंकलन और मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों के आंकलन के लिए रिमोट सेंसिंग का उपयोग पहले से ही किया जा रहा है। किसी क्षेत्र में उपलब्ध परिवर्तनशीलता की निगरानी और मूल्यांकन करने की अपनी क्षमता के कारण रिमोट सेंसिंग सटीक कीट प्रबंधन में बहुत काम आ सकती है। रिमोट सेंसिंग उपग्रह पृथ्वी की ओर एक ज्ञात संकेत भेजते हैं और संकेत का एक हिस्सा पृथ्वी की सतह से वापस परावर्तित होता है। इस परावर्तित ऊर्जा अथवा किसी वस्तु से निकली विद्युत–चुंबकीय ऊर्जा के आधार पर चित्र डाटा एकत्रित किया जाता है। यह विभिन्न कार्यों जैसे की कीटों तथा बिमारियों की तीव्रता को मापने में एवं खरपतवार निगरानी में प्रयोग होता है।

5. परिवर्तनीय दर तकनीक (वी.आर.टी)

परिवर्तनीय दर तकनीक मिट्टी के प्रकार और फसल की स्थिति के आधार पर कीटनाशकों का वितरण निर्धारित करता है। वी.आर.टी. खेती करने के लिए एक बुनियादी दृष्टिकोण है, जिसमें क्षेत्र एवं उत्पादन के आधार पर कृषि रसायनों की अलग–अलग दर प्रयोग की जाती हैं। वी. आर.टी. में आवश्यक जानकारी कई स्रोतों से प्राप्त होती है, जैसे कि जी.पीएस संदर्भित डाटा, रिमोट सेंसिंग चित्र एवं जीआईएस मानचित्र। जी.आई.एस. से प्राप्त जानकारी से वी.आर.टी बिजाई, उर्वरकों, शाकनाशियों एवं कीटनाशकों के सही समय एवं सही जगह पर प्रयोग को निर्धारित करता है। यह प्रणाली नियंत्रक एवं संचालक पर आधारित है। नियंत्रक प्रयोग के दर निर्धारण एवं संचालक उस दर को लागू करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। वर्तमान समय में वी. आर.टी. का उपयोग कृषि कार्यों की निगरानी के लिए किया जाता है। यह मिट्टी के प्रकार, जैविक पोषक तत्वों के स्तर, मिट्टी के पी.एच., कीट आबादी, बिमारियों तथा सूत्रकृमि आबादी के आधार पर कृषि प्रबंधन में सहायता करता है।

निष्कर्ष

सटीक खेती किसानो को उर्वरकों, कीटनाशकों एवं सिंचाई सहित सभी कृषि आदानों के अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करने की क्षमता प्रदान करती है। हालाँकि सटीक खेती में कीट प्रबंधन अनुसंधान अति आवश्यक है इसलिए वैज्ञानिको को तत्काल इस पर ध्यान देने की जरूरत है।

भारत के उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों की कृषि प्रणालियाँ

आर. करूप्पैयन[1], राजेश कुमार[1], बृजमोहन सिंह बघेल[2] एवं रविकान्त अवस्थी[3]
[1]भा.कृ.अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर
[2]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल
[3]भा.कृ.अनु.प.–उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, सिक्किम केन्द्र, गंगटोक

भारत के उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में शामिल सात राज्यों नामशः अरूणाचल प्रदेश, मणीपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा एवं सिक्किम के अन्तर्गत 5.6 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र (1.83 लाख वर्ग किलोमीटर) पर देश की जनसंख्या का 1.2 प्रतिशत (1.428 करोड़) का भार संभाले हुए है।

भारत के अन्य राज्यों की तुलना में इस भौगोलिक क्षेत्रों की विशेषताएं, जनसंख्या, संस्कृति और वातावारण के संदर्भ में भिन्न है। उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों की विशेषता ढ़लानों में वृहत् विविधता (0–100 प्रतिशत), ऊँचाई (समुद्र तल से 300–8585 मी. ऊपर), कोमलता, अनुपलब्धता, सीमांतता, सांस्कृतिक विषमता, जातियता एवं पर्याप्त जैव विविधता इन दुर्गम क्षेत्र के आधार पर विभाजित है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र भारत–बर्मा एवं हिमालय की जैव विविधता का केन्द्र बिन्दू (हाट स्पाट) है। विश्व में अब तक 25 में से 2 हाट स्पाट की पहचान की गयी है। इनकी भूमि स्वामित्व प्रणाली एवं कृषि कार्यप्रणाली काफी भिन्न है। औसत कृषि जोत (2.7 हैक्टर प्रति व्यक्ति) राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा उच्च है, इसकी जटिल स्थलाकृति के कारण सम्पूर्ण जोत को जुताई के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। वास्तविक बोया गया क्षेत्र 1. 63 लाख हैक्टर जो भारत के वास्तविक बोये गये क्षेत्र का 1. 1 प्रतिशत है। वर्ष 2015 के दौरान, इस क्षेत्र का कुल भौगोलिक क्षेत्र का 74.62 प्रतिशत वन क्षेत्र के अन्तर्गत अधिकृत है जबकि सम्पूर्ण भारत में 21.35 प्रतिशत (https://databank.nedfi.com) था। लगभग 56 प्रतिशत क्षेत्र कम ऊँचाई (समुद्र तल से 270–1500 मी. ऊपर), 33 प्रतिशत मध्य ऊँचाई के अन्तर्गत (समुद्र तल से 1500–2000 मी ऊपर) और 11 प्रतिशत उच्च ऊँचाई (समुद्र तल से 2000–3000 मी उपर) के अन्तर्गत आता है। इस क्षेत्र की जलवायु उपोष्णकटिबंधीय से समशीतोष्ण तक भिन्न रहती है। पृथ्वी ग्रह पर सबसे ज्यादा वर्षा प्राप्त करने वाला उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र है। इस क्षेत्र में 42 लाख हैक्टर मीटर वर्षा हुई जो भारत की वर्षापात का 12 प्रतिशत है। वार्षिक औसत वर्षा 2068 मी.मी. है (जैन और उनके सहयोगी 2012)। उच्च वर्षा के अन्तर्गत क्षार के निक्षालन के कारण उच्च वर्षा के अन्तर्गत मृदा का पीएच मान अम्लीय (4.5 से 6.5) से उच्च अम्लीय हो जाता है लेकिन उच्च कार्बनिक पदार्थों की मात्रा अधिक होती है।

परम्परागत खेती प्रणाली

परम्परागत खेती को, फसलों और पशुओं के भोजन के उत्पादन के लिए अंतःस्थापित परम्परागत प्रथाओं के समूह के रूप में परिभाषित किया गया है। यह सामाजिक – सांस्कृतिक उपयोग एवं निर्यात के संसाधनों को संरक्षित करता है, पर्यावरण की रक्षा करता है और पीढ़ी दर पीढ़ी इसको आगे बढाने में सहायता प्रदान करता है। इसमें किसानों के स्वदेशी ज्ञान, प्राकृतिक संसाधन एवं सांस्कृतिक मान्यताओं का उपयोग शामिल होता हैं। उत्तर पूर्वी पहाड़ी राज्यों का मुख्य सहारा कृषि है। इस क्षेत्र में रहने वाली 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या किसान के रूप में जीवन यापन करती है, 9.28 प्रतिशत कृषि मजदूर और 8 प्रतिशत पशुधन, वानिकी (जंगलों) और वृक्षारोपण के कार्यों में जीवन वहन करती है। इस क्षेत्र में खेती मुख्य रूप से वर्षा पर आधारित होती है, सिक्किम राज्य जहाँ मक्का प्रमुख फसल के अलावा सभी राज्य धान–आधारित हैं। उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों को बड़ी संख्या में जनजातीय/जातीय समूह की मातृभूमि के रूप में जाना जाता है। लगभग 126 आदिवासी समूह इस क्षेत्र में रहते हैं एवं उनमें से 80 प्रतिशत दूरस्थ स्थानों में रहते हैं। वहाँ पर रहने वाले लोगों की समस्याएं, जरूरतें एवं संसाधन अलग–अलग हैं। क्योंकि बाजार की केंद्रों में पहुँच न होने के कारण आदिवासी लोग अकसर आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने में असमर्थ होते हैं, आधुनिक आगतों की अनुपलब्धता, संस्कृति, मानसिकता और अन्य कारणों से इस क्षेत्र में हरित क्रांति का मामूली सा भी कंपन महसूस नहीं हुआ। लोग अपनी स्वयं की संस्कृति, आस्था और खेती के अपने पारंपरिक तरीकों को अपनाते हैं। इस क्षेत्र में कुछ परंम्परागत कृषि प्रणालीयाँ इस प्रकार हैं जैसेः झूम खेती, बनर स्लेश एवं बर्न प्रणाली, जबुर रूजा प्रणाली, टीलैंड लुंगा प्रणाली, अजी नई असौनी या अपाटनीस धान–मछली, एकीकृत खेती प्रणाली, पानी–खेती एवं धान खेती प्रणाली, एल्डर (अलनस) आधारित कृषि प्रणाली, बांस बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली इत्यादि www.kiran.nic.in, बोरठाकुर; 1992, रहमान और उनके

सहयोगी, 2009) हैं। इस क्षेत्र की प्रणालियाँ प्राचीन समय से ही भारी वर्षा, उच्च आर्द्रता, कम तापमान, गीलापन और मजदूरों की कमी की समस्याओं का सामना करने के रूप में प्रचलित हैं। आईये हम इन खेती की प्रणालीयों के महत्व पर चर्चा करें।

1. झूम या स्थानांतरित खेती

मेघालय एवं मिजोरम जैसे राज्यों में भूमि स्वामित्व समुदाय या गाँव परिषद के हाथों में होता है ना कि व्यक्तिगत रूप से गाँव के मुखिया द्वारा एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत खेती के लिए आदिवासी परिवार को पहाड़ों पर खेती के लिए भूमि देता है। झूम खेती या स्थानांतरित खेती में कृषि क्रियाओं का आरम्भ कटाई से, साफ सफाई एवं पेड़ों को जलाने एवं मानसून के आने से पहले वानिकी के कार्य को किया जाता है। कुछ उपयोगी पेड़ों को ऐसे ही बनाए रखा जाता है। आग संध्याकाल के समय समूह में लगायी जाती है जो लगातार 2 से 3 दिन रहती है। गर्मियों की बरसात की बौछार के बाद झुमियाज (झुम या स्थानांतरित खेती करने वाले लोग) बुआ/रोपण शुरू करते हैं (सेतापती, 2002)।

झुम खेती के लिए पहाडी वानिकी (जंगलों) को जलाना

फसलों की बुआई के लिए तैयार पहाड़ी है

झुम में बहु–फसल को उगाया जाता है।

भूमि की जुताई ना करके छोटी लकड़ी की सहायता से (भारी यंत्र और मशीन उपयोग में नहीं लायी जाती) मृदा की उपरी परत को जरा सा हटाकर उसमें बीजों को बोया जाता है। बहु फसलें मक्का, धान, रागी, अनाज, मूंग, उड़द, धान सेम, राजमा, टमाटर, बैंगन, कददू, अरबी, शकरकंद, आलू, हल्दी, अदरक इत्यादि की झूम भूमि (खेती) में प्रायः बुआई/रोपण मिश्रित रूप में की जाती हैं। लगभग 3 से 4 वर्ष के लिए पहाड़ी पर खेती के बाद (या मृदा उर्वरता के स्तर में गिरावट) झुमीआस को अन्य पहाड़ी या जगहों पर स्थानांतरित किया जाता है। मृदा उर्वरता की प्राप्ति के बाद झुमीआस की पुरानी जगहों पर वापसी होती है। वानिकी (जंगलों) भूमि में खेती चक्र के बाद वानिकी भूमि को खाली छोड़ दिया जाता है और वापस अपने मूलतः स्थान पर खेती करने को झूम चक्र या स्थानांतरित खेती कहा जाता है। बहुत समय पहले, भूमि में प्राकृतिक वन एवं मिट्टी की प्रजनन क्षमता को ठीक करने के लिए झुम खेती को लगभग 10 से 15 वर्ष तक छोड़ दिया गया था। जनसंख्या वृद्धि के साथ, भूमि के उपर दबाव बढ़ने से झूम–चक्र 3 से 5 साल तक घट जाता है, जो कि प्राचीन झुम प्रणाली या संरक्षित खेती के विरूद्ध माना जाता (बोरठाकुर, 1992) है। सिर्फ सिक्किम राज्य को छोड़कर स्थानांतरित खेती का अनुसरण सभी उत्तर पूर्वी पहाड़ी राज्यों में किया जाता है। पुरानी कृषि पद्धति में शामिल 33 जिलों में से लगभग 3.85 लाख आदिवासी परिवार फैले हुए हैं। एनआरएसए वेस्ट लैंड एटलस–2005, के अनुसार झूम के द्वारा सम्पूर्ण भारत का लगभग 18.76 लाख हैक्टर क्षेत्र प्रभावित था। एनोन, 2006 के अनुसार उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में 13.48 लाख हैक्टर क्षेत्र का 71.85 प्रतिशत क्षेत्र झुम खेती के अन्तर्गत था। किसी समय उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र का लगभग 8.09 लाख हैक्टर या 60 प्रतिशत क्षेत्र इसी खेती के अन्तर्गत आता था।

आईये इस प्रणाली के गुण एवं दोष को देखते हैं। झूम खेती का मूल स्वरूप अनुकूलनीय, लचीला, आर्थिक रूप से उत्पादन और पारिस्थितिकी रूप से चिरस्थायी कृषि के रूप में देखा जाता है। झुमीयास सोचते हैं कि जुताई की मिट्टी एक दोष है क्योंकि यह धरती माता को नुकसान पहुँचाती है। इसलिए पहाड़ियों पर जुताई नहीं की जाती (मिट्टी कटने के कारण सीढ़ियाँ खेत के बीच में नहीं बनायी जाती)। वानिकी (जंगलों) एवं खड़ी ढ़लान पहाड़ियों में जुताई एवं गतिहीन खेती वहाँ पर संम्भव नहीं हो पाती। इसलिए वानिकी (जंगलों) को कृषि के अन्तर्गत लाने का रास्ता एवं पारिस्थतिकी के भौतिक भूगोल का विकसित प्रतिबिंब है। झूमीआस कभी भी कीटनाशी, कवकनाशी, रासायनिक उर्वरक का उपयोग नहीं करते इसलिए झूम एक जैविक खेती है और जो कि प्राकृतिक और स्वस्थ खेती प्रदान करती है। यह बहु–खेती पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोग, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा रहने और परिवार की जीविका (भट्ट एवं भूजारबरूवा, 2005) की पूर्ति करती है। बहुफसली

खेती मृदा उर्वरता एवं पारिस्थितिकी को नुकसान नहीं करती हैं जबकि हरित क्रांति प्रणाली में एकल खेती को करने से मृदा का स्वास्थ्य खराब होता है। झुमीआस के द्वारा स्थानीय प्रजातियों के फसल और बीज को संरक्षित किया जाता है जो जैव विविधता संरक्षण के प्रयासों में बहुत बड़ा योगदान देता है। इन दिनों में, झुमीयास केवल 3–4 वर्ष के लिए पहाड़ियों पर खेती करते हैं और 6–10 वर्षों के लिए खाली छोड़ दिया जाता है। जब वे उसी पहाड़ी पर 6–10 वर्ष बाद वापस आते हैं, जंगल प्राकृतिक रूप से पुनर्स्थापित एवं मृदा उर्वरता मजबूत हो जाती है। स्थानांतरित खेती के कारण वनों की कटाई एवं जैव विविधता की हानि होती है। जंगल जलने के समय, पास वाले क्षेत्रों से कीट रोशनी की तरफ आकर्षित होकर मर जाते हैं। मृदा में निवास करने वाले कीडे भी नष्ट हो जाते हैं। कीट जैव विविधता का नुकसान करते हैं लेकिन झूम खेती में कीटों की समस्या कम होती है। जब झूम–चक्र सक्षम रूप से लम्बा था और झूमीयास की आबादी कम थी उस समय झूम खेती में अच्छा कार्य किया गया। हालांकि, झूम का वर्तमान समय के साथ झूम–चक्र कम कर दिया गया और बढ़ती आबादी एवं तेजी से वनों की कटाई, मृदा अपरदन, वर्षा के पानी का अपवाह एवं मृदा पोशक तत्वों, जलाशय रेत का अवसादन, पारिस्थितिकी असंतुलन (बोर्थकुर, 1976) के कारण इनकी समष्टि बढ़ जाती है। पेड़ों के जलने से उच्च कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन होता है। उत्तर पूर्वोत्तर पहाड़ी क्षेत्रों में वानिकी वृहत् कार्बन सिंक (क्षीण होना) है एवं जैव विविधता का निवास है, इसलिए जैव विविधता को खोने की अनुमति नहीं दी जाती।

2.स्लैश एवं बर्न या बर्न प्रणाली

झूम प्रणाली के विपरीत, वन एवं स्लैश और जलती पहाड़ी ढलानों एवं घाटी में खेती की एक प्रचलित प्रणाली हैं। जब भी नयी वानिकी (जंगलों) या खाली पड़ी हुई भूमि को खेती के अन्तर्गत लाया जाता है तब स्लैश एवं बर्न प्रणाली को प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रणाली में खरपतवार, झाड़ी, चीड़ के पेड़ गिरते हुए और पहाड़ी पर जंगल की पत्तियाँ स्वयं ही गिर जाती हैं और (जनवरी से फरवरी के दौरान) मृदा में पलवार (मल्चिंग) के लिए छोड़ दी जाती है। सूखे पौधों के अवशिष्ट को जला दिया जाता है (अवस्थी और उनके सहयोगी, 1981)। यदि आवश्यकता है तो ऊपर–ऊपर से हस्त कुदाल की सहायता से खुदाई की जाती है। कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों जैसे असम, मणीपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा में खेत के चारो ओर निकास नालियाँ बनाई जाती हैं। खासी पहाड़ियाँ जैसे जयंतिया पहाड़ियाँ, गारो पहाड़ियाँ या मेघालय में थोडा सा संशेधित स्लैश एवं बर्न प्रणाली स्थानीय रूप से वन (खासी भाषा में अर्थ जलाने के लिए सामग्री) या नूर वन (मेघालय में नूर एक भूमि इकाई है, जो कि 1.25 मी. चौड़ी एवं 4 मी लम्बी बीज शैया के समान) का अनुसरण किया जाता है। इस प्रणाली में वानिकी (जंगलों) वनस्पति एवं पेड़ों को काट दिया जाता है। खरपतवार एवं स्वयं झाड़ियों की पुनर्वृद्धि को काट दिया जाता है। पादप अवशेष, टहनियों के साथ (घास द्वारा ढ़की भूमि) से इसकी एक लम्बी ढेरी बनाई जाती है या ढलान के साथ शैया को उगाया जाता है। सूर्य से फसल अवशेष उजागर होने के बाद, फरवरी माह के दौरान ढ़ेरी को मृदा से 20–25 सेंटीमीटर की ऊँचाई तक ढककर और उसको जलाया जाता है। यद्यपि इसको पूरी तरह से जलाया नहीं (आंशिक अवायवीय अवस्था) जाता। यह मृदा जनित रोगजनकों और कीटों का रोगाणुनाशन करता है। एक वन से दूसरे वन का अन्तराल 1 से 1.25 मी., बन की लम्बाई 2 से 7 मी. भिन्न हो सकती है एवं बन की चौड़ाई 1.25 से 1.50 मी. (जीवा और उनके सहयोगी 2006) के अनुसार होती है। कुछ किसान नूर के उपर गोबर की खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करते हैं। वर्षा की पहली बौछार के बाद (अप्रैल माह) जल्दी ही बुआई/रोपण करना चाहिए। कंद फसलें जैसे अदरक, हल्दी, अरबी (कोलोकेसिया), आलू, सब्जियाँ जैसे टमाटर, पत्ता गोभी, मटर, सेम फली की सब्जी को प्रथम वर्ष बर्न में बुआई/रोपण किया जाता है। द्वितीय वर्ष के आगे से धान, मक्का, रागी इत्यादि की खेती की गयी। खेत में 3 से 4 वर्ष के लिए खेती की गयी एवं उसके बाद 2 वर्ष के लिए खेत को खाली छोड़ दिया जाता है। यह चक्र लगातार चलता रहता है।

वनस्पति को काटा जाता हैं, बनस को बनाया जाता है और जलाया जाता है।

उगायी गयी भौया या बन के भीर्ष पर फसलों को उगाना।

उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों के अन्तर्गत उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में शैया या सीढ़ीदार खेतों में निकास के प्रावधान के बिना सब्जियों या कंद फसलों को उगाना एक बहुत बड़ी समस्या है। भौगोलिक स्थिति एवं पारिस्थितिकी तंत्र तालमेल के

साथ स्लैश एवं बर्न प्रणाली विकसित हुई है। बहु मिश्रित खेती प्रणाली एक सामान्य प्रक्रिया है। मिश्रित शैया को खेत के ढलान और निकास नालियाँ के आस–पास उगाने से उसके साथ समस्याएं जैसे उच्च वर्षा, उच्च आर्द्रता और कम तापमान, ढलान से तलहटी तक अतिरिक्त अपवाह आती है एवं उच्च वर्षा के दौरान मृदा अपरदन को नष्ट होने से रोकने में सहायता करती है (सिंह और उनके सहयोगी, 2007)। इस प्रणाली में कीट एवं रोगों का आपतन भी कम होता है। फसल अवशेषों को जलाने से मृदा छिद्रयुक्त बनती है और मृदा में पोटाशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम सामग्री की मात्रा बढ़ती है परन्तु प्रथम वर्ष में कार्बनिक कार्बन सामग्री की 17 से 45 प्रतिशत मात्रा होती है परन्तु खेती के आगामी वर्षों में धीरे–धीरे इसकी मात्रा में कमी होना शुरू हो जाती है। वनस्पति को जलाने से मृदा पीएच बढ़कर लगभग 0.6 से 1.0 ईकाई बढ़ जाता है जो अम्लीय मृदाओं के लिए उत्तम है (वेंकटेंश और उनके सहयोगी, 2001 एवं मिश्रा और साहा, 2003)। बन प्रणाली की खेती मृदा उर्वरता को उन्नत करती है इसलिए किसानों को उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिए या कम उर्वरक का प्रयोग (मेघालय में आलू नूर को जलाना चाहिए) करना चाहिए।

3. अजीगनुई असोनी या अपटानी धान–मछली एकीकृत प्रणाली

अरूणाचल प्रदेश के जिरोवल्ली में अपटानी समुदाय में कई दशकों के लिए एकीकृत धान–मछली पद्धति का अनुसरण किया जाता है। इस पद्धति को स्थानीय अजीगनुई असौनी के रूप में जाना जाता है एवं यह उच्च उत्पादकीय एवं यह अलग तरीके से पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करता है।

जाइरो घाटी में अपटानी जनजाति (आदिवासी द्वारा चावल–मछली एकीकृत खेती)

हालाँकि, अपटानी पद्धति परिदृश्य यूनेस्को में सम्मिलित किया गया था। अप्रैल–मई माह के दौरान धान–मछली एकीकृत प्रणाली के अन्तर्गत खेत की तैयारी शुरू हो जाती है। सीढ़ीदार खेत का निर्माण समतल और मजबूत मेड़ के साथ जो उसको सहायता प्रदान करके घाटी के नीचे हो जाता है (प्रायः फसल अवशेष, बाँस की लकड़ी को बढ़ावा देता है)। जंगलों से पानी निकलने के बाद आस–पास की पहाड़ियों पर पानी का तुरन्त उपयोग किया जाता है, और उसके बाद घाटी में नालियों के द्वारा वानिकी से निकलकर एवं एक योजनाबद्ध तरीके से प्रथम, द्वितीयक एवं तृतीयक नालियों का निर्माण करके खेत में पानी के बहाव को मोड़ दिया जाता है। यह सिंचाई के उद्देश्य (मिश्रा एवं शर्मा, 1999) के लिए गुरूत्वाकर्षण जल प्रबंधन का न्यायसंगत सरल तरीका है। मई से जून माह के दौरान खेत में धान की पौध को रोपित किया जाता है। रोपण के दस दिन बाद लगभग तीन से चार महीने के लिए धान के खेत में सामान्य कार्प (सीप्रीनस) के स्थानीय विभेद (स्थानीय मछली जैसे 'तैलींगयी' (चना) को संग्रह एवं धान के खेत में इसे कम देखा जाता है एवं अजींगीयी (प्यूनाइटिस) प्राकृतिक रूप से खेतों में उपलब्ध होते हैं)। तीसरे माह के दौरान मछली की आंशिक निकाली की जाती है। अंतिम निकाली अगस्त–सितम्बर (500 किलोग्राम मछली प्रति हैक्टर) माह के दौरान की जाती है। अपटानी धान पारिस्थितिकी एक उत्तम उत्पादकीय प्रणाली है जिसके अन्तर्गत किसानों के द्वारा 4 टन प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है जो कि राज्य में धान की औसत उपज से ज्यादा है (सेकिया एवं दास, 2009)। आईये हम इस प्रणाली की सार्थकता (महत्व) के बारे में जाँच करते हैं। अपटानी विश्व की कुछ जनजातियों में से हैं जो प्रकृति (सूर्य एवं चंद्रमा) की पूजा करते हैं। इनका सम्बंध प्रकृति के साथ होता है जो उनके सांस्कृतिक एवं कृषि पद्धतियों को नियंत्रित करते हैं। अपटानी के स्वयं के सख्त सामाजिक नियम एवं प्रणालियाँ होती हैं जिन्हें प्रकृति, संस्कृति एवं मनुष्य के लिए पारस्परिक रूप से एक–दूसरे का सहयोग करने के लिए रूपरेखा तय करती है। जनजाति सीमित संसाधनों का प्रभावी रूप से उपयोग करते हैं। गाँव परिषद, का उपयोग जैसे कुक्कुट छोड़ने, सुअर मलमूत्र, गाय का गोबर, पौधों के अपशिष्ट जैसे चावल का छिलका, स्थानीय बीयर के अपशिष्ट उत्पाद, घर में जलाई हुई राख, शेष जला हुआ पुआल का उपयोग करते हैं **(http://lowersubansiri.nic.in/html/paddyfish_culture.htm)** इसलिए उत्पाद जैविक एवं खेती की लागत कम होती है। खेत की मेंड़ों पर बाजरा उगाने से उनकी खाद्य सुरक्षा बढ़ती है एवं यह सीमित भूमि संसाधनों के सक्षम उपयोग का एक उदाहरण है। अपवाह के द्वारा मृदा पोषक तत्व की हानि एवं फसल अवशेष के पुनःचक्रण एवं अपने प्रक्षेत्र के जैविक अपशिष्ट के उपयोग द्वारा फसल हटाने का बदलाव किया जाता है। स्थानीय धान किस्में जैसे 'इम्पौर', 'इको', 'प्यापाइंग', 'प्यात प्यानी', 'फाक', 'मिपया' इत्यादि जो कि लम्बी अवधि की किस्में हैं (190 से 278 दिनों) जो कि एकीकृत मछली पालन के (नाचन एवं उनके सहयोगी, 2012) लिए जरूरी है। यह जनजाति धान आनुवंशिक विविधता को संरक्षित करती है। यह प्रणाली जैविक पद्धति के साथ–साथ एकीकृत गहन खेती का एक उदाहरण है एवं मनुष्य एवं प्रकृति कैसे एक साथ मिलकर सामंजस्य बैठा सकती है। धान–मछली एकीकृत कृषि प्रणाली की स्थिरता 100 से अधिक वर्षो से है।

4. जैबो प्रणाली (रूजा)

जैबो प्रणाली का अर्थ अपवाह जल अवरोधन है। जैबोइस एक स्वदेशी एवं सरल जल विभाजक प्रबंध सह एकीकृत प्रक्षेत्र प्रणाली है जो नागालैंड राज्य के फेक चखेशंग जनजाति के द्वारा की जाती है। इस प्रणाली में मिल घटक शीर्ष पहाड़ी पर वानिकी (जंगलों) की सुरक्षा में जल ग्रहण के रूप में कार्य करते हैं। पहाड़ी के मध्य में बहुत सारे तालाब वर्षा के पानी को बचा कर रखते हैं। तालाब के मध्य एवं किनारे को अच्छी तरह से मरम्मत करके निस्पदन को कम किया जाता है।

शीर्ष पहाड़ी से बहने वाले वर्षा के पानी का तालाबों में वितरण किया जाता है। पानी के रास्तों में सिल्ट की थोड़ी मात्रा गड्ढ़ों में रह जाती है या टैंक में रह जाती है। तालाब से पानी को पशु प्रक्षेत्र (फार्मो), ऊपरी सीढ़ीदार खेत एवं अंत

में कम उँचाई पर स्थित धान क्षेत्रों में (सिंह और उनके सहयोगी, 2012) से गुजारा जाता है। सब्जियों एवं फलों के पेडों को ऊँचाई वाले सीढ़ीदार खेतों में उगाया जाता है। लम्बी अवधि की स्थानीय धान किस्में जैसे तनयेकेमुगा, लोखमो, सिंहासन, चांग, केमेसे–यु, केखुरियाला, केमेलियो को नीचे सीढ़ीदार खेतों में जून से जुलाई माह के दौरान रोपण एवं अक्तूबर माह के दौरान कटाई (नगाचन और उनके सहयोगी, 2012) की जाती है। कुछ किसानों ने नीचे की तरफ लेटे हुए सीढ़ीदार खेतों में धान–सह–मछली पालन शुरू किया। धान के खेत के बीच में एक छोटा सा गड्ढ़ा खोदा जाता है और मछली के बच्चों को खेत में जुलाई के महीने में छोड़ा जाता है। जब धान की फसल परिपक्वता पर पहुंचँ जाती है तो पानी के साथ मछली गड्ढ़े में चली जाती है और वहाँ पर मछली की कटाई अक्तूबर से नवम्बर महीने के दौरान की जाती है। नहरी क्षेत्र में सभी परिवार जिनके पास सीढ़ीदार खेत हैं उन क्षेत्रों में मार्च से अप्रैल माह के दौरान परिवार के लोग सिल्ट (पानी के बहाव के साथ लाई गयी मिट्टी या रेत) टैंक एवं तालाबों की वार्षिक सफाई में भाग लेते **(http://cpreecenvis.nic.in)** हैं। जल को समुदाय के बीच में किस प्रकार साझा किया जा सके यह प्रणाली इसका एक उदाहरण पेश करती है। यह प्रणाली कृषि, वानिकी, एवं पशुपालन और वैज्ञानिक तरीके से जल संग्रह, संरक्षण एवं वितरण का संयोजन है।

5. टी लैंड लुन्गा प्रणाली

वर्तमान में त्रिपुरा के धलाई जिले के लोगों द्वारा स्थानांतरण खेती एवं स्थाई खेती की जा रही है। त्रिपुरा में कृषि योग्य भूमि को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है जैसे लुन्गा एवं टिल्ला लैंड। लहराती, ढलान वाली, उच्च ऊँचाई में अनुत्पादकता भूमि लुन्गा भूमि है। लुन्गा भूमि एक उत्पादित समतल प्रणाली है जो कि दो पहाड़ियों (घाटी) में नीचे ऊँचाई पर स्थित है। लुंगा भूमि पहले से ही खेती के अन्तर्गत है जबकि टिल्ला भूमि कुछ हद तक झुम खेती के अन्तर्गत आती है एवं कुछ हद तक यह स्थिर खेती के लिए सुधारी गयी है (अशोक वर्धन, 2002)। लुंगा भूमि में किसानों के द्वारा धान उगाया जाता है। स्थानीय धान किस्में जैसे पाइजम, कलीखासा, बीनी को उनके विशेष स्वाद एवं स्थानीय अवस्था की उपयुक्तता (देबनाथ और उनके सहयोगी, 2014) की प्राथमिकता के आधार पर उगाया गया है। इस प्रणाली में जैविक उर्वरकों की कम मात्रा का उपयोग किया जाता है क्योंकि फसल के लिए मुख्य पोषक तत्वों की आवश्यकताओं की पूर्ति पत्ती के कूड़ों के अपघटन, खरपतवार, पिछली फसल के अवशेष एवं टिल्ला भूमि से विलुप्त हुए पोषक तत्वों से की जाती है। किसानों की दैनिक सब्जियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किचन गार्डन को घर के पीछे आंगन के साथ–साथ धान के खेत की मेढ़ों पर भी बनाया जाता है। टिल्ला भूमि में, सब्जियाँ, कसावा, फलों की फसलें जैसे आम, सिट्रस एवं केला के अलावा पशु (अधिकतर सुअर) एवं घर के पीछे आंगन में मुर्गीपालन को भी बनाए रखा जाता है। केला और कसावा (साबुदाना) के अपशिष्ट को सुअर को खिलाया जाता है। यह प्रणाली जैबो प्रणाली से समान है। अकार्बनिक उर्वरक एवं पीड़कनाशी का उपयोग मछली के तालाब के पास नहीं किया जाता। विभिन्न घटकों की उत्पादकता एवं लाभप्रदता परम्परागत पद्धति के अन्तर्गत कम होती है परन्तु यह पारिस्थितिक रूप से टिकाऊ है। यह प्रणाली प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करके एकीकृत कृषि प्रणाली का भी एक उदाहरण है।

6. एल्डर आधारित खेती प्रणाली:

एल्डर या हिमालयन एल्डर (अल्नसनीपेलेनेसिस डी. डान परिवारः बेटुलेसी) एक गैर दलहनी नाइट्रोजन स्थिरीकरण पेड़ है जो सहजीवी जीवाणु फ्रेंककिआलनी के साथ मिलकर

जड़ ग्रन्थियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं। अधिक उँचाई वाले क्षेत्रों में जिनकी सीमा 800 से 3000 मीटर है वहाँ पर इनको एल्डर आधारित खेती प्रणाली में उगाया जाता है। पेड़ों के अलावा वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण करके, शेड में पत्तियों को फैलाकर नमी को कायम रखने एवं पलवार (मल्चिंग) एवं सड़ी पत्तियों को मिट्टी में (100 पेड़ों की पत्तियों को फैलाकर 3–6 टन प्रति वर्ष मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं) मिला देने से शुष्क पदार्थ सम्मिलित 3.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.08 प्रतिशत फास्फोरस एवं 0.6 प्रतिशत पोटाश, 0.2 प्रतिशत (राठौड़ और उनके सहयोगी, 2010) नमी को कायम रखा जाता है। लकड़ी जलाने के लिए पेडों का उपयोग किया जाता है, एल्डर आधारित खेती प्रणाली की पारिस्थितिक स्थिरता अधिक है क्योंकि यह पेड़ भूस्खलन से प्रभावित स्थल पर स्वाभाविक रूप से पुनः उत्पन्न होते हैं। एल्डर आच्छादित या वानिकी के अन्तर्गत कृषि उद्यान फसलों को उगाने का विवरण नीचे दिया गया है।

कोहिमा एवं नागालैंड राज्य के फैंक जिले के अन्तर्गत एल्डर आधारित झूम प्रणाली की खेती को 1000 एवं 2000 मीटर के ऊँचाई वाले क्षेत्रों के बीच अंगामी, चाखोसांग, चंग एवं कोनयाक जनजातियों (आदिवासी) द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली में एल्डर पौधों को चौड़ी पंक्तियों में 5–6 मीटर के अंतराल पर रोपण किया जाता है। 6वें या 7वें वर्ष के बाद या जब वृक्ष की छाल पर दरार विकसित हो जाती है तब पेड़ के ऊपर का शीर्ष भाग काटना (मुख्य तने के ऊपर का शीर्ष भाग काटने का कार्य) शुरू किया जाता है।

धरातल से 2–3 मीटर ऊँचाई पर मुख्य तने को काटा जाता है एवं पार्श्व शाखाओं को विकसित होने की अनुमति दी जाती है। उसी समय पर झूम चक्र (झूम का प्रथम वर्षा) शुरू हो जाती है। पहाड़ी के ऊपर घास एवं झाड़ियों को काटकर जला दिया जाता है। जलाए गये क्षेत्रों में अन्तः फसल के अन्तर्गत धान्य फसलें जैसे धान, जौ, मक्का, बाजरा, एक प्रकार का अनाज, दालें जैसे अरहर, चावल बीज, सब्जियों, अदरक, हल्दी, साबूदाना, अरबी, मीठा आलू इत्यादि को उगाया जाता है। दूसरे एवं तीसरे वर्षा में खेती को दोहराया जाता है। पेड़ पर चार से छः शाखाओं को छोड़कर दूसरे वर्ष में बड़े पैमाने पर उगाए जाने वाले एल्डर शाखाओं का काटने का कार्य किया जाता है।

मृदा उर्वरता को बनाए रखने के लिए खेती वाली जमीन को 2 से 4 वर्ष के लिए खाली छोड़ दिया जाता है साथ ही साथ अगले झूम–चक्र की शुरूआत में एल्डर पेड़ को उगाया जाता है। झूम भूमि में एल्डर पेड़ों और इसके अवशेषों के समावेश करने के कारण ही किसानों को फसल की उच्च उत्पादकता (पुलमेट, 2008) मिल रही है। परम्परागत झूम प्रणाली में, किसान 2 से 3 वर्ष के लिए खेती करते हैं और उसी जमीन को 8 से 9 वर्ष के लिए खाली छोड़ देते हैं, इस प्रणाली के अन्तर्गत खेती वाली भूमि को खाली छोड़ने का अनुपात 1:4 रखा जाता है। चूंकि 2 वर्ष के लिए एल्डर आधारित खेती एवं दो वर्ष के लिए खाली छोड़ने का अनुसरण किया जाता है, इसलिए खेती से खाली छोड़ने का अनुपात 1:1 होता है।

अ) सिक्किम एल्डर के अधिक ऊँचाई के क्षेत्रों पर बडी इलायची आधारीत कृषि–वानिकी प्रणाली पद्धति का अनुसरण (अवस्थी और उनके सहयोगी, 2008) किया जाता है। बड़ी इलायची (अमोमम सबुलेटम रोक्सब, परिवारः जिनजीबरेसी) एक छायादार पसंद (सायोफाइट) मसाला फसल है, जो सिक्किम–हिमालय (शर्मा और उनके सहयोगी, 2000; सुब्बा, 1984) में लेप्चा एवं लिम्बो जनजातियों के वातावरण के अनुकूल है। भारत विश्व में सबसे बड़ा इलायची उत्पादक देश है जिसका योगदान 54 प्रतिशत और इसके बाद नेपाल (33 प्रतिशत), एवं भूटान (13 प्रतिशत) आते हैं। इसकी खेती उपहिमालयी क्षेत्र जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से 1000 से 2200 मी. ऊपर आर्द्र उपोष्णकटिबंधीय अर्ध–सदाबहार जंगलों तक सीमित है। वर्ष 2016–17 के दौरान, बड़ी इलायची की खेती 26,787 हैक्टर के क्षेत्र में फैली हुई है (सिक्किम में 87 प्रतिशत क्षेत्र, एवं पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में 13 प्रतिशत (मसाला बेर्ड, 2017) फैली हुई है। जून–जुलाई माह के दौरान बडी इलायची का रोपण या दोबारा रोपण के कार्य को करना चाहिए। क्योंकि सिक्किम राज्य के मध्य एवं ऊँची पहाड़ियों के क्षेत्र उच्च वानिकी के अन्तर्गत (सिक्किम के भौगोलिक क्षेत्र का 47. 8 प्रतिशत क्षेत्र) आता हैं, बड़ी इलायची के रोपण या छायादार पेड़ जैसे ऐशीलाए, असर, नेवारो, सिनकोना, मेलीतो इत्यादि का इलायची की खेती में रोपण के लिए पहले से मौजूद एल्डर वानिकी का चयन किया जाता हैं। इलायची के रोपण के लिए वृद्धि के अन्तर्गत खरपतवारों को साफ करके भूमि का चयन करना चाहिए। परम्परागत नस्लें जैसे रामसे, गलोसी, सरीमनांग, बरलागें, स्वाने, सावने, मधुसे इत्यादि का गड्ढों में रोपण किया जाता हैं, सूखे कैप्सुल की सीमा 100 से 400 किलोग्राम/हैक्टर एवं वार्षिक रिक्त स्थान एवं कायाकल्प गतिविधियाँ के साथ खेती लगातार कई वर्षों तक चलती रहती है। समय–समय पर छायादार वृक्षों के किनारे वाली शाखाओं की छंटाई/नियंत्रित की जाती है एवं यह पद्धति बड़े इलायची की शेड की आवश्यकताओं को प्रभावित किए बिना वानिकी, लकड़ी एवं चारे की आपूर्ति प्रदान करती है एवं पुराने पेड़ की जड़ों को फैलाने वाली मोटी उप–सतह के कारण बड़े इलायची के ठूँठों को उठाने से रोकता है। अलनुसंद की अन्य प्रजातियाँ के विकास के अन्तर्गत खेती की जाने वाली बड़ी इलायची को अधिक उत्पादक, लाभकारी और पारिस्थितिकीय सौम्य माना जाता था (शर्मा और उनके सहयोगी, 2000)।

7. पानी–खेती एवं धान–खेती की खेती

सीढ़ीदार खेत में गीली धान खेती प्रणाली के अन्तर्गत पानी खेती एवं धान खेती की प्रणालियाँ आती हैं। इस प्रणाली के घटक सीढ़ीयाँ, जल प्रबंधन एवं भूमि प्रबंधन है। इस पद्धति को नागालैंड के अगंमी एवं चकेशांग जनजातियों एवं सिक्किम राज्य (नागाचैन और उनके सहयोगी, 2012) द्वारा (सुब्बा, 2012) अपनाया जाता है। विभिन्न आकार की सीढ़ीनुमा खेत जिनका आकार (2–5 मीटर चौड़ाई; 30–60 मी लम्बे) ढलान के चारों ओर स्वयं निर्मित हो जाते हैं। भूखंड (प्लॉट) के नीचे की तरफ मजबूत मेंड़ (0.5–1.0 मीटर चौड़ाई; 0.2 से 1.5 मीटर साढ़ियों की ऊँचाई) बनाई जाती हैं। पानी की धाराओं से या झोरास या खोलास से पानी को नहरों के माध्यम खेत में मोड़ा जाता है। एक सीढ़ी से दूसरी

सीढ़ीनुमा खेत में धान की खेती

सीढ़ी के अन्तर्गत मेंड़ों के उपर छोटे वैज बनाकर जिससे उनका मुख मेड़ों पर खुले पानी के प्रवाह को नियंत्रित किया जाता है। नर्सरी की तैयारी मानसून आने से पहले (अप्रैल–मई) में करनी चाहिए। जून के पहले सप्ताह तक, सभी सीढ़ीयों में पानी भर देना चाहिए। इस समय के दौरान खेतों को पडलींग किया जाता है। धान का रोपण पहले उच्च पहाड़ी (मई) एवं धीरे–धीरे नीचे वाली पहाड़ी (जून–जुलाई) की तरफ बढ़ जाता है। सिक्किम में इस प्रणाली को धान–खेती एवं नागालैंण्ड में इसे जुटसे या खुसुर वखरा के नाम से जाना जाता है और ये प्रणालियाँ पानी के स्रोत के ऊपर निर्भर करती हैं। सिक्किम में प्रमुख लम्बी अवधि परम्परागत धान की किस्में जैसे एटी, सानो एटी, चिरकी, दुत काटी, मैनसुर, फुन्डगीं, नुनिया, बीरीमफुल इत्यादि हैं (करूप्पैयन और उनके सहयोगी, 2008) एवं किस्में लोखमो, ग्लुटिनियस धान (बियर बनाने के लिए चिपचिपा धान का उपयोग किया जाता है।), सिंगसन चांग, कैमीसी–यु, केमेलियो, जलुकी की, खुरसन, चाकेसांगिया, (नागालैंड में) प्रणाली पर हावी रही। धान की परिपक्वता की अवस्था तक सभी सीढ़ीनुमा खेतों में लगभग 10–15 सेंटीमीटर पानी के स्तर को कायम रखा जाता है। कुछ किसान सितम्बर माह तक धान के उगे पौधों को तेज हवाओं या दानों के भार से गिरने से बचाने की सुरक्षा के लिए बांधते हैं।

खेती की बेंच सीढ़ियाँ प्रणाली स्थापित खेती का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जो 100 प्रतिशत या उससे अधिक की खड़ी ढ़लानों और चट्टानी भूमि को खेती वाली भूमि में परिवर्तित करता है। कुछ वर्षों से यह प्रणाली लगातार भूमि के उपयोग को अपवाह एवं मृदा की हानि को कम करके सम्भव बनाती है। इस प्रणाली में पहाड़ियों के ऊपरी हिस्से से पोषक तत्वों के निक्षालन द्वारा कम ऊँचाई वाले खेतों में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है। नागालैंड राज्य में पानी खेती एक मोनोक्रापिंग प्रणाली है परन्तु सिक्किम में धान की कटाई के बाद, सीढ़ियों का उपयोग फसलें उगाने के लिए जैसे मक्का, सरसों, कुटटु, आलू, दालें एवं सब्जियाँ एवं खेत की मेंड़ का प्रयोग सोयाबीन, चावलबीन, उड़द को धान की फसल में अन्तः फसल के रूप में उगाया जाता है।

8. बाम्बु बूँद–बूँद सिंचाई (ड्रिप) प्रणाली

खड़ी ढलान वाली पहाड़ी के अन्तर्गत अखरोट के बागानों में या विशेष रूप से शुष्क सर्दियों एवं गर्मियों के दौरान पानी की कमी वाले क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा प्रदान करके फसलों जैसे पान की बेलों (बीटल वाईन), काली मिर्च, आदि को उगाया जाता है। समस्याओं को दूर करने के लिए, मेघालय एवं मुक्तापुर क्षेत्र के जयंतींद खासी पहाड़ी (हिल्स) के किसान एवं भारत–बांग्लादेश के किनारे के मुक्तापुर क्षेत्र के किसानों ने एक स्वदेशी, सक्षम सिंचाई दोहन प्रणाली का उपयोग (http://www.rainwaterharvesting.org) किया। इस प्रणाली की पद्धति को 200 वर्षों से ज्यादा प्रयोग में लाया जा रहा है एवं इसे बम्बु बूँद–बूँद सिंचाई (ड्रिप) प्रणाली के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रणाली में एक लंबे बांस कल्म (स्टेम) जो क्षैतिज रूप से विभाजित होता है उसकी एक तिहाई बाहरी आवरण की लम्बाई के साथ हटा दिया जाता है। इसके अलावा नोडल डायाफ्राम (पिथ) हटा दिया जाता है, पृथक बांस अपनी लंबाई में खोखला हो और यह सिंचाई पाइप या सिंचाई नालियों के रूप में कार्य करें। बांस पाइप के एक छोर को पानी के स्त्रोत में प्रवेश कराया

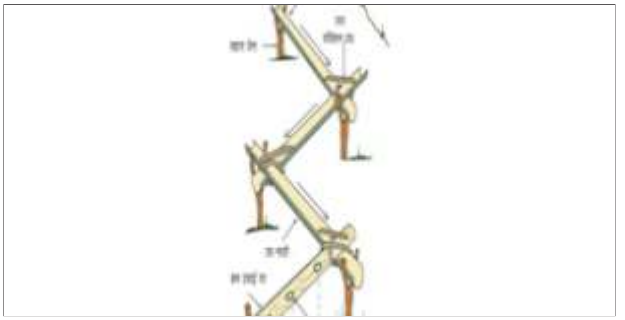

जाता है जो पहाड़ी के शीर्ष पर उत्पन्न होता (प्रवाह या बंसत) है। कल्म के दूसरे छोर से गुजरने वाला पानी दूसरे बांस के गुच्छे से जुडा हुआ होता है। इस तरह बांस पाइप के द्वारा पानी को कम ऊँचाई पर स्थित क्षेत्रों में पहुंचा दिया जाता है। आमतौर पर जल स्त्रोत बागानों से बहुत दूर होते हैं एवं मुख्य बांस नाली को सैंकड़ों मीटर चलाते हैं एवं कुछ मामलों में किलोमीटर में चलाते हैं। सम्पूर्ण प्रणाली गुरूत्वाकर्षण के मध्यम से पानी के प्रवाह पर निर्भर करती है। लकड़ी या बिना खण्डित बाँस की नालियों का निर्माण किया जाता है। जिन रास्तों पर बाँस की नालियां बंधी होती हैं। आधार की ऊँचाई को इस तरह से समायोजित किया जाता है कि प्रक्षेत्र के स्त्रोत से पानी के प्रवाह को आसानी से आने में सहायता करती है। प्रक्षेत्र के अन्दर, फसल को पानी देने के लिए छोटे छेद युक्त बाँस कल्म एवं मुड़ें पाईपों का उपयोग किया जाता है। मुड़ा पाईप एक छोटा विभाजित बाँस होता है जो वितरण के अतिंम छोर के पास नीचे की तरफ छेद पर होता है। मुख्य बम्बु लाइनों से क्षैतिज लाइनों के चारों ओर इस पाईप को रखा जाता है, जो मुख्य पानी के खण्ड (ब्लाक) को अवरूद्ध करता है, जो पानी के प्रवाह को क्षैतिज दिशा में बदल देता है। फसल के आधार पर छेद या बिना छेद वाले पाइप को रखा जाता है (पाईप का उपयोग फसल छिद्र निकट दूरी के लिए), जिसके माध्यम से फसल के जड़ क्षेत्र में पानी रिसाव से या बूंद–बूंद के द्वारा गिरता है।

आईये प्रणाली के गुणों की जाँच करें। पान की बेलों (बीटल वाईन), सुपारी के साथ मिर्च सहायक पौधे के रूप में रोपण करके इस प्रणाली के साथ सिंचित किया जाता है जिसमें पानी फसल के नीचे के क्षेत्र (आधार) पर टपकता है। पान की बेलों (बीटल वाईन) या मिर्च का रोपण मानसून आने से पहले मार्च माह के दौरान किया जाता है, क्योंकि सर्दियों के समय में ही सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसलिए सर्दियों और गर्मियों के दौरान बम्बु पाईप प्रणाली का उपयोग किया जाता है, मानसून के दौरान निष्क्रिय रहता है। यह प्रणाली नियमों पर आधारीत होती है कि;

1. स्त्रोत बिन्दु से पाईप की स्थिति में हेर–फेर करके क्षैतिज पाईप में पानी के प्रवाह को नियंत्रित करता है।

2. प्राथमिक नाली के व्यास का अनुपात तृतीय नाली में पानी की मात्रा का निर्धारण करता है जो पेड़ों के पास पहुँच जाता है। यह प्रणाली उत्कृष्ट प्रणाली है, स्त्रोत बिन्दु से बम्बु पाईप में प्रति मिनट की दर से लगभग 18–20 लिटर पानी प्रवेश करता है जिसे कई सौ मीटर से अधिक बताया जाता है एवं अंत में पौधा स्थान पर प्रति मिनट 20–80 बूंदें कम हो जाती है (डाबरल, 2002)। निर्माण सूक्ष्म कौशल का उदाहरण है जो वर्षो के निरीक्षण एवं अनुभव के साथ आता है। चूँकि इस क्षेत्र में बांस प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, इसलिए इस प्रणाली के निर्माण की लागत कम है। किसान स्वयं ही इस प्रणाली को स्थापित करने में सक्षम होते हैं। पाईप का रखरखाव एवं किसानों द्वारा समर्थित प्रणालियों द्वारा साझा किया जाता हैं। चूँकि बांस के कल्मस के माध्यम से पानी ले लाया जाता है, जंगल के पेड़ों को काटा नहीं जाता, नालियाँ बनाने के लिए मृदा को छेंड़ा नहीं जाता, यद्यपि प्रणाली पर्यावरण संरक्षण एवं पहाड़ी क्षेत्रों में प्रतिष्ठित प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करती है। इस प्रणाली में बताया गया है कि इसमें पानी की हानि कम होती है, जल उपयोग क्षमता उच्च चूंकि यह सरकारी योजना हर खेत में पूरा पानी एवं ज्यादा फसलें प्रति बूँद को सहयोग प्रदान करती है। यह प्रणाली सहकारी समिति आधार पर पानी सांझा करने का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। चूंकि पानी जड़ क्षेत्र के समीप गिरता है तो खरपतवार समस्या, उर्वरक एवं मृदा कटाव का निक्षालन भी कम होता है।

9. अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मोनपास बहुफसली खेती प्रणाली

मोनपा अरूणाचल प्रदेश (हुसैन, 2002) के कामेंग एवं तवांग जिले के उच्च ऊँचाई वाले क्षेत्रों के निवासी हैं। स्थानांतरित खेती अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों की आजिविका का आधार है परन्तु अब स्थिति में बदलाव हुआ है, विशेषकर मोनपा जनजातिय के लिए स्थापित खेती को अनुकूल बनाती है। बहुफसलें जैसे मक्का, बाजरा, कूट्टू, जौ की खेती उच्च सीमाओं वाले क्षेत्रों (समुद्र तल से 1800–2800 मी. से उपर) एवं धान की मध्य पहाड़ी में (1000–1800 मी. ऊँचाई) खेती होती है। आर्द्र धान क्षेत्र को छोड़कर मिश्रित एवं अन्तःखेती रणनिति सभी स्थानों पर प्रयुक्त होती है। जुताई के लिए याक का उपयोग किया जाता है। ओक की पत्तियां, भेड़ एवं याक खाद को जुताई से पहले खेत में प्रयोग किया जाता है। फसल अवशेष को सम्पूर्ण पुनःचक्रित किया जाता है। धान को छोड़कर अन्य फसलें वर्षाधीन फसलों (पलवार किये हुए खेत पर सीधी बिजाई) के रूप में वर्षाधीन खेती की प्रचुर मात्रा के कारण उगाया जाता है (गोसाई और उनके सहयोगी, 2014) है। निकटवर्ती पहाड़ियों से जहाँ झूम खेती की पद्धति का अका जनजाति (हुसैन, 2002) द्वारा अनुसरण किया जाता है उससे इस प्रणाली के उपयोग से पोषक तत्वों का निक्षालन हो जाता है। इनके रसोईघर के बगीचे बेहद जटिल हैं घरेलू खपत के लिए सभी सब्जियाँ, आवश्यक मसालों को बेया जाता है। मोनपा प्रणाली फसल प्रणाली के लिए प्राकृतिक संसाधनोंके कुशल उपयोग का एक उदाहरण है।

निष्कर्ष

उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में सभी जनजातीय समुदाय जो कि मांसाहारी है उनकी आंशिक रूप से पशु प्रोटीन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वदेशी खेती प्रणाली के अन्तर्गत बड़ी संख्या में कृषि, उद्यानिकी, चारे, उपयोग की गयी फसलों के अन्तर्गत एवं पशुपालन ये सभी घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परम्परागत खेती प्रणाली बड़े पैमाने पर जैविक खेती मानी जाती है (करूप्पैयन एवं रहमान, 2008)। बाहरी आगतों जैसे बीज, कीटनाशकों एवं उर्वरकों की उपलब्ध सूचना के आधार पर पहाड़ी खेती कैसे अपने परम्परागत रूप को बनाए रखने एवं जैविक खेती को बचाकर एवं उसी रूप में कायम रखने के लिए आंशिक रूप से अनुमान लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बहुत ही कम होता है। सिक्किम और इसका अनुसरण करते हुए मिजोरम राज्य को जैविक खेती का राज्य घोषित किया गया और यह सब नीति निर्माताओं के साहसिक निर्णयों के कारण हुआ अन्यथा पहाड़ी क्षेत्र के किसान हानिकारक अकार्बनिक कीटनाशकों एवं फंफूदनाशीयों के अंधाधुंध उपयोग के कारण इसके अवशेष द्वारा कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में प्रदूषित नदियों के अलावा यह जानवर, कीड़े, धरती एवं लोगों के स्वास्थ्य को निश्चित रूप से प्रभावित करता हैं। बड़ी संख्या में किसान रोपण का समय, फसलों का रोपण, कीट एवं बिमारीयों को नियंत्रित करने के लिए पांरपरिक विधियों (आईटीकेएस) पर निर्भर करते हैं। अनियमित बीज आपूर्ति एवं विनिमय प्रणाली अभी भी इस क्षेत्र में प्रचलित हैं जो आनुवंशिक विविधता के उच्च स्तर को बढ़ाती है। पोषण संम्बधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक जोखिम प्रबंधन रणनीति के रूप में बहु–फसलों एवं स्थानीय किस्मों की विस्तृत श्रृंखला को (बाहर की तरफ खरीदी कम है) उगाता हैं। रसोई उद्यान,

हालांकि कम उत्पादक खेती की पारंपरिक प्रणाली भारत के हरित क्रान्ति क्षेत्र में प्रचलित वाणिज्यिक एवं गहन खेती की तुलना में अधिक टिकाऊ एवं पर्यावरणीय रूप से अनुकूल है। हालांकि युवा पीढ़ियों की संस्कृति धीरे–धीरे बदल रही है जो संभवतः कृषि एवं जैव विविधता से संबंधित पारंपरिक ज्ञान में क्षरण का कारण बन सकती है। इसलिए, आईटीके, स्थानीय किस्मों का संग्रह करना एवं उनका संरक्षण करने एवं उन पर सुधार करने से भविष्य की पीढ़ियों को फायदा होगा। उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों के लिए भा.कृ.अनु.प.–अनुसंधान परिसर, शिलांग एवं इसके क्षेत्रीय केन्द्र जैसे अरूणाचल प्रदेश, मणीपुर, नागालैंड़, सिक्किम एवं त्रिपुरा इस दिशा में कार्य कर (भट्ट और उनके सहयोगी, 2003) रहे हैं एवं ऐसी आशा है कि स्थान विशिष्ट एकीकृत खेती प्रणाली जिसे भा.कृ.अनु.प. एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा क्षेत्र में प्रश्रय दिया जा रहा है कृषक समुदाय को लाभान्वित करेगा।

भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

– रवीन्द्रनाथ टैगोर

गेहूँ की खेती में जैव उर्वरक

अंजु, डी.पी. सिंह, सुधीर कुमार, पी.एल., कश्यप, ईश्वर सिंह एवं कृष्ण गोपाल
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अच्छी फसल उत्पादन के लिए भूमि की उर्वरता सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। जिस क्षेत्र की भूमि में जितने अधिक पोषक तत्व पाए जाते हैं वहाँ उसका उत्पादन भी अधिक होता है। पौधे के पूरे जीवन–काल में अनेक प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिसमें से अधिकांश का अवशोषण मृदा से जड़ों द्वारा होता है।

किसान उन पोषक तत्वों की आपूर्ति ज्यादातर रासायनिक उर्वरकों से कर रहे हैं जिसके कारण फसलों का उत्पादन अधिकतर रासायनिक उर्वरकों पर ही निर्भर हो गया है। अधिक मात्रा में इनके प्रयोग की वजह से कहीं ना कहीं भूमि की उर्वरता खराब हो रही हैं। इसलिए हमें रासायनिक उर्वरक के साथ जैविक उर्वरकों का प्रयोग भी करना चाहिए। जैविक खाद न केवल हमारी भूमि की उर्वरता को बढ़ाते हैं बल्कि आवश्यक पोषक तत्वों को पौधों तक पहुँचाने में सहायता प्रदान करते हैं साथ ही बिमारियों से लड़ने की क्षमता को भी बढ़ाते हैं।

रासायनिक खादों के लगातार और असंतुलित मात्रा में प्रयोग से हमारी कृषि भूमि और वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए और रासायनिक खादों के प्रभाव को दूर करने के लिए वैज्ञानिकों ने प्रकृति प्रदत्त जीवाणुओं को पहचानकर उनसे विभिन्न प्रकार के जैविक खाद तैयार किए हैं। गेहूँ के लिए मुख्यतः एजोस्पोरिलम, फास्फोटिका, स्यूडोमोनास तथा ट्राइकोडरमा का प्रयोग होता है।

जैविक खाद क्या है

जैविक खाद विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों से तैयार किए जाते हैं जो भूमि में रहकर पौधों को पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, जिंक आदि उपलब्ध कराते हैं। इन जैविक उर्वरकों से भूमि की उर्वरता बनी रहती है इनके निरंतर प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में सुधार होता है जो फसल के लिए लाभदायक होता है।

जैविक खाद

जैविक खाद के प्रकार

(क) नत्रजन यौगिकीकरण करने वाले

नत्रजन पौधों के विकास के लिए बहुत जरूरी होती है। हमारे वायुमंण्डल में यह बहुत (78 प्रतिशत) अधिक मात्रा में उपस्थित होता है। लेकिन पौधे इसे सीधे ग्रहण नहीं कर सकते। जैविक उर्वरको में उपस्थित सूक्ष्मजीवों द्वारा वायुमण्डल की नत्रजन पौधों को सुगमता से उपलब्ध हो जाती है। गेहूँ के लिए एजोटोबैक्टर फास्फोरस घुलनशील बैक्टिरीया (पीएसबी) का प्रयोग किया जाता है। एजोटोबैक्टर 10–20 किलोग्राम एन/एन ए नाइट्रोजन फिक्स करता है।

ये जैविक खाद बाजार में विभिन्न नामो से उपलब्ध हैं किसान इनका प्रयोग करके कम लागत से अधिक लाभ

उठा सकते हैं। साथ ही इन जैव उर्वरकों द्वारा बीज उपचार करने से 5–7 प्रतिशत उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

(ख) फॉस्फोरस घुलनशीलता के लिए

फास्फेट पौधों के संतुलित पोषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका

निभाता है। जैविक खाद के रूप में पेनिसिलियम, स्यूसडोमोनास, बैसिलस सूक्ष्मजीव, फास्फोरस घुलनशीलता के लिए प्रयोग किए जाते हैं। ये भूमि की भौतिक तथा रासायनिक संरचना में सुधार कर पोषक तत्वों को अवशोषण योग्य बनाता है। यह सूक्ष्म जीव फसलों को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते है तथा प्राथमिक पोषक तत्वों के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे–तांबा, कोबाल्ट, जिंक आदि भी उपलब्ध करवाते हैं। फॉसफोरस को घोलने वाले जीवाणु मिट्टी में ऑर्गेनिक सिट्रिक अम्ल तथा फ्यूमेलिक टारटरिक अम्ल का स्राव करके अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील करता है और पौधों को उपलब्ध करवाता है। जिससे फसल की पैदावार व गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है और आजकल ये बजार में आसानी से उपलब्ध है। यह 50–60 प्रतिशत नाइट्रोजन फिक्स करता है।

(ग) प्लांट ग्रोथ प्रमोटिंग राईजोबैक्टिरिया

ये कुछ ऐसे सूक्ष्म जीव हैं जो पौधौ की जड़ों के साथ रहकर पौधों को बिमारियों से बचाते हैं तथा उसे सूक्ष्म तत्त्व उपलब्ध करवाते हैं स्यूडोमोनास, एजोस्पिरिल्लम, एजोटोबैक्टर, बैसिलस इसमें आदि प्रमुख हैं। गेहूँ की खेती के लिए भी इनका प्रयोग किया जाता है जिससे की गेहूँ की पैदावार अधिक होती है।

(घ) माइकोराइजा

माइकोराइजा फफूंद पर आधारित जैविक खाद है। जिसका सम्बन्ध जड़ व फफूंद के बीच होने के कारण फसलों को बहुत लाभ होता है। यह पौधों को सूक्ष्म तत्व जैसे जिंक, मैग्नीज, लौह, कॉपर, कोबाल्ट एवं मॉलीब्डिनम प्राप्त करवाता है। इसके साथ–साथ यह पौधों की सूखे के प्रति, क्षारीयता या लवणता के प्रति सहनशीलता को बढ़ाता है। यह पौधों को कीट व अन्य बिमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है। इसके प्रयोग से रासायनिक खादों के प्रयोग का 25–40 प्रतिशत बचत होती है।

अधिकतर जैव उर्वरकों के प्रयोग के लिए बीज उपचार की विधि सबसे ज्यादा प्रयोग की जाती है। जिसके लिए एक लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ के साथ जैविक खाद अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लें। इसके बाद बीजों पर अच्छी तरह छीड़ककर छाया में सुखाने के बाद बिजाई करें। लगभग 200 जैविक खाद को 400 मि.ली. पानी में मिलाकर 10 किलोग्राम बीज में प्रयोग करें।

जैविक खादों को भूमि उपचार करने में भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए 4 किलोग्राम जैविक खाद भूमि में मिलाई जाती है। जैविक खाद (स्यूडोमोनास) को फसलों पर छिड़काव करके पौधों को बिमारियों से भी बचाया जा सकता है।

जैव खाद से रोगो की रोकथाम

गेहूँ की खेती के लिए (एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिल्लम) जैविक खाद के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। ये जैविक खाद कुछ फूफंदनाशक तत्त्व पैदा करते हैं। जो उसे अन्य हानिकारक रोगजनकों से बचाते हैं। इनसे फसलों की पैदावार कई गुना बढ़ने (7–13.6 प्रतिशत) के साथ–साथ जैविक भोजन भी उपलब्ध होता है। ट्राईकोडरमा का प्रयोग भी गेहूँ में विभिन्न रोगों जैसे पीला रतुआ की रोकथाम के लिए किया जाता है।

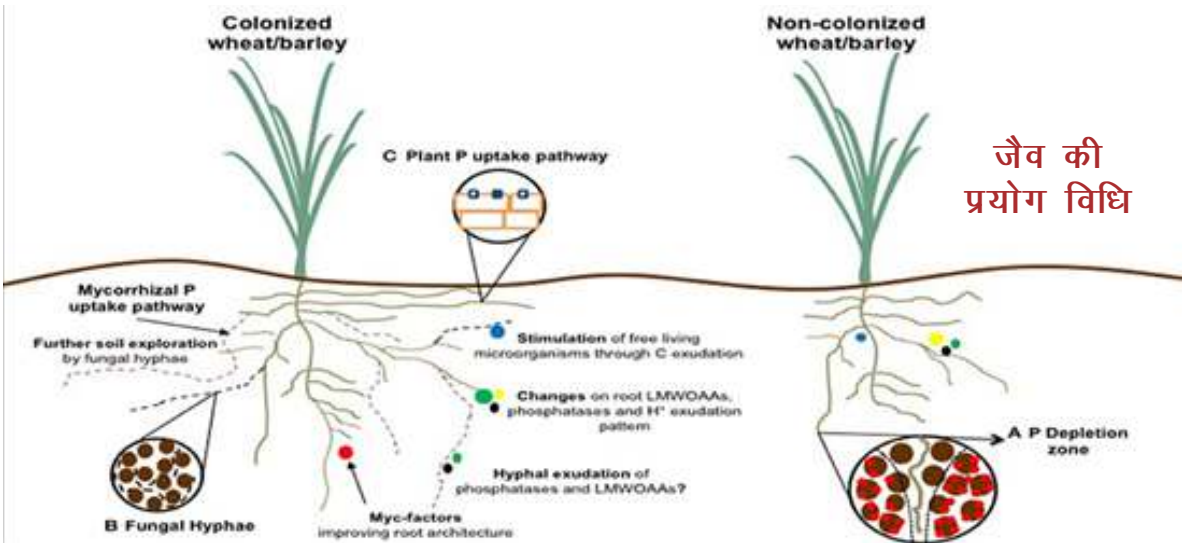

भारत में सिंचाई जल एवं कृषि

राज पाल मीना, कर्णम वेंकटेश, अनुज कुमार एवं अंकिता झा
भा.कृ.अनु.प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

"पृथ्वी, भूमि और पानी हमारे पूर्वजों से विरासत में नहीं, बल्कि हमारे बच्चों से ऋण पर मिली हैं । इसलिए, हमें उन्हें कम से कम उस हालत में सौंपना होगा जिसमें इसे हमें सौंपा गया था।" – **महात्मा गांधी**

कृषि के सभी पहलुओं में पानी एक महत्वपूर्ण आगत है, जिसका उपज पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि पानी की पर्याप्त उपलब्धता नहीं हो तो अच्छे बीज और उर्वरक अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त करने में विफल रहते हैं। भारत में दुनिया की लगभग 17 प्रतिशत आबादी रहती है, पर दुनिया के केवल 4 प्रतिशत जल संसाधन ही यहाँ उपलब्ध है। इतना ही नहीं देश के अन्दर जल संसाधनो का वितरण भी असमान है। भारत की बढ़ती आबादी और उसके अनुपात में बढ़ती जल की मांग और मौजूदा पानी की गुणवत्ता में लगातार होती गिरावट ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहाँ पानी की खपत तेजी से बढ़ रहा है, जबकि स्वच्छ पानी की आपूर्ति कम होती जा रही है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक, निर्माण, घरेलु आवश्यकताएं भी बढ़ती जा रही है, साथ ही जल संसाधनों के प्रदूषण का कारण भी बन रहे है। 2050 तक भारत की जनसंख्या 1.6 बिलियन होने की संभावना है, जिसके परिणामस्वरूप पानी, भोजन और ऊर्जा की मांग में भारी बढ़ोत्तरी होगी। इसलिए बुनियादी ढांचे के विस्तार और संसाधनो के उपयोग में सुधार की आवश्कता है।

जल संसाधनों की कमी एवं उनका अत्यधिक, दोहन का नकरात्मक प्रभाव झीलों, नदियों, तालाबों तथा अन्य स्वच्छ जल के श्रोतों पर देखने को मिल रहा है, जिसका दुष्परिणाम व्यापक है तथा समय के साथ और विकराल होने की चिंता बनी रहेगी जैसे की मृदा लवणता, जल श्रोतों में पोषक तत्वों का पहुंचना इत्यादि।

दोषपूर्ण जल संसाधन, प्रबंधन प्रणाली और जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में पानी की कमी का सामना करना पड़ रहा है। दोष पूर्ण सिंचाई प्रणालियों के कारण देश के कुल जल उपयोग का 90 प्रतिशत उपयोग कृषि में होता है। चिंता का दूसरा कारण पानी की गुणवत्ता है। इसलिए अत्यधिक दुर्लभ जल संसाधनों का कुशलता से उपयोग करने की आवश्कता और अधिक बढ़ जाती है।

भारत में हर साल औसतन 4,000 बिलियन क्यूबिक मीटर वर्षा होती है, हालाँकि, निम्न जल प्रबंधन के कारण इसका केवल 48 प्रतिशत ही सतह और भूजल निकायों में उपयोग किया जाता है। शेष जल बहकर चला जाता है। भंडारण प्रक्रिया में कमी, पर्याप्त बुनियादी ढांचे की कमी, अनुचित जल प्रबंधन ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है, जहाँ वास्तव में केवल 18–20 प्रतिशत पानी का उपयोग ही किया जा सका है। जल संकट का कारण एक यह भी है की भारत की वार्षिक वर्षा (लगभग 1183 मिमी) का लगभग 75 प्रतिशत

मानसून, जुलाई से सितंबर के दौरान चार महीनों की छोटी अवधि में प्राप्त होती है तथा उसका वितरण में भी भारी असमानता पाई जाती है। सन् 2011 में केंद्रीय भूजल बोर्ड द्वारा किए गए आकलन के अनुसार, भारत का कुल वार्षिक भूजल संसाधन लगभग 433 बिलियन घन मीटर है एवं वार्षिक भूजल उपलब्धता 398 बिलियन घन मीटर है, जिसमें से 245 बिलियन घन मीटर (62 प्रतिशत) का दोहन कर लिया जाता है। सिंधु नदी का बेसिन, जिसे भारत और पाकिस्तान के बीच साझा किया गया है, दुनिया का दूसरा सबसे अधिक जल दबाव वाला जलभृत है, इससे स्तिथि का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। भारत के लगभग 90 प्रतिशत फसल उत्पादन में चावल, गेहूँ और गन्ने का उत्पादन होता है और यहीं सबसे अधिक जल खपत वाली फसलें हैं। अतः इनके लिए दक्ष एवं उन्नत सिंचाई के तरीके अपनाने पड़ेंगे ताकि कम से कम जल में अधिक से अधिक फसल उत्पादन लिया जा सके।

कृषि एवं सम्बंधित गतिविधियों के लिए नहर, नदियों, भूजल, कुंए, टैंक, तालाब इत्यादि संसाधन सिंचाई ढांचे में शामिल है। भारत में 39 मिलियन हैक्टर क्षेत्र भूमिगत जल से तथा 22 मिलियन हैक्टर क्षेत्र नहरों से सिंचित होता है, जबकि कुल फसली क्षेत्र (160 मिलियन हेक्टेयर) का दो–तिहाई क्षेत्र मानसून पर निर्भर है। विश्व स्तर पर, लगभग 40 प्रतिशत सिंचाई जल भूजल से आपूर्ति की जाती है इसके विपरीत भारत में यह 50 प्रतिशत से अधिक है। परिणामस्वरूप भूजल स्तर में महत्वपूर्ण गिरावट आई है, खासकर भारत के उत्तर–पश्चिम हिस्सों में जो भविष्य के लिए एक गंभीर चिंता का विषय है। कुछ सरकारी नीतियाँ भी इसके लिए जिम्मेदार हैं, जैसे कि कुछ राज्य सरकारें (जैसे पंजाब) भूजल पंप करने के लिए मुफ्त बिजली प्रदान करती हैं। कुछ राज्य (जैसे गुजरात और महाराष्ट्र) सौर पंपों के लिए भारी सहायता राशि (सब्सिडी) प्रदान करते हैं। इसके विपरीत देश का पूर्वी क्षेत्र, जहाँ भूजल का उपयोग सीमित है, कृषि गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए

भूजल दोहन करने की अधिक गुंजाइश रखते हैं। सिंचाई के लिए भूजल पर सबसे अधिक निर्भरता वाले राज्यों में पंजाब (79 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र नलकूप और कुएं), उत्तर प्रदेश (880 प्रतिशत) और उत्तराखंड (67 प्रतिशत) शामिल हैं ।

कृषि की सफलता स्थानीय जलवायु पर महत्वपूर्ण रूप से निर्भर करती है इसके अलावा भारतीय कृषि दक्षिण–पश्चिम ग्रीष्मकालीन मानसून पर महत्वपूर्ण रूप से निर्भर करती है। भारत के कुछ हिस्सों में, अगर मानसून कमजोर रहे तो पानी की कमी हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप फसल पैदावार औसत से कम होती है। यह विशेष रूप से दक्षिणी और पूर्वी महाराष्ट्र (पश्चिमी भारत), उत्तरी कर्नाटक (दक्षिण–पश्चिमी भारत), आंध्र प्रदेश (भारत के दक्षिण–पूर्वी तट), ओडिशा (भारत के पूर्वी तट), तेलंगाना (दक्षिण–पूर्वी तट) एवं राजस्थान (पश्चिमी भारत) जैसे प्रमुख सूखा–ग्रस्त क्षेत्रों में होता है। देश के कई क्षेत्रों को तीव्र जल दबाव का सामना करना पड़ रहा है, इनमें दक्षिण और उत्तर आंतरिक कर्नाटक, आंध्र प्रदेश में रायलसीमा, महाराष्ट्र में विदर्भ और मराठवाड़ा, पश्चिमी राजस्थान, उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र, और मध्य प्रदेश के कुछ जिले शामिल हैं। इन जिलों के अधिकांश क्षेत्रों में नमी सूचकांक 85 से 50 प्रतिशत की सीमा में है जो यह दर्शाता है कि यहाँ होने वाली वर्षा फसल उत्पादन के लिए अत्यधिक अपर्याप्त है। उल्लेखनीय है कि लातूर जिले की कुछ तहसीलों में जमीन से 304 मीटर नीचे भी पानी नहीं है। सिर्फ एक साल (2015–16) में लातूर में पानी स्तर 3.5 से 4.0 मीटर नीचे चली गई है।

भारत एक जल समृद्ध देश नहीं है और जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव के कारण इसे और अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। जल का भारी अपव्यय, कृषि एवं अन्यत्र में निम्न जल प्रबंधन और विकृत जल मूल्य नीतियों के कारण विकराल समस्या सामने खड़ी है। अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार, यदि किसी देश में प्रति व्यक्ति की पानी की उपलब्धता 1700 घन मीटर से कम हो तो उस देश को जल–दबाव (पानी के तनाव) और 1000 घन मीटर से कम हो तो पानी की कमी वाले देश के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इस लिहाज से भारत 1544 घन मीटर प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता के साथ जल–दबाव की स्तिथि से गुजर रहा है तथा समय के साथ पानी की कमी या पानी के संकट वाले देशों की तरफ बढ़ रहा है जो एक गंभीर चिंता का विषय है।

विभिन्न विज्ञानिक अध्ययनों के निष्कर्ष बताते हैं कि पिछले तीन दशकों में सूखे और बाढ़ की स्थिति रहीं परन्तु हाल के वर्षों में सूखे की घटनाओं की आवृत्ति में काफी वृद्धि हुई है। 1950 और 1989 के बीच (40 वर्ष) की अवधि में 10 सूखे वर्ष थे, जबकि पिछले 16 वर्षों (2000 से 2015) में 5 सूखे वर्ष रहे हैं। मौसम विज्ञानियों के अध्ययनो के अनुसार 2020 और 2049 के बीच सूखे और बाढ़ आवृत्ति में वृद्धि होना निश्चित माना जा रहा है। सूखे के दौरान भूजल का उपयोग बढ़ जाता है या दूसरे शब्दों में भूजल का उपयोग बढ़ा कर सूखे की समस्या पर काबू पाने में मदद मिल सकती है। हालांकि, अत्यधिक भूजल के उपयोग के परिणाम नकारात्मक होते हैं जैसे की भूजल गुणवत्ता में गिरावट तथा भविष्य की कृषि के लिए पहले की तुलना में कम भूजल की उपलब्धता, जिससे कृषि उत्पादन पर और भी अधिक दबाव पड़ता है। भारत में उपलब्ध कुल खेती योग्य भूमि (लगभग 140 मिलियन हैक्टर) का 42 प्रतिशत भूमि सूखाग्रस्त क्षेत्रों/जिलों में स्थित है। इसके अलावा, 54 प्रतिशत शुद्ध बोया गया क्षेत्र पूर्ण रूप से बारिश पर निर्भर है, अतः वर्षा आधारित कृषि देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जल की बढ़ती कमी के बावजूद, तकनीकी दृष्टि से भारत में भूजल का उपयोग एवं सिंचाई के तरीके अत्यधिक अक्षम है। उदाहरण के लिए, भारत की तीसरी लघु सिंचाई जनगणना से पता चला है कि भारत के कुल 8.5 मिलियन ट्यूब–वेल मालिकों में से केवल 3 प्रतिशत ने ड्रिप या स्प्रिंकलर सिंचाई का उपयोग किया और 88 प्रतिशत ने खुले चैनलों के माध्यम से खुली सिंचाई (खेत को पानी से भरना) करके अपनी फसलों को पानी दिया।

भारत में सिंचाई की तीव्रता

सिंचाई तीव्रता में भिन्नताएं देश के विभिन्न भागों में विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों, विभिन्न प्रकार की मृदाएँ, जलवायु, फसलों के प्रकार इत्यादि पर निर्भर करती है। ऊबड़–खाबड़ पहाड़, रेतीले रेगिस्तान और चट्टानी इलाकों में जल भराव बहुत अधिक गहराईयों में होने के कारण यहाँ से पानी निकालना बहुत खर्चीला होता है परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में सिंचाई की बहुत कम सुविधा होती है। उपजाऊ जलोढ़ मैदान, बारहमासी नदियों तथा 125 सेंमी. से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई क्षेत्र की प्रतिशतता अधिक होती है। सिंचाई की उच्चतम तीव्रता कश्मीर घाटी, पंजाब और हरियाणा, उत्तर प्रदेश राज्य का गंगा–यमुना दोआब, बिहार का पश्चिमी भाग, पश्चिम बंगाल, असम (पूर्वोत्तर, गोदावरी कृष्णा डेल्टा और चेंगलपट्टू जिला) तथा तमिलनाडु में है। इन क्षेत्रों में सिंचाई की तीव्रता 60 प्रतिशत से ऊपर है और पंजाब के कुछ हिस्सों में यह 75 प्रतिशत से अधिक है। चंबल घाटी और प्रायद्वीपीय पठार के कुछ हिस्सों में सिंचाई की तीव्रता 15 से 30 प्रतिशत तक होती है। कम तीव्रता के क्षेत्र वे हैं जिन्हें या तो उच्च और भरोसेमंद वर्षा के आधार पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं है या वे प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों जैसे बीहड़ स्थलाकृति, और भूजल की कमी के कारण सिंचाई सुविधाओं को विकसित करने में सक्षम नहीं हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (दक्षिणी भारत) में वर्ष भर पर्याप्त वर्षा के कारण शून्य प्रतिशत सिंचाई की तीव्रता है।

भूजल आधारित सिंचाई

1950–51 वर्षों से, सिंचाई के स्रोतों में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। सिंचित क्षेत्र में नहर की हिस्सेदारी 1950–51 में 39.8 प्रतिशत होता था जो वर्ष 2012–13 में घटकर 23.6 प्रतिशत रह गई है। इसके विपरीत, इस अवधि के दौरान भूजल स्रोतों का हिस्सा 28.7 प्रतिशत से बढ़कर 62.4 प्रतिशत हो गया है।

पानी का अधिकतम उपयोग सिंचाई के लिए हो रहा है तथा

भविष्य में भी सिंचाई ही प्रमुख पानी का उपयोगकर्ता रहेगा इसलिए **"प्रति बूंद अधिक फसल"** एक अति अनिवार्य शर्त होनी चाहिए। पानी के उपयोग की दक्षता में सुधार करना चाहिए, तथा पानी का सर्वाधिक संरक्षण करना चाहिए। इसी प्रकार से जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए आधुनिक सिंचाई प्रणाली (ड्रिप एवं स्प्रिंकलर) पर उच्च सब्सिडी दी जा रही है तथा इसको और अधिक अपनाने की आवश्कता है। सूक्ष्म सिंचाई के लिए 50 से 90 प्रतिशत अनुदान (आर्थिक सहायता) के एक दशक के बाद भी, यह 5 प्रतिशत से भी कम क्षेत्र में अपनाया गया है। इस सिलसिले में सरकारी योजनाएं कुछ राज्यों में सफल रही हैं, ज्यादातर में हालांकि अपेक्षा के अनुरूप सफल नहीं हुई है।

जल उपयोग दक्षता

कृषि में सिंचाई जल का कुशलता से उपयोग करने के लिए अलग–अलग दृष्टिकोण सामने रखे गए हैं, जो इस प्रकार से है:

भारत में मुख्य रूप से अपनाई जाने वाली सिंचाई की पद्धति बाढ़ सिंचाई (सतही सिंचाई) है, जिसमें अत्यधिक पानी का उपयोग होता है परिणामस्वरूप जल उपयोग दक्षता बहुत कम होती है। सिंचाई में अधिक जल उपयोग दक्षता हासिल करने के लिए निम्नलिखित बिंदु पर विचार करने की आवश्कता है।

1. सिंचाई के दौरान जल हानि को कम करने के लिए उचित सिंचाई प्रणाली की डिजाइनिंग सिंचाई की नवीनतम प्रौद्योगिकियाँ जैसे की ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली को अपनाकर न केवल जल की बचत बल्कि अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए भी यह प्रौद्योगिकियाँ बेहद कारगर साबित हुई हैं। सूक्ष्म सिंचाई (स्प्रिंकलर और ड्रिप) के माध्यम से कई इलाकों में विशेष रूप से जहाँ स्थलाकृति ऊँची–नीची है या मृदा बहुत रेतीली है ऐसे क्षेत्रों में परिवर्तन लाने में मदद की है जहां सिंचाई के अन्य तरीके काम नहीं कर सकते हैं।

नई सस्य वैज्ञानिक तकनीकें जैसे की मेड़ पर बुवाई करना, उप–सतही सिंचाई, बीज को जल से प्राईमिंग करके बुवाई करना इत्यादि तकनीकें जल उपयोग दक्षता को बढ़ाने और पानी के उपयोग को कम करने के लिए एक वृहद गुंजाईश प्रदान करती है। हाल के वर्षों में, मध्यप्रदेश राज्य ने सोयाबीन की बिजाई मेड़ पर करने का एक कार्यक्रम शुरू किया है। मेड़ पर सोयाबीन लगाने से पानी के संरक्षण और उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिली है।

इस दिशा में सरकार ने भी कई कदम उठाएं है, एक उदाहरण **''प्रधानमंत्री कृषि सिचाई योजना''** का शुभारंभ है। यह योजना सिंचाई में विस्तार और उचित जल उपयोग के लिए एक प्रभावी रूपरेखा प्रदान करती है।

2. जल का एक साथ बहु–उद्देशीय उपयोग की अवधारणा को अपनाकर जल उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है। फसल विविधता, कृषि प्रणाली में मछली, मुर्गीपालन और अन्य उद्यमों के एकीकरण के माध्यम से जल उपयोग दक्षता के साथ–साथ आय बढ़ाने की संभावनाएं भी है।

3. उपयुक्त क्षेत्रों में वाटरशेड के विकास पर जोर दिया जाना चाहिए जिससे वर्षा जल का संरक्षण किया जा सके और सरंक्षित वर्षा जल का उपयोग सूक्ष्म जल संरचनाओं के द्वारा सिंचाई के उपयोग में लाया जा सके।

अप्रत्यक्ष (आभासी) पानी का प्रवाह

भारत चावल जैसे जल गहन फसलों का निर्यात करता है। यह अनुमान है कि 2010 में, भारत ने अपने कृषि निर्यात में लगभग 25 घन किमी पानी का निर्यात किया था। यह लगभग 13 मिलियन लोगों की मांग के बराबर है। 1980 के दशक तक भारत आभासी जल का एक शुद्ध आयातक था, लेकिन अनाज के निर्यात में वृद्धि के साथ, भारत अब आभासी जल का शुद्ध निर्यातक बन गया है जो हर साल कुल उपलब्ध पानी का लगभग 1 प्रतिशत है इसके विपरित चीन पानी का शुद्ध आयातक बना हुआ है। यह चीन और भारत के व्यापार पैटर्न में भी स्पष्ट है। चीन सब्जियों, फलों और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का निर्यात करते हुए अधिक पानी का उपयोग करने वाली फसलें जैसे कि सोयाबीन, कपास, मांस और अनाज का आयात करता है। भारत, अधिक पानी का उपयोग करने वाली फसलें जैसे कि चावल, कपास, चीनी और सोयाबीन का निर्यात करता है जैसे

चावल, जो 1 किलोग्राम अनाज के उत्पादन के लिए 3,000 से 3,500 लीटर पानी का उपयोग करते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान में, भारत उपलब्ध जल संसाधनों में कमी का सामना कर रहा है जिसका भारत के कृषि क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। देश में कई क्षेत्रों में पानी की भारी कमी है। यदि पानी के उपयोग की दक्षता में सुधार नहीं होता है, तो देश अगले 1 से 2 दशकों में पानी की कमी विकराल समस्या का रूप ले सकती है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि कृषि क्षेत्र पानी के उपयोग की क्षमता को बढ़ाने के लिए उपलब्ध प्रौद्योगिकियों और संसाधनों का सबसे अच्छा उपयोग करके स्थिति को बिगड़ने से रोका जा सकता है। पानी के दुरुपयोग को रोकने के लिए नीतियों, रणनीतियों और नियामक उपायों में सुधार पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

किसानों की आय को दोगुना करना–रणनीति

निशा कटारिया, सतीश कुमार एवं चंद्र नाथ मिश्र
भा.कृ.अनु.प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली भारत की अधिकांश जनसंख्या के जीवकोपार्जन का प्रमुख साधन कृषि और कृषि सम्बंधित व्यवसाय है। कृषि एवं इससे सम्बंधित क्षेत्रों का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में

निरंतर कम होती जा रही किसानो की आय कृषि क्षेत्र के भविष्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है। कृषि के भविष्य को सुरक्षित करने तथा किसानो की आजीविका में सुधार लाने हेतु किसानो की आय बढ़ाने के साथ–साथ किसानो से जुडी हुई लोक कल्याण की योजनाओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में कृषि क्षेत्र से जुड़े लगभग 53 प्रतिशत लोगों के पास 0.63 हैक्टर से भी कम भूमि है जो कृषि क्षेत्र से जुड़े अधिकांश लोगो को गरीबी रेखा से बाहर निकालने में अपर्याप्त है। पिछले 22 सालो में (सन् 1993–2016) किसानो की आय में केवल 9.18 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है जो की कृषि क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए अपर्याप्त है। अतः 2022 तक किसानो की आय दोगुनी करने के लिए हमें गंभीर प्रयास करने होंगे जिसके लिए खेती की लागत को कम करके तथा उत्पादन को बढ़ाकर हम किसानों की आय को बढ़ा सकते है। इसके लिए हमें किसानों में नयी–नयी तकनीकों को अपनाने के लिए जागरूकता लाने की आवश्यकता हैं। भारत सरकार द्वारा इस दिशा में कुछ नवीन प्रयास किये गए है जो कि फसलों का उत्पादन बढ़ाने एवं लागत कम करने में सहायक हैं जिनमें प्रधानमंत्री कृषि सिचाई योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड और परंपरागत कृषि विकास योजना आदि सम्मिलित हैं। वर्ष 2015–2016 के दौरान, प्रति व्यक्ति कृषि आय 1,693 डॉलर थी। वर्ष 2022–2023 तक कृषि आय को दोगुना करने के लिए, कृषि उत्पादन को 10.4% सालाना बढ़ने की आवश्यकता होगी। हालांकि, वर्तमान में, कृषि उत्पादन सालाना लगभग 3% की दर से बढ़ रहा है। इस गति से, किसानों की आय को दोगुना करने में 25 साल लगेंगे।

अतः अगर हमें व्यवस्थित तरीके से 2022 तक किसानों की आय दोगुना करनी है तो किसानों की आय में वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए, हमें कृषि और उससे सम्बंधित सभी क्षेत्रों में विकास को बढ़ावा देना पड़ेगा जिनमे से कुछ क्षेत्र निम्नलिखित हैः

भंडारण और गोदामों का निर्माणः भारत ताजा कृषि करने वालों प्रमुख उत्पादकों में से एक है। पर्याप्त ठंड भंडारण सुविधाओं की कमी के कारण भारत के ताजा उपज का लगभग 20% बर्बाद हो जाता है। जल्दी नष्ट होने वाले फल सब्जियां और दूध जिनकी बाजार में लागत प्रमुख फसलों की तुलना में अधिक है, इनका उचित प्रबंधन किया

जाना चाहिए जो कृषि आय वृद्धि में सहायक होगा। छोटे किसान शीघ्र ख़राब होने वाले फसलों का उत्पादन नहीं करना चाहते इसके मुख्य कारण है भंडारण सुविधाओं की कमी है। छोटे और सीमांत किसान शायद ही कभी उच्च मूल्य वाली फसलों को विकसित करने के लिए सक्षम हैं। केवल 22.2 सीमांत किसान (एक से भी कम हैक्टर भूमि के साथ) और 23.6 छोटे किसान (एक और दो हैक्टर भूमि अधिग्रहण आकार के बीच) उच्च मूल्य वाली फसलों में उत्पादन करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय बाजार के साथ घरेलू बाजार को जोड़नाः वर्तमान सरकार ने कृषि क्षेत्र के लिए अपने बजटीय आवंटन को 17.04 बिलियन डॉलर (2009 से 2014 के बीच) से बढ़ाकर +30 बिलियन (2014 से 2019 के बीच) कर दिया है। घरेलू वस्तुओं को सीमित करने, खाद्य सुरक्षा को सक्षम करने और भारतीय किसानों की आजीविका सुनिश्चित करने के लिए कृषि वस्तुओं में व्यापार प्रतिबंधित है। हालांकि, एक प्रतिबंधित कृषि बाजार और पर्याप्त भंडारण सुविधाओं की कमी से अकसर फसल उत्पादन नष्ट हो जाती है। भारत में खाद्यान्न उत्पादन 2017–2018 के दौरान 280 मिलियन टन के सभी उच्च स्तर को छू गया और निर्यात की सुविधा के लिए एक उदार व्यापार नीति का पालन करने और आवश्यक बुनियादी ढाँचे को संचालित करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, निर्यात के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि परीक्षण सुविधाओं में सैनिटरी

और फाइटोसैनेटिक प्रमाणीकरण प्रदान किया जाए। दुर्भाग्य से, ऐसी परीक्षण सुविधाओं की संख्या सीमित है। इसी तरह, कमी के समय आयात की अनुमति देने के लिए कृषि दरों में कमी लाई जानी चाहिए।

आपूर्ति पक्ष के हस्तक्षेप: ग्रामीण बुनियादी ढांचे जैसे कि गाँव के विद्युतीकरण और नहरों के निर्माण में मदद मिलेगी। तथ्य यह है कि छोटे भूखंड आकार पर सिंचाई का कवरेज 40 से कम है, जिसका अर्थ है खराब वर्षा के वर्षों में फसल की विफलता। इसी तरह, एपीएमसी अधिनियम में सुधार की आवश्यकता है। किसानों को बाजार के वास्तविक मूल्य का पता नहीं होता है और यह बिचौलिये होते हैं जो ज्यादातर मुनाफे को छीन लेते हैं। एपीएमसी अधिनियम में सुधारों की कमी छोटे किसानों को सीधे सुपरमार्केट, निर्यातकों और कृषि–प्रोसेसर को बेचने से रोकती है।

वित्तीय साक्षरता: वित्तीय जागरूकता की कमी के कारण कृषि वित्त बाजारों की वृद्धि और गृहतकरण पर नकारात्मक प्रभाव हुए है। नेशनल सेंटर फॉर फ़ाइनेंशियल एजुकेशन (NCFE) ने 2015 में वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन का भारत का पहला राष्ट्रीय बेंचमार्क सर्वेक्षण किया, जिसने 76,762 उत्तरदाताओं से मिली जानकारी के आधार पर पाया कि किसान बुनियादी वित्तीय उत्पादों से अवगत नहीं हैं।

ई–मंडियों की शुरूआत: एक ऑनलाइन बाजार जहाँ किसान बिचौलियों को दरकिनार कर सकते हैं और खुद विक्रेताओं को सीधे बेच सकते हैं। राजस्थान के साक्ष्य बताते हैं कि ई–बाजार की शुरुआत के कारण, किसानों के प्रीमियम में 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई। हालाँकि, वर्तमान में, ई–मंडियां केवल 7 किसानो की पूर्ति कर रही हैं और देश के कृषि उत्पादन के कुल मूल्य का लगभग 2 ही संभाल रही हैं।

सरकारी योजनाओं की सक्रिय निगरानी: उदाहरण के लिए, पिछले खरीफ मौसम में प्रधानमंत्री आवास बीमा योजना के लिए चुने गए 35 मिलियन किसानों में से कुछ किसान ही इस योजना का लाभ उठाने में सक्षम हुए। इसका प्रमुख कारण था मुवावजे का देरी से मिलना, क्योंकि आधे से भी अधिक प्रदेश अपना प्रीमियम निश्चित समय अवधि में नहीं भर पाए। ई–एनएएम, एक और उपयोगी पहल में गलत रिपोर्टिंग की जांच करने की आवश्यकता है। कई मंडियां ई–एनएएम बिक्री के रूप में सामान्य बिक्री दिखाती हैं। इसके अलावा, हमें ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणालियों की ओर ध्यान देना होगा। इस तरह की सूक्ष्म सिंचाई तकनीकें खुली नहरों और बाढ़ सिंचाई प्रणालियों की तुलना में बहुत कम पानी का उपयोग करती हैं, जिस पर हमारी सिंचाई का अधिकांश पैसा खर्च हो रहा है।

आधुनिक कृषि के लिए रीढ़ की हड्डी के रूप में डिजिटल कृषि: आईसीटी का सफलतापूर्वक परीक्षण, किसानों को समय पर फसल का वितरण, मौसम और मूल्य की जानकारी के लिए हुआ है। जबकि बाजारों की जानकारी बेहतर मूल्य की ओर ले जाती है और उत्पादकों को बाजार मूल्य के अधिक अनुपात पर कब्जा करने में सक्षम बनाती है, डिजिटल और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के माध्यम से सलाहकार सेवाओं का लाभ उठाकर पारंपरिक कृषि विस्तार वितरण प्रणालियों की अपर्याप्तता का खयाल रखा जा सकता है। इन सभी डिजिटल कृषि पहलों के लिए एक मजबूत डेटा अवसंरचना की आवश्यकता है, जो आधार के साथ एकीकृत होने पर, किसान आय और विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों और सब्सिडी से जुड़ी योजनाओं के कार्यान्वयन पर नज़र रखने के लिए सहायक होगा।

किसानों की आय में वृद्धि का लगभग एक तिहाई भाग सही मूल्य का ज्ञान, कुशल फ़सल प्रबंधन, प्रतिस्पर्धी मूल्य श्रृंखला और संबद्ध गतिविधियों को अपनाने के माध्यम से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए बाजार में व्यापक सुधार, ज़मीन के पट्टे और निजी ज़मीनों पर पेड़ उगाने की आवश्यकता है। सरकारी हस्तक्षेप के माध्यम से कई राज्यों में किसानों की आय में भारी वृद्धि हो सकती है।

उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की प्रमुख फसलों में लगने वाले मुख्य रोग व उनका प्रबंधन

रविन्द्र कुमार, अनुजा गुप्ता, राजेश कुमार मीना एवं वी. के. पण्डिता
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, करनाल

फसलों में लगने वाले रोग अनेक पादप रोगजनकों (जैसे कवक, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि, फाइटोप्लाज्मा इत्यादि) एवं वातावरण कारकों के द्वारा होते हैं। पौधों में सफल रोग स्थापना के लिए सुग्राही पोषक पौधों के साथ उग्र रोगजनक को अनुकूल वातावरण में अनुक्रिया होना आवश्यक हैं। रोगजनकों से होने वाले रोग अनुकूल परिस्थितियों में फसल को भारी क्षति पहुँचा सकते हैं। अतः इन रोगों की शुरूआत में ही नियंत्रण करना अति आवश्यक है। गेहूँ, धान व प्रमुख फसलों में महत्वपूर्ण रोग एवं उनके नियंत्रण इस प्रकार हैं;

गेहूँ में पीली गेरूई (धारीदार रतुआ) एवं भूरा रतुआ

लक्षणः पीली गेरूई के फफोले (स्फोट) में पीले से नारंगीदृपीले यूरेडो स्पोर होते हैं। ये फफोले प्रायः पत्तियों पर संकरी धारियां बनाते हैं जो पत्ती आवरण, बाली की गर्दन और ग्लूम्स पर भी बन सकते हैं। भूरे रतुआ रोग में भुरे रंग के धब्बे पत्तियों पर बिखरे हुए बनते हैं।

चित्रः1 गेहूँ में पीली गेरूई रोग

प्रबन्धन

- रोग के दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत प्रोपिकॉनाजोल का छिड़काव करें।

गेहूँ में करनाल बंट

यह रोग अपेक्षाकृत उपज में कम हानि करता है परन्तु अनेक देशों की संगरोध सूची में शामिल होने के कारण यह अति महत्वपूर्ण है।

लक्षणः करनाल बन्ट प्रायः कुछ दाने प्रति बाली तक ही संक्रमण करता है, इसलिये इस रोग को फसल की कटाई से पहले पहचान करना आसान नही है। फसल की कटाई के पश्चात रोग को आसानी से दृष्टि परीक्षण द्वारा पहचाना जा सकता है। काले रंग के टीलियोस्पोर बीज के कुछ भाग का स्थान ले लेते हैं। इसमें बाहरी परत फट जाती है अथवा यह जुड़ी हुई भी रह सकती हैं। संक्रमित दानों को कुचलने पर सड़ी हुई मछली की दुर्गन्ध आती हैं।

प्रबन्धन

- बीजोपचारः 2.5 ग्राम थीरम या बाविस्टीन/किलोग्राम बीज।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे पी बी डब्ल्यू 502 की बुआई करें।
- पुष्पन के समय 0.1 प्रतिशत प्रोपिकोनाजोल का छिड़काव करें।

सरसों कूल के पौधों में श्वेत किट्ट रोग/श्वेत फफोला रोग (व्हाइट रस्ट रोग)

लक्षणः यह सरसों में गंभीर समस्या है। जनवरी–फरवरी में पत्तियों की निचली सतह पर चमकीले सफेद से क्रीमी पीलें, अनियमित गोलाकार धब्बे या फफोले बन जाते हैं जो कवकजाल की वृद्धि से ढके रहते हैं। इन धब्बों के विपरीत पत्ती की ऊपरी सतह पर हरिमाहीनता हो जाती है। छोटे आकार के धब्बें पत्तियों की ऊपरी सतह पर भी दिखाई देते हैं। अन्ततः ग्रसित पत्ती ओजहीन हो जाती है। पुष्पक्रम सर्वांगी संक्रमण होने पर सामान्यतः शाखाओं के शीर्ष पर विकृत पुष्पांगों में बदल जाता है। पत्तियाँ तथा पुष्प के रोग ग्रस्त भाग फूलकर विरूपित हो जाते हैं। पुष्प में बीज नहीं बन पाते हैं या तो वे छोटे व सिकुड़े हुए बनते है। चित्रः3 सरसो में श्वेत कीट रोग

प्रबन्धन

- रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें व दो से तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाएं।
- फसल पर रिडोमिल या डाइफॉल्टान या डाइथेन एम45 का 500 मिली/ एकड़ छिड़काव करें।

सरसो कूल के पौधों में कृष्ण गलन रोग (ब्लैक रोट)

लक्षणः रोग के प्रथम लक्षण पत्ती के किनारों के पास हरिमाहीन धब्बों का बनना है जो कि पत्ती के मध्य की ओर बढ़कर अंग्रेजी के शब्द "वी" की आकृति के पीले धब्बें बना लेते हैं। पत्तियों की शिरायें एवं सहायक शिरायें भूरी होकर बाद में काली पड़ जाती हैं। यह रोग का विशिष्ट लक्षण है। यह संवहन विवर्णन मुख्य तने की ओर बढ़ जाता है और ऊपर व नीचे की ओर फैलता है। पत्तियाँ पीली होकर परिपक्व होने से पूर्व झड़ जाती है और पौधे की मृत्यु हो सकती है।

प्रबन्धन

- रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें व दो वर्ष का फसल–चक्र अपनाएं।

- संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- फसल पर 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड़+500 पीपीएम (0.05 प्रतिशत) स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का छिड़काव करें।

धान में झौंका रोग (राइस ब्लास्ट)

लक्षणः यह धान का एक प्रमुख रोग है जो नये अंकुर, पत्तियों, पुष्पगुच्छों, पोरियों, पोरियों की गांठ और पुष्पगुच्छों की गर्दन को ग्रसित करता है। यह रोग गर्दन तोड़ के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग में पत्तियों पर मध्य में चौड़े और दोनों सिरों की ओर नुकीले आँखनुमा भूरे धब्बें या विक्षत बनते हैं। इन विक्षतों के किनारे भूरे होते हैं तथा केन्द्र राख जैसे रंग के होते हैं। गंभीर संक्रमण में यें धब्बें बढ़कर मिल जाते हैं और पूरी पत्तियों को मार देते हैं। इस रोग में कल्म का इन्टरनोडल संक्रमण एक के बाद एक 3 सें.मीं. काले उत्तकक्षयी कल्म एवं 3 से.मी. स्वस्थ उत्तक के साथ पट्टे के शैली में आता है। नोडल संक्रमण में नोड्स काली हो जाती है व कल्म संक्रमित नोड पर टूट जाती है। जब गर्दन संक्रमित हो जाती या गल जाती है तब कुछ दाने बनते है या पेनिकल्स खाली रह जाते हैं। ये कमजोर स्थान से टूट जाते हैं

चित्र : 2 धान में झौका रोग

प्रबन्धन

- बीजोपचारः थीरम 2.5 ग्राम या ट्राईसाइक्लाजोल 75 डब्ल्यू. पी. 1.5 ग्राम/किग्रा बीज।
- रोग दिखाई देने पर फसल पर 0.2 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम या 0.1 प्रतिशत ट्राईसाइक्लाजोल का छिड़काव करें। रोग के सम्पूर्ण नियन्त्रण के लिये 10–15 दिनों के अन्तराल पर 2–4 छिड़काव आवश्यक हो सकते हैं।

धान में बकानी रोग/पद गलन रोग

लक्षणः बासमती किस्मों में लगने वाला यह प्रमुख रोग कवक से होता है। संक्रमित पौधे पतले, असामान्य रूप से लम्बे (स्वस्थ पौधों से कई इंच लम्बे) एवं पीले–हरे होते हैं। गंभीर रोगी पौधे नर्सरी में या रोपाई के बाद मर जाते हैं।

प्रबन्धन

- बीजोपचारः कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू. पी. (20 ग्राम) से 8–10 किग्रा बीज।
- बाविस्टीन 500 ग्राम/एकड़ का रोपाई के बाद खेत में छिड़काव।

चित्रः3 धान में बकानी रोग

धान में जीवाणु पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट)

लक्षणः रोग के लक्षण दो अवस्थाओं में आते है जैसे अंकुर झुलसा या क्रेसेक फेज एवं पत्ती झुलसा अवस्था।

पौध म्लानि अथवा क्रेसैक फेजः प्राय कम आती है परन्तु अधिक नुकसान करने वाली है। क्रेसैक फेज रोपाई के 1–3 सप्ताह बाद देखी जाती है। इस अवस्था में पत्तियों में म्लानि आ जाती है और वे ऊपर की ओर ऐंठ जाती है। ऐसी पत्तियाँ धूसर हरी से पीली हो जाती है। बाद में पूरा पौधा पूरी तरह सूख जाता है।

पत्ती झुलसा अवस्थाः इस में पत्ती के फलक (लीफ ब्लेड) पर या पत्ती के चोटी पर जलासिक्त विक्षत से पीली धारियाँ बनती हैं। बाद में यें विक्षत बढ़कर पीले से भूरे रंग की धारियों व लहरदार किनारों के चित्रः6 धान में जीवाणुज पत्ती झुलसा एक या दोनों किनारों पर मध्य शिरा के साथ–साथ बनती हैं। सुबह के समय नये विक्षतों पर बैक्टीरियल ऊज की दूध जैसी धूंधली बूंद दिखाई देती है। रोग के बढ़ने पर ये विक्षत पीले से सफेद रंग में बदल जाते हैं। गंभीर रूप से ग्रसित पौधों की पत्तियाँ जल्दी सूखने लगती है। साथ बड़ा आकार बना लेते हैं। ये धारियाँ पत्तियों के

प्रबन्धन

- बीजोपचारः कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. (20 ग्राम) +स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम) से 8–10 किग्रा बीज।
- फसल पर कॉपरआक्सीक्लोराइड (500 ग्राम) +स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (12–18 ग्राम) के मिश्रण 200 लीटर पानी/एकड़ की दर से छिड़काव करें।

- स्टेबल ब्लीचिंग चूर्ण 5.0 किग्रा/एकड़ की दर का प्रयोग इस रोग का घनत्व कम करने के लिये सहायक है।

धान में शीथ झुलसा रोग (शीथ ब्लाइट)

लक्षणः इस रोग के लक्षण पानी के तल के आस–पास पौधों की लीफ शीथ पर दीर्घ वृत्तीय से गोलाकार, छोटे, हरे–धूसर जलासिक्त विक्षतों या धब्बों के रूप मे प्रारम्भ होते हैं। पुराने विक्षत धूसर सफेद केन्द्र एवं हल्के भूरे से गहरे भूरे किनारे वाले होते हैं जो अनुकूल दशाओं में पूरे कल्लें को ढक लेते हैं और सबसे ऊपर की पत्ती तक पहुँच सकते हैं। ये विक्षत आपस में मिलकर बड़े विक्षत बना लेते हैं जिससे पत्तियाँ झुलस सी जाती है और पूरी पत्ती की मृत्यु हो सकती है। गंभीर संक्रमण में रोग अन्दर वाली पत्ती आवरण (शीथ) में फैल जाता है जिससे पूरे पौधे की मृत्यु हो जाती है। गंभीर अवस्था में नीचे वाले पुष्पगुच्छों में कुछ दाने बनते हैं या खाली रह जाते हैं। पुराने पौधें रोग के प्रति अधिक सुग्राही होते हैं।

चित्र : 4 धान में जीवाणुज पत्ती झुलसा रोग

प्रबन्धन

- हेक्जाकोनाजोल घुलनशील चूर्ण का 500 मिली/एकड़ या कार्बेन्डाजिम 500 मिली/एकड़ या प्रोपिकोनाजोल 200 मिली/एकड़ का 200 लीटर जल में घोल बनाकर छिड़काव करें।

धान में आभासी कण्डुवा रोग (फाल्स स्मट)

लक्षणः ग्रसित दानें पीले–हरे मखमली बीजाणु के झुण्ड (स्मट बॉल्स) में परिवर्तित हो जाते हैं। शुरू में ये स्मट बॉल्स छोटी होती हैं और ग्लूम्स के बीच में सीमित रहती हैं और धीरे–धीरे बढ़ती हैं। परिपक्व बीजाणु नारंगी रंग के होते हैं जो बाद में पीले हरे या काले हरे रंग के हो जाते हैं। स्मट बॉल्स एक झिल्ली से ढके होते हैं जो बाद में कवक वृद्धि के कारण फट जाती हैं व बीजाणु हवा में तैर जाते हैं। प्रायः एक पुष्पगुच्छ में कुछ दानें ही संक्रमित होते हैं।

चित्र : 5 धान में शीथ झुलसा रोग

चित्रः 6 धान में आभासी कण्डवा रोग

प्रबन्धन

- पुष्पन पूर्व अवस्था पर कार्बेन्डाजिम या कॉपरऑक्सीक्लोराइड (ब्लाइटॉक्स–50) का 2.0–3.0 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव रोग को कम करता है।
- बीज बनने से पूर्व प्रोफीकोनाजोल 200 मिली/एकड़ या हेक्साकोनाजोल 500 मिली/एकड़ की दर से छिडकाव करें।

फसल उत्पादन में बीज उपचार की भूमिका

अनुज[1], पूनम जसरोटिया[2], प्रेम लाल कश्यप[2] एवं सुधीर कुमार[2]
1 चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
2 भा.कृ.अ.नु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

बीज उपचार जैविक जीवों, उत्पादों और या रासायनिक अवयवों का सटीक अनुप्रयोग है जो बीज को रोगजनकों, कीड़ों से बचाता है। स्वस्थ बीज उच्च फसल उत्पादन के लिए सबसे आधारभूत आवश्यकता है। यद्यपि केवल स्वस्थ बीज के उपयोग से ही वांछनीय उत्पादन प्राप्त नहीं हो सकता है। एक बीज को एक नए जन्मे बच्चे के रूप में माना जा सकता है जो हालांकि स्वस्थ है, लेकिन वर्तमान रोगों से आसानी से संक्रमित हो सकता है और बचाव के लिए टीकाकरण की आवश्यकता होती है। उसी तरह से बीज, हालांकि स्वस्थ है, मृदा में मौजूद रोगज़नकों द्वारा संक्रमित हो सकता है। इसलिए इसको भी उचित बीज उपचार की आवश्यकता होती है।

बीजोपचार के लाभ

बीज उपचार एक मजबूत, स्वस्थ शुरुआत के लिए, बीज को आवश्यक सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक प्रभावी उपकरण है।

बीज उपचार अंकुर की स्थापना में सहायता करता है। यह शुरुआती महत्वपूर्ण चरणों में तनाव को सहन करने की संयंत्र की क्षमता में सुधार करता है।

बीज उपचार मृदा एवं बीज जनित रोगजनकों से सुरक्षा प्रदान करता है।

सटीक लक्ष्यीकरणः चूंकि रसायन सीधे बीज पर लागू होते हैं, इसलिए केवल थोड़ी मात्रा में रसायन कीट के बड़े अनुपात को नियंत्रित कर सकते हैं।

बीज उपचार के प्रकार

1. बीज ड्रेसिंगः यह बीज उपचार का सबसे आम तरीका है। बीज को या तो सूखे सूत्रीकरण के साथ तैयार किया जाता है या घोल या तरल निर्माण के साथ गीला किया जाता है। ड्रेसिंग को खेतों और उद्योगों दोनों के लिए उपयोग किया जा सकता है। कम लागत वाले मिट्टी के बर्तनों का उपयोग कीटनाशकों को बीज या बीज के साथ मिश्रित करने के लिए किया जा सकता है और एक पॉलीथीन शीट पर फैलाया जाता है और आवश्यक मात्रा में रसायन का छिड़काव बीज और किसानों द्वारा मिश्रित रूप से किया जाता है।

2. बीज कोटिंगः बीज के साथ उपचार रसायन को बांधने के लिए एक विशेष मशीन का उपयोग किया जाता है। कोटिंग के लिए उद्योग द्वारा उन्नत उपचार तकनीक की आवश्यकता होती है।

3. बीज पेल्लेटिंगः इस तकनीक में बीजों को कीटनाशकों, पोषक तत्वों और अन्य घटकों के साथ पानी के क्रमिक जोड़ के साथ रोल किया जाता है, इसके बाद बीजों को सुखाया जाता है जब तक कि सही आकार/ग्रेड की गोली प्राप्त न हो जाए। इसके लिए विशेष मशीनरी और तकनीकों की आवश्यकता होती है और यह सबसे महंगा अनुप्रयोग है।

बीजोपचार की विधि

छोटे पैमाने पर बीज उपचार के लिए मिट्टी के बर्तन या पॉलीथीन शीट का उपयोग किया जा सकता है। बर्तन के अंदर सही मात्रा में बीज और उपचार सामग्री डालें और इसे ऊपर से अच्छे से बंद करें। अब कुछ समय के लिए बर्तन को हिलाएं ताकि बीज और उपचार सामग्री अच्छे से मिश्रित हो सकें। अब आप उपचारित बीज का उपयोग कर सकते हैं। पॉलिथीन शीट

पर बीज और उपचार सामग्री फैलाएं और हाथ से मिलाएं। अब उपचारित बीज का उपयोग करें।

बीजोपचार के दौरान सावधानियाँ

बीज को हमेशा सर्वप्रथम फफूंदनाशक के साथ, फिर कीटनाशक के साथ और फिर जैविक घटकों के साथ उपचारित करें।

उपचारित बीज को तुरंत बोएँ।

बचे हुए उपचारित बीज का सेवन कभी न करें और ना ही पशुओं को खिलाएं।

बीज उपचार कैसे काम करता है।

बीज–सतही प्रवाह–बीज उपचार पूरी तरह से बीज को एक रसायन के साथ कवर करता है जो बीज की सतह पर बीजाणु और अन्य प्रकार के रोगजनक जीवों को मारता है।

बीज संरक्षण–बीज उपचार एक रसायन का उपयोग करता है बीज और युवा पौध को रोगजनक जीवों या मिट्टी में कीड़ों को बीज को संक्रमित करने से बचाता है क्योंकि वे रासायनिक बाधा को पार नहीं कर सकते हैं।

बीज का निष्कासन–जिस रसायनो को बीज में डाला जाता है, वह बीज की सतह के जीवों को मारने के अलावा

प्रमुख फसलों में बीजोपचार

फसल	बीजोपचार
गेहूँ	• **ध्वज कंडः** कार्बेन्डाज़िम (बाविस्टिन) 2.0 ग्राम या टेब्यूकोनाजोल (रेक्सिल) 1.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार। • **अनावृत कंड** : बीटावेक्स (कार्बोक्सिन) 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करना चाहिये। • **हिल बंट या दुर्गन्धी कंड** : कार्बेन्डाजिम के साथ 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। • **फ्यूजेरियम हेड स्कैब, काला दाना रोग, ग्लूम ब्लोच रोगः** बीजों को कार्बोक्सीन या कार्बेन्डाजिम के साथ 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. या टेबुकोनेजोल 1.25 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। • **दीमकः** बीजों का क्लोरपाइरीफोस 20 प्रतिशत ई.सी. दवा की 3–4 मि. ली./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करना चाहिए। थोड़ी देर बीज को छाया में सूखने दें और फिर उपयोग करें। इससे दीमक नहीं लगेगी।
गन्ना	• मृदा जनित रोगों को कम करने के लिए, बीज को पहले 12–14 घंटे के लिए गर्म पानी में रखें और फिर फफूंदनाशकों के साथ उपचार करें जैसे कि बाविस्टिन के 0.2 प्रतिशत घोल को प्रभावी पाया गया है।
मूंगफली	• कॉस्टर केक/400 किग्रा/एकड़ या नीम केक का मृदा अनुप्रयोग और ट्राईकोडर्मा/4 ग्राम/किलोग्राम बीज के साथ बीजोपचार के उपयोग से जड़ गलन, तना गलन और अंकुर गलन जैसे रोगों से बचा जा सकता है। • क्लोरपायरीफॉस/इक्लक्स/2.5 से 12 मिली प्रति कि.ग्रा. बीज के साथ बीजोपचार से सफेद ग्रब से बचा जा सकता है।
कपास	• कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज के साथ बीजोपचार करने पर मृदा जनित रोगों से बचाव पाया जा सकता है। • इमिडाक्लोप्रिड 7.5 ग्राम बीज की दर से रस चूसने वाले कीटों से बचा जा सकता है।
धान	• पौधे लगाने से पहले पौधे को 0.2 प्रतिशत कार्बेनाजिम क घोल में 5–6 घंटे भिगोने पर जड़ गलन, झंडा इत्यादि रोगों से बचाव किया जा सकता है। • जड़ गांठ और सफ़ेद टिप सूत्रकृमि के बचाव के लिए पौधे को 0.2 प्रतिशत मोनो के घोल में भिगोकर लगायें।
बाजरा	• थायरम 75 प्रतिशत धूल/3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के साथ बीजोपचार करने से मृदा रोगों से बचाव होगा। • 300–जाल सल्फर पाउडर/4 के साथ बीज उपचार प्रति किलोग्राम बीज स्मट रोग को नियंत्रित करता है। • अरगट से प्रभावित बीज को हटाने के लिए, 10 प्रतिशत लवण के घोल में भिगोया जाता है। • डाउनी मिल्ड्यू से बचाव के लिए मेटलएक्सिल (एप्रन 35 एसडी) 6 ग्राम/किलोग्राम – बीज के साथ उपचार करें।
सरसों	• सफ़ेद रस्ट और डाउनी मिलड्यू रोग में एप्रन एस डी 35/6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के साथ बीजोपचार की सलाह दी जाती है। • मृदा जनित रोगों के बचाव के लिए कार्बेन्डाजिम/2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के साथ बीजोपचार करें।
मक्का	• बीज को कैप्टान, एट्रिडियाज़ोल, या थीरम (1.5 ग्राम/किग्रा बीज), या कैप्टान+बेओडानिल, कैप्टान +मेटलएक्सिल, या बेनामाइल + फेनामिनोसल्फ (0.75/0.75 ग्राम/कि.ग्रा.) के संयोजन से उपचारित करें।
आलू	• ब्लैक स्क्रुफ़ से बचाव के लिये 100 लीटर पानी में 200 ग्राम विटावैक्स पावर को भिगो दें और फिर 1 एकड़ रोपण के लिए आवश्यक बीज कंदों को 15–20 मिनट के लिए डुबो दें। कंदों को छाया में सुखाएं और फिर खेत में रोपें या बुआई करें। • अर्ली ब्लाइट के प्रभावी नियंत्रण के लिए, समान रूप से सिक्सर/250 ग्राम/एकड़ या कासु–बी/400 मिली + धनकुप/300 ग्राम/एकड़ का छिड़काव करें। • लेट ब्लाइट के प्रभावी नियंत्रण के लिए कुरेट गोल्ड/600 ग्राम/एकड़ या कासू–बी/400 मिली + धनुकोप/400 ग्राम/एकड़ का समान रूप से छिड़काव करें।

आंतरिक फंगस वृद्धि या कीड़ों को मार देता है।

प्रणालीगत कार्य–बीज पर लगाया गया रसायन बीज में प्रवेश कर जाता है और पौधे में फैल जाता है, कुछ प्रकार के कवक या कीटों को भगाता या मारता है या उनके भक्षण को रोकता है।

निष्कर्ष

वर्तमान में, बीज की 70 प्रतिशत आवश्यकता किसानों के स्वयं के बीज भंडार से पूरी होती है जो कि बीज उपचार के बिना बुआई के लिए उपयोग किया जाता है। बीजोपचार बीज और मृदा से लेकर बीज जनित रोगों और कीटों के प्रकोप और फसल के विकास को प्रभावित करने से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि, देश में कई किसान या तो इस अभ्यास से परिचित नहीं हैं या इसका पालन नहीं करते हैं। जो किसान बीज उपचार से अनभिज्ञ हैं उन्हें आस–पास के एटीएमए, सीआईपीएमसी, केवीके, किसान क्लब, एसएयू आदि से बीज उपचार के बारे में प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

कृषि फसलों में सुत्रकृमियों से आर्थिक नुकसान एवं प्रबंधन

हेमराज गुर्जर, विष्णु शंकर मीना, लोकेश कुमार एवं सुरेश कुमार
कृषि अनुसंधान केंद्र, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय–नोगावा, (अलवर)

राजस्थान की जलवायु में मुख्य रूप से जड़ गाँठ सूत्रकृमि, पुट्टी सूत्रकृमि, बीज गाल सूत्रकृमि, निम्बू सूत्रकृमि एवं गुर्दाकार सूत्रकृमि नुकसान पहुंचाते हैं। इनके अलावा फसलों में बहुत से ऐसे कीड़े लगते हैं जो उन्हें नुकसान पहुंचाते हैं। जिन्हें हम आंखों से देखने में समर्थ होते हैं उनकी रोकथाम संभव है लेकिन किसान द्वारा मेहनत से उगाई गई फसल के लिए कई ऐसे शत्रु भी हैं जो आंखों से दिखाई नहीं देते हैं, उनसे निपटना ज्यादा मुश्किल होता है। इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) से ही देखा जा सकता है। 95 फीसदी किसानों को इसके विषय में कोई जानकारी नहीं होती है। ऐसे अदृश्य शत्रु वर्षों से फसलों को नुकसान पहुंचाते आ रहे हैं। जिन्हें सूत्रकृमि कहते हैं। पौधों की जड़ों को भेदकर उनमें गांठ बनाने वाले सूत्रकृमियों की काफी संख्या भूमि में पाई जाती है।

चित्र : 1 सूत्रकृमि की जाँच हेतु मृदा नमूना लेना

चित्र : 2 सूत्रकृमि द्वारा रोग ग्रसित जड़े

सूत्रकृमि क्या होते हैं?

सूत्रकृमि एक सूक्ष्म परजीवी है जो कि नमी प्रिय होता है इन्हें 'गोल कृमि' या 'धागा कृमि' भी कहा जाता है। इनकी अनेक प्रजातियाँ पौधों की जड़ों व उनके भूमिगत भागों पर पलती हैं जबकि कुछ प्रजातियाँ जैसे–बीज गाल सूत्रकृमि पौधों के वायवीय भागों पर भी आक्रमण करती हैं। ये स्वयं भरण पोषण करके, पौधों में कार्यिकीय विकृतियाँ उत्पन्न करके पौधों को कमजोर बनाती हैं। सूत्रकृमि केवल जीवित पौधों पर ही आक्रमण करते हैं और उन्हें आर्थिक क्षति पहुंचाती हैं।

सूत्रकृमियों से आर्थिक हानि

सूत्रकृमि द्वारा सामान्य अवस्था में 25 से 40 प्रतिशत तक नुकसान होता हैं परन्तु सूत्रकृमियों की संख्या ज्यादा होने पर हानि 80 से 90 प्रतिशत तक हो जाती हैं। विभिन्न वैज्ञानिकों के अनुसार सुत्रक्रिमियों द्वारा देश में टमाटर में 28–48 प्रतिशत, बैगन में 26–50प्रतिशत, मिर्च में 20–22 प्रतिशत, भिन्डी एवं करेला में 38–47 प्रतिशत, तरबूज एवं खरबूज में 18–33 प्रतिशत एवं पपीता में 50 प्रतिशत तक नुकसान पाया गया है। एक अन्तर्राष्ट्रीय अनुमान के अनुसार विकसित देशो में यह नुकसान 8.8 प्रतिशत एवं विकासशील देशो में 14.6 प्रतिशत है जिसका मूल्य लगभग 1000 करोड़ अमेरिकी डॉलर में आंका जा सकता है। भारत में सूत्रकृमियों द्वारा फल एवं शब्जियों में 12 प्रतिशत नुकसान का अनुमान हैं जिसका मूल्य लगभग 5200 करोड़ रूपये वार्षिक आंका गया है।

नुकसान पहुँचाने कि प्रकृति एवं लक्षण

पौधों की वृद्धि रुक जाना, पौधों में प्रबलता की कमी, विकृत पौधे, विरुपित तना, विरुपित जड़, फूल विकास में रुकावट आदि। पौधे में सूत्रकृमि जाइलम और फ्लोएम में घर बना लेता है। पौधे की पोषण ग्रहण करने की शक्ति कमजोर हो जाती है तथा प्रकाश संश्लेषण में भी रूकावट आ जाती है। जिससे पौधो में भोजन निर्माण नहीं होता तथा पौधों में जीवन यापन सही तरीके से नहीं कर पाते है। सूत्रकृमि पौधे में उपस्थित पोषक पदार्थों को शोषित कर लेता है, जिससे पौधा कमजोर पड़ जाता है और सूखने लगते हैं। जिन पौधों में सूत्रकृमियों का प्रकोप होता है, वहाँ फफूंद, जीवाणु और कीटों का आक्रमण भी ज्यादा हो जाता है। फलस्वरूप पौधे के विकास के लिए विकराल स्थिति पैदा हो जाती है। सूत्रकृमि सर्व भक्षी प्रकृति के होते हैं ये सब्जियों, खाद्यान्न फसलें जैसे–गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा तथा धान आदि एवं दलहन, तिलहन एवं रेशे वाली फसलों को भी प्रभावित करते हैं।

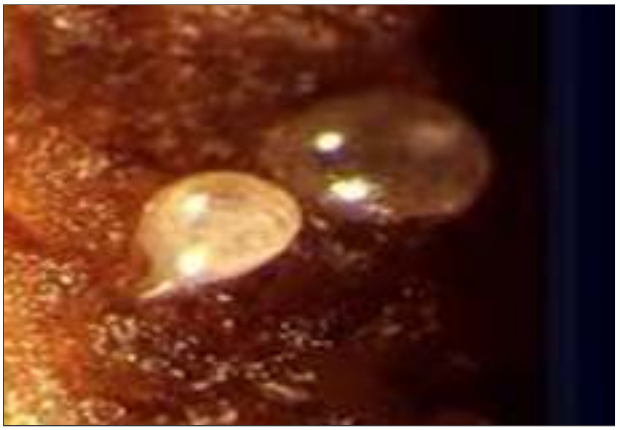

एक अनुमान के मुताबिक सूत्रकृमियों के प्रकोप से लगभग 30 से 40 फीसदी उत्पादन प्रभावित हो रहा है। नग्न आंखों से दिखाई न पड़ने वाले इस सूत्रकृमि की खासियत यह है कि यह अपने आश्रय दाता (होस्ट प्लांट) को पूरी तरह नुकसान नहीं पहुंचाता केवल पौधे से अपनी खुराक भर का पोषक तत्व लेता रहता है, जिससे पौधा जिंदा तो रहता है लेकिन बहुत अधिक कमजोर हो जाता है, जिससे पौधों में फल कम लगते हैं एवं अन्य बिमारियाँ लगने की सम्भावना

चित्र : 3 टमाटर में सूत्रकृमि प्रकोप

जाना चाहिए ऐसा करने से सूत्रकृमि एक खेत से दूसरे खेतों में भी चले जाते हैं।

5. किसानों को गर्मी के दिनों में खेतों की गहरी जुताई कर खेत को एक माह तक खुला छोड़ देना चाहिए।
6. बुआई से पहले खेत में नीम की खली 250 किग्रा. प्रति एकड़ के हिसाब से मिट्टी में मिला देना चाहिए।

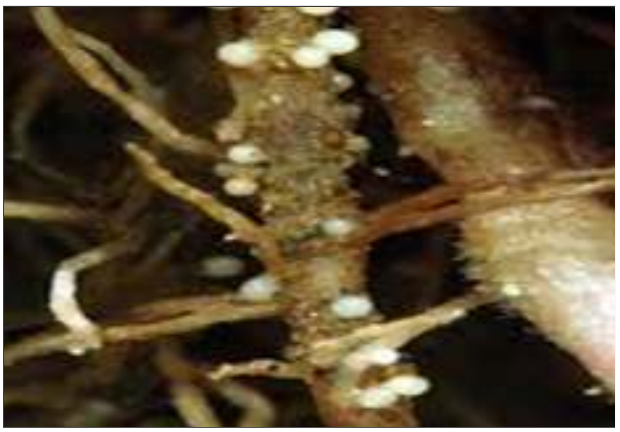

प्रबल हो जाती है। सूत्रकृमियों का प्रकोप अधिक होने पर पौधा ऊपर से पीला दिखाई पड़ता है। किसान यह समझता है कि पौधे को पोषक तत्व की जरूरत है, इसलिए वह खेत में नत्रजन को प्रयोग करता है। फलस्वरूप सूत्रकृमियों की संख्या तीन से चार गुना बढ़ जाती है।

सूत्रकृमियों से फसल का बचाव एवं उनकी रोकथाम

1. सूत्रकृमि से बचाव के लिए फसल को काटने के बाद रोग ग्रसित पोधों को उखाड़ कर जड़ से जला देना चाहिए।
2. यदि पौधा पीला दिखाई दे तो उसके जड़ सहित उखाड़कर गाठ ढूंढने का प्रयास करें।
3. जिन खेतों में इनका प्रकोप दिखायी दे उसमें एक बार चारा वाली फसलें जरूर लगाएँ। इससे बचने का यह आसान तरीका है।
4. सूत्रकृमि से प्रभावित खेतों से दूसरे खेत में पानी नहीं ले

चित्र : 4 नींबू में सूत्रकृमि प्रकोप

चित्र : 5 गेहूँ में सूत्रकृमि प्रकोप

7. स्वस्थ बीजों का उपयोग बुवाई हेतु करना चाहिए।

8. नमक के 20 प्रतिशत घोल से बीज उपचारित करके बुवाई करना चाहिए।
9. सूत्रकृमि प्रभावित खेतों में ट्रैप क्रॉप एवं मेरीगोल्ड (हजारा) उगाना चाहिए।
10. एकान्तर होस्ट को नष्ट कर देना चाहिए।
11. नॉन होस्ट फसलों को लगाना चाहिए तथा एकल फसल प्रणाली नहीं अपनानी चाहिए।
12. मृदा सौरीकरण, रोपाई का समय, फसल–चक्र, विरोधी फसल, कार्बनिक पदार्थो का उपयोग, जल–भराव, खरपतवार प्रबन्धन आदि को अपनाना चाहिए।
13. रासायनिक नियंत्रण जैसे–कार्बोफ्युरान 30 ई.सी. की मात्रा 1–1.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से खेत तैयार करते समय भूमि में मिलाना चाहिए।
14. फोरेट 10 ई.सी. की मात्रा 1–1.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से खेत तैयार करते समय भूमि में मिलाना चाहिए।
15. पौधशाला में सूत्रकृमि नियंत्रण हेतु पेसिलोमाइसीज लिलासिनस फफूंद जैव कारक की मात्र 8–10 ग्राम प्रति वर्ग मीटर क्षेत्रफल कि दर से उपयोग करें।
16. ग्रीन हाउस एवं पॉली हाउस में सूत्रकृमि नियंत्रण हेतु बेड को डेजोमेट (डस्ट प्रिल) 30–50 ग्राम प्रति वर्ग मीटर क्षेत्रफल की दर से फसल लगाने से पहले उपयोग करें।
17. रोग रहित बीज का चयन करना चाहिए। कार्बेन्डाजिम एक मिलीग्राम प्रति किलोग्राम मृदा में उपयोग करे।
18. नीम सीड पाउडर 50 मिलीग्राम/किलोग्राम मृदा में उपयोग करें।
19. ट्राइकोडर्मा हरजिएनम (मित्र फंफूद) पांच किलोग्राम प्रति हैक्टर अथवा पेसिलोमाइसीज लिलासिनस का उपयोग करें।
20. उद्यानिकी फसलों में सूत्रकृमि मुक्त मूल वृन्त का उपयोग करना चाहिए।

चित्र : 6 गर्मियो में गहरी जुताई

चित्र : 7 फंफूद जैव कारक

चित्र : 8 मृदा सौरीकरण

धान उत्पादन एवं जलवायु परिवर्तन

रेनू सिंह[1], रूमा दास[2] एवं श्रीला दास[2]

[1] सी.ई.एस.सी.आर.ए.–आई.सी.ए.आर–आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली

[2] मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान, आई.सी.ए.आर–आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली

पिछले कुछ 150–200 वर्षों में जलवायु में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं, जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा का कम या ज्यादा होना, गर्म लू का चलना, बाढ़, चक्रवात की संख्या में बढ़ोत्तरी इत्यादि। आज दिन पर दिन धरती का तापमान तेजी से बढ़ता जा रहा है, जिसको वैश्विक तपन या ''ग्लोबल वार्मिंग'' कहते हैं। जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग है और ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण वातावरण में ग्रीन हाऊस गैसों जैसे कार्बन डाइ ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि की मात्रा में वृद्धि हैं। ये ग्रीन हाऊस गैसें धरातल से निकलने वाली अवरक्त विकिरणों यानि इन्फ्रारेड रेडिएशन को वायुमण्डल से बाहर नहीं जाने देती, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि होती है। ठंडे प्रदेशों में फल एवं फूलों की खेती के लिए कांच के घर बनाए जाते हैं, जिनमें बाहर की अपेक्षा अंदर उच्च तापमान रखा जा सकता है, जिससे ठंडे प्रदेशों में भी उत्पादन लेना संभव हो सके। इसे ग्रीन हाऊस प्रभाव कहते हैं और इसी प्रभाव के कारण आज सारी पृथ्वी एक बड़े ग्रीन हाऊस में तबदील हो गई है। ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण ही अनेक प्रकार के जलवायु परिवर्तन हो रहे हैं, जिनसे न केवल जन–जीवन बल्कि पेड़–पौधों, वनस्पत्तियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में कृषि क्षेत्र, जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है। अध्ययनों से पता चला है कि भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के सकारात्मक प्रभावों की अपेक्षा नकारात्मक प्रभावों का कहीं अधिकता से सामना करना पड़ेगा। धरती का तापमान बढ़ने के कारणवश ध्रुवीय बर्फों का पिघलना शुरू हो गया है, बर्फ का पानी में परिवर्तित होने की वजह से आसपास की नदियों, समुद्रों का जलस्तर बढ़ रहा है। नदियों का जल–स्तर बढ़ने से बाढ़ का खतरा भी बढ़ता जा रहा है, आज राजस्थान जैसी जगह पर जहाँ सूखा पड़ता था, वहाँ भी आज बाढ़ आ रही है। समुद्रों का जलस्तर बढ़ने से, चक्रवातों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की मात्रा, तापमान, हवा की दिशाओं, आर्द्रता आदि में परिवर्तन आ रहा है। जहाँ कम मात्रा में वर्षा होती है, वहाँ सूखा पड़ जाता है और कहीं आवश्यकता से अधिक वर्षा होने कारण बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वर्षा का कम या ज्यादा होना, तापमान का बढ़ना या घटना, हवा की दिशाओं का बदलना आदि फसलों की पैदावार पर बुरा प्रभाव डालते हैं। पूर्वोतर भारत में बाढ़ का, पूर्वी तटीय क्षेत्रों में चक्रवात, उत्तर–पश्चिम भारत में पाले का, मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में गर्म लहरों का खतरा बढ़ता जा रहा है। ये जलवायु आपदाएँ कृषि उत्पादन पर भारी मात्रा में नुकसान पहुँचाती हैं। भारत में चरम जलवायु अधिकता के हालिया उदाहरण है वर्ष 2002, 2004, 2006, 2009–10 और 2012 में सूखा, वर्ष 2005–06, 2008, 2010 एवं 2013 में बाढ़, 2002–03 एवं 2005–06 में शीत लहर, 2004–05, 2010 में जनवरी–मार्च महीने उच्च तापमान एवं मई 2003 में आंध्रप्रदेश में गर्म–लहरों का प्रभाव आदि। इन सभी परिवर्तनों का राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना, पर्यावरण तथा खाद्य सुरक्षा प्रणालियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

हम सब जानते हैं कि धान की फसल में पानी की बहुत अधिक आवश्यकता होती है, एक किलोग्राम धान की फसल में कम से कम 3000–5000 लीटर तक पानी की आवश्यकता पड़ती है। कम मात्रा में वर्षा होने के कारण पानी की कमी हो जाती है, जिससे धान की फसल बर्बाद होने का खतरा बढ़ जाता है। आज भी बहुत से क्षेत्रों के किसान सिंचाई के लिए वर्षा के जल पर ही निर्भर है, इसलिए वर्षा का सही मात्रा में होना बहुत जरूरी है। तापक्रम का बढ़ना धान की फसलों पर सीधा प्रभाव डालता है। पुष्पन के समय धान के पौधों को 30–32 डिग्री सेन्टीग्रेड तक के तापमान की आवश्यकता होती है, इसलिए यदि तापमान 30 डिग्री सेन्टीग्रेड से कम या 32 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक होगा तो बीज नहीं बन पाएगा। धान के पकने के समय 20–25 डिग्री सेन्टीग्रेड तक का तापमान सही होता है, तापमान बढ़ने के कारण धान की फसल समय से पहले पक जाती है और इससे कम पैदावार होती है। यह पाया गया है कि मध्य वायु तापमान से 2 डिग्री सेन्टीग्रेड की वृद्धि होने से उच्च उपज वाले क्षेत्रों में चावल की उपज लगभग 0.75 प्रति टन की कमी होगी। जलवायु परिवर्तन के कारण तटीय प्रदेशों में मृदा लवणता बढ़ती जा रही है, जो कि धान की फसल के लिए अत्यंत हानिकारक है क्योंकि धान लवणता के प्रति संवेदनशील होता है। अनियमित वर्षा, पानी की कमी धान की फसल के लिए अत्यंत हानिकारक है।

जलवायु परिवर्तनों से धान का उत्पादन प्रभावित न हो इसके लिए किसानों को ऐसी धान की किस्मों का चुनाव करना चाहिए जिसमें उच्च तापमान, सूखा एवं लवणता को सहने की क्षमता हो। उनमें जड़ों का विकास ज्यादा हो ताकि वो जल को अवशोषित कर सकें, इससे जल संरक्षण को बढ़ावा मिलेगा। हमें सीधी बिजाई पलवार को बढ़ावा देना चाहिए। जैविक खादों के प्रयोग को बल देना चाहिए क्योंकि ये फसलों में जल–धारण करने की क्षमता को बढ़ाती हैं तथा मृदा की उर्वरक क्षमता को बनाए रखती है। संरक्षण कृषि जैसे फसल क्रम, शून्य, जुताई, फसल अवशेष आदि से 20–30 प्रतिशत तक जल संरक्षण किया जा सकता है। फसल क्रम कृषि उत्पादन का अभिन्न अंग है, जिसे जलवायु की विविधता को ध्यान में रखकर किया जाता है। विश्व में जहाँ गेहूँ, जौ, मटर, चना, आलू इत्यादि फसलें उगायी जाती है, तापक्रम वृद्धि के कारण इनका स्थान समतापीय जलवायु में उगायी जाने वाली फसलों धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन एवं मूँगफली इत्यादि ले सकती हैं। धान सधनता पद्धति एस आर आई, एरोबिक धान पद्धति आदि से भी जलसंरक्षण को बढ़ावा मिलता है। जल धान की फसल के लिए अत्यंत आवश्यक है, इसलिए जल संरक्षण की तकनीकों को बढ़ावा देना जरूरी है, इससे धान की पैदावार में बढ़ोत्तरी होगी।

गेहूँ की फसल में अन्तस्थ ताप का दुष्प्रभाव, सम्बंधित शोध तथा किस्मों का विकास

संतोष कुमार बिश्नोई[1], जोगेंद्र सिंह[1], राजेन्द्र कुमार[1], चरण सिंह[1] एंव प्रियरंजन कुमार[2]

[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एंव जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल

[2]पूर्वी क्षेत्र के लिए भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद का अनुसन्धान परिसर, अनुसन्धान केंद्र, रांची

गेहूँ विश्व का द्वितीय सर्वाधिक उत्पादित किया जाने वाला खाद्यान्न है। भारत में गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों को छः प्रमुख क्षेत्रों उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, प्रायद्वीपीय क्षेत्र, उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र एंव दक्षिणी पहाड़ी क्षेत्र में वर्गीकृत किया गया है। भारत में गेहूँ मुख्य रूप से उत्तर–पश्चिमी, उत्तर–पूर्वी और मध्य भारत के राज्यों में उत्पादित किया जाता है। गेहूँ का इतिहास लगभग कृषि के इतिहास जितना ही पुराना है। इसकी कुछ प्रजातियाँ दस हज़ार वर्षों से भी पहले मध्य–पूर्व के कुछ क्षेत्रों में उगाई जाती रही हैं। खाद्यान्न के रूप में गेहूँ का भारत में भी एक प्राचीन इतिहास है तथा इसका भारत में आगमन लगभग तीन हज़ार वर्ष पूर्व हुआ माना जाता है। भारत में एक खाद्यान्न के रूप में गेहूँ ने सन 1960 के दशक के उपरान्त अभूतपूर्व उत्पादन, लोकप्रियता एवं आम जन मानस में स्वीकार्यता प्राप्त की। गेहूँ की इस असाधारण उपलब्धि को 'हरित–क्रान्ति' का नाम दिया गया। हरित–क्रांति के दौरान गेहूँ की विभिन्न गुणधर्म वाली किस्में विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के लिए विकसित की गयी जिन्होंने सकल गेहूँ उत्पादन को कई गुणा बढ़ाकर हमारे देश भारत को खाद्य सुरक्षा प्रदान की। उत्पादन वृद्धि के इस समय में गेहूँ की उत्पादकता 6.70 क्विंटल प्रति हैक्टर से बढ़कर 31. 72 क्विंटल प्रति हैक्टर हो गयी।

वर्तमान समय में गेहूँ के किस्म प्रजनन एवं विकास के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण लक्ष्यों में उपज (उत्पादन एंव उत्पादकता) में वृद्धि, प्रयोग संगत बेहतर गुणवत्ता, जैविक कारकों/तनावों जैसे कि रोग एंव कीट प्रतिरोध तथा अजैविक कारकों/तनावों जैसे कि खनिज विषाक्तता, मृदा लवणता व क्षारीयता, नमी के अभाव तथा अन्त्य ताप, के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित करना है। अन्तस्थ ताप तनाव ताप बलाघात (टर्मिनल हीट स्ट्रेस) से अभिप्राय गेहूँ के बीज निर्माण अवस्था में पहुँचने के समय तापमान का इस अवस्था हेतु आदर्श तापमान से अधिक होने से है। जलवायु परिवर्तन तथा वैश्विक तापक्रम वृद्धि को अब वैज्ञानिक मान्यता प्राप्त है तथा गेहूँ तापमान के प्रति एक अत्यंत ही संवेदनशील फसल है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय पैनल ने यह प्रमाणित किया है कि विभिन्न देशों और संस्कृतियों के द्वारा पिछले दस हजार वर्षों से विकसित विविध कृषि उत्पादन तन्त्र मानवीय क्रिया–कलापों से हो रहे जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापक्रम वृद्धि से संकट में पड़ चुके हैं। उच्च तापमान वैश्विक स्तर पर कृषि उत्पादन के बढ़ने अथवा स्थायी रह पाने की दिशा में एक मुख्य बाधा है तथा बढ़ते तापमान के भारतीय गेहूँ उत्पादन तंत्र को भारी क्षति पहुँचाने की भविष्यवाणी व्यक्त की जा रही है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि जलवायु परिवर्तन वैश्विक खाद्य सुरक्षा को संकट में डालने में पूर्णतया सक्षम है।

गेहूँ के सम्पूर्ण जीवन–चक्र को विभिन्न स्पष्ट विकास चरणों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से मुख्य चरण पत्तियों का बनना आरम्भ होना, तने की वृद्धि, जड़ की वृद्धि, बाली का निकलना, फूलों का खुलना, परागकणों का विकास, परागण, दाने का बनना, दाने का भरना और दाने का पकना आदि हैं। गेहूँ के पौधे की प्रत्येक विकास अवस्था हेतु एक विशेष तापमान की आवश्यकता रहती है अथवा दूसरे शब्दों में प्रत्येक विकास अवस्था हेतु एक न्यूनतम, अधिकतम और आदर्श तापमान आवश्यक होता है। इस आदर्श तापमान में हुई कोई भी वृद्धि गेहूँ की उस विशिष्ट विकास अवस्था के लिए हानिकारक होती है।

धान–गेहूँ अथवा कपास–गेहूँ फसल–चक्रों के कारण मध्य, उत्तर–पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी भारत में गेहूँ की विलम्ब से बुवाई प्रायः एक सामान्य घटना है। विलम्ब से बुवाई के कारण होने वाली कुल उत्पादन में हानि 40 से 50 प्रतिशत तक हो सकती है। इसलिए ऐसी किस्मों की अत्यंत आवश्यकता है जो कि विलम्ब से बुवाई के कारण पड़ने वाले अन्तस्थ–ताप के प्रभाव के प्रति सहनशील अथवा प्रतिरोधी हो अथवा जो इस प्रभाव के अस्तित्व में आने से पहले ही पककर तैयार हो जाये। तापमान वृद्धि के निरंतर होने वाले अनुमानों के दृष्टिकोण से विकसित की जाने वाली गेहूँ की सभी किस्मों में अन्त्य–ताप प्रतिरोधिता का होना अति आवश्यक है।

उच्च तापमान पौधे के विकास को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। तापमान वृद्धि से प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। पुन्केशर का विकास अवरोधित हो जाता है और परागकण के अंकुरण की दर कम हो जाती है जिस कारण परागण कम होता है तथा दाने नहीं बन पाते हैं। दाना सही प्रकार से बन या भर नहीं पाता है। इस प्रकार न केवल उपज की मात्रा अपितु गुणवत्ता भी खराब हो जाती है। प्रजनन अवस्था में गेहूँ के लिए दिन का तापमान 15 डिग्री सेल्सियस आदर्श माना गया है। इस तापमान से ऊपर प्रति एक डिग्री की वृद्धि पर कुल उपज में 3 से 4 प्रतिशत की कमी हो जाती है। प्रत्येक दशक में वैश्विक तापमान लगभग 0.18 डिग्री सेल्सियस बढ़ रहा है। इस प्रकार अंतस्थ–ताप गेहूँ के उत्पादन के लिए एक चुनौती बनकर उभरा है जिससे प्राथमिकता के आधार पर अधिक तापमान

में बेहतर उपज देने वाली किस्मों का विकास करके सफलतापूर्वक निपटा जा सकता है।

गेहूँ की अन्तस्थ–ताप रोधी किस्मों का विकास जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले वैश्विक तापमान वृद्धि एवं ऋतुओं के कालांतरण के प्रभाव को कम करने की दिशा में पर्यावरण के अनुकूल, उपयोग में आसान और आर्थिक रूप से सुगम तरीका है। देश के विभिन्न संस्थानों के द्वारा विभिन्न वर्षों एवं भौगोलिक क्षत्रों के लिए विभिन्न किस्में विकसित की गयीं हैं जिनका संक्षिप्त ब्यौरा तालिका 1 में दिया गया है। इसी प्रकार अन्त्य–ताप रोधी गेहूँ के कुछ विशिष्ट जननद्रव्य भी चिन्हित एवं पंजीकृत किये गए हैं जो की तालिका 2 में दिए गए हैं।

तलिका 1. गेहूँ की अन्तस्थ ताप रोधी किस्में

किस्म का नाम	जारी (नोटिफिकेशन) वर्ष	प्रजनक संस्थान	अनुसंशित / उत्पादन क्षेत्र	विशेषता
लोक 1	1982	लोक भारती, सनोसरा, गुजरात	मध्य क्षेत्र	सिंचित क्षेत्र में समय और विलम्ब से बुवाई की जा सकने योग्य अंतस्थ ताप रोधी यह किस्म 126 से 134 दिन में पक कर तैयार हो जाती है और सामान्य परिस्थितियों में 36–40 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देती है।
राज 3765	1996	राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान दुर्गापुरा, जयपुर	उत्तर–पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र	सिंचित क्षत्रों में विलम्ब से बुवाई करने की स्थिति में यह 126 से 134 दिन में पक जाती है तथा सामान्य परिस्थितियों में 36–40 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देने वाली यह अंतस्थ ताप रोधी किस्म है।
परभणी 51	1996	वसंत राव नायक मराठवाड़ा कृषि विद्यापीठ, परभणी	प्रायद्वीपीय क्षेत्र	विशेषतः महाराष्ट्र राज्य, समय से बुवाई एवं सिंचित दशाओं हेतु अनुसंशित यह एक अंतस्थ ताप रोधी किस्म है।
पी बी डब्ल्यू 373	1997	पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना	उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	42 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज के साथ उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में सिंचित परिस्थितियों में अत्यधिक विलम्ब से बुवाई हेतु अनुसंशित एंव अंतस्थ ताप रोधी किस्म।
गोमती (के 9465)	1998	चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर	उत्तर–पूर्वी मैदानी भागः विशेषतः उत्तर प्रदेश	गेहूँ के कई प्रकार के सामान्य रोंगों के प्रति रोधी एवं सिंचित क्षेत्रों में विलम्ब से बुवाई में अच्छी उपज (30–35 कुंतल प्रति हैक्टर) देने में सक्षम अंतस्थ ताप रोधी किस्म
गंगोत्री (के 9162)	2001	चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर	उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र	100 दिन में पकने वाली मोटे दाने, भूरा एवं पीला रतुआ के प्रति रोधी, 35–40 कुंतल प्रति हैक्टर सिंचित व विलम्ब से बुवाई की अवस्था में उच्च अंतस्थ ताप रोधी किस्म।

डी बी डब्ल्यू 14	200 2	भा.कृ.अनु.प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र	सिंचित एवं विलम्ब से बुवाई हेतु अनुसंशित तथा 126 से 134 दिनों में पकने वाली व 36–40 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देने वाली अंतस्थ ताप रोधी किस्म।
जी डब्ल्यू 322	2002	मध्य क्षेत्र	प्रायद्वीपीय क्षेत्र एस.ए.ए.यू जूनागढ़	सिंचित और समय से बुवाई करने पर 41–45 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज व 126–134 दिनों में पकती है। यह काला एवं भूरा रतुआ एवं अंतस्थ ताप के प्रति रोधी है।
राज 4037	2003	राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान दुर्गापुरा, जयपुर	मध्य क्षेत्र	समय से बुवाई तथा सिंचित अवस्था में 36–40 कुंतल प्रति हैक्टर उपज एवं 126–134 दिनों में पकने वाली काला रतुआ एवं अंतस्थ ताप रोधी किस्म।
एच आई 1500 (अमृता)	2003	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, इंदौर	मध्य क्षेत्र–मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के कुछ क्षेत्र और बुंदेलखंड क्षेत्र	मोटे दानों वाली और 120 दिनों में पककर तैयार होने वाली यह किस्म अंतस्थ ताप रोधी होने के कारण विलम्ब से बुवाई हेतु अनुसंशित है। वर्षा आश्रित तथा कम उपजाऊ मृदा की परिस्थितियों में यह 16 कुंतल प्रति हैक्टर तक की औसत उपज देने में सक्षम है।
एम पी 4010	2003	जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर	मध्य क्षेत्र–मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के कुछ क्षेत्र और बुंदेलखंड क्षेत्र	सामान्य परिस्थितियों में 40 कुंतल प्रति हैक्टर तक की उपज देने वाली यह किस्म सिंचित क्षेत्रों में विलम्ब से बुवाई हेतु उपयुक्त है 108 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा अंतस्थ ताप रोधी पायी गयी है।
एच डी 2864	2004	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली	मध्य क्षेत्र विशेषतः मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के कोटा और उदयपुर संभाग और उत्तर–प्रदेश	अनुकूल परिस्थितियों में 41.7 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देने वाली यह किस्म गेहूँ के कई प्रमुख रोगों के प्रति रोधक है और सिंचित क्षेत्रों में विलम्ब से बुवाई की स्थिति में अंतस्थ ताप के प्रति सहनशील है।

एच.डी. 2833	2006	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली	प्रायद्वीपीय क्षेत्र विशेषतः उत्तरी कर्नाटक, दक्षिणी महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश एंव तमिल नाडू	मध्यम अवधि पकाई और मोटे दानों वाली यह किस्म अनुकूल परिस्थितियों में 26–30 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देने वाली, तीनों प्रकार के रतुआ रोगों एवं अंतस्थ ताप रोधी है।
डी.बी. डब्ल्यू. 16	2006	भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	सिंचित विलम्ब से बुवाई 126 से 134 दिनों में पकने वाली 36–40 कुंतल प्रति हैक्टर अंतस्थ ताप रोधी।
के. 0307	2006	चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर	उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र विशेषतः बिहार, ओडिशा, पश्चिमी बंगाल, असम एवं उत्तर–पूर्वी राज्यों के मैदानी हिस्से	सामान्य परिस्थितयों में 45.6 कुंतल प्रति हैक्टर तक की उपज देने वाली यह किस्म उपजाऊ मृदाओं में समय से बुवाई हेतु अनुसंशित है तथा अंतस्थ ताप रोधी है।
राज 4083	2007	राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुर, जयपुर	प्रायद्वीपीय क्षेत्रः विशेषतः उत्तरी कर्णाटक, दक्षिणी महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडू	मोटे दानों एवं अर्धवामन लम्बाई की यह किस्म सिंचित क्षेत्रों में विलम्ब से बुवाई हेतु अनुसंशित है एवं अंतस्थ ताप रोधी है।
राज 4079	2010	राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर	राजस्थान के सिंचित क्षेत्र	समय से बुवाई व सिंचित अवस्था में 47–50 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देने वाली, तीनो प्रकार के रतुआ के प्रति रोधी तथा 120 दिनों में पकने वाली अंतस्थ ताप रोधी किस्म।
राज 4120	2009	राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर	पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी भारत एवं पूर्वोत्तर के राज्यों के मैदानी हिस्से	सामान्य परिस्थितियों में 47.5 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज, सिंचित अवस्था में समय से बुवाई हेतु अनुसंशित, मोटे दाने की अंतस्थ–ताप रोधी किस्म।
एम.पी. 1203	2009	जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर	मध्य क्षेत्र विशेषतः मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के कोटा और उदयपुर संभाग	सिंचित अवस्था में विलम्ब से बुवाई करने पर 41.2 कुंतल प्रति हैक्टर तक की उपज देने वाली, अर्ध–वामन एंव मध्यम से विलम्ब से पकने वाली अंतस्थ ताप रोधी किस्म।

एम पी ओ 1215	2009	जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, पवारखेड़ा	मध्य क्षेत्र विशेषतः मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के कोटा और उदयपुर सम्भाग और उत्तर–प्रदेश का झाँसी संभाग	यह समय से बुवाई व सिंचित अवस्था में 478 कुंतल प्रति हैक्टर की उपज देने वाली गेहूँ की अर्धवामन ड्यूरम पास्ता प्रजाति किस्म है जो कि अन्तरूप ताप रोधी है।
एच डी 2985	2011	भा.कृ.अनु.प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, इंदौर	उत्तर–पश्चिमी मैदानी भागः पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जम्मू कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश के कुछ भाग	यह सिंचित कृषि में विलम्ब से बुवाई हेतु अनुसंशित है तथा मध्यम से विलम्ब तक पकने वाली अंतस्थताप रोधी किस्म है।
डी बी डब्ल्यू 107	2014	भा.कृ.अनु.प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र : पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी भारत एवं पूर्वोत्तर के राज्यों के मैदानी हिस्से	सिंचित कृषि के लिए विलम्ब से बुवाई हेतु अनुसंशित यह किस्म 41.3 कुंतल प्रति हैक्टर तक की उपज देती है तथा गेहूँ के कई रोगों के प्रति रोधी तथा अंतस्थ ताप के प्रति सहनशील है।

तालिका 2. अंतस्थ ताप रोधी चिन्हित एवं पंजीकृत विशिष्ट गेहूँ जननद्रव्य

विशिष्ट जननद्रव्य	पंजीकरण वर्ष	आनुवंशावली	संस्थान	विशेषता
डब्ल्यू एच 370	2006	सी पी ए एन 2092 / लोक 1	चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार	अंतस्थ ताप रोधी, उच्च कैनोपी तापमान न्यूनता (5–6)
ए के ए डब्ल्यू 3717	2010	एच डब्ल्यू 2035 / एन आई 5439	डॉ पंजाब राव देशमुख कृषि विद्यापीठ, अकोला	अंतस्थ ताप रोधी
एच टी डब्ल्यू 6	2011	देशज संग्रह	भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	अंतस्थ ताप की परस्थितियों में केवल 7% उपज की हानि
एच टी डब्ल्यू 11	2013	देशज संग्रह	भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	विलम्ब से बुवाई की परिस्थितियों में केवल 9 प्रतिशत उपज की हानि
डी एच टी डब्ल्यू 60	2015	आई सी 36761 ए	भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	अंतस्थ ताप एवं अकाल रोधी
डी बी डब्ल्यू 150	2017	डी बी डब्ल्यू 16 / जी डब्ल्यू 322	भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	ताप संवेदन इंडेक्स 0–35

वर्ष 2100 तक अन्तस्थ ताप के कारण सर्द–ऋतू गेहूँ एवं बसंत–ऋतु गेहूँ में होने वाले नुकसान का अनुमान क्रमशः 7.1 और 15.5 प्रतिशत लगाया गया है। हमारी खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को खतरे में डाल सकने में सक्षम इस नुकसान उपरोक्त किस्मों के अधिकाधिक उपयोग तथा तालिका 2 में दिए विशिष्ट जननद्रव्यों के माध्यम से उत्तरोत्तर अधिक अंतस्थ ताप रोधी किस्मों के विकास में उपयोग में लाकर कम किया जा सकता है।

फसल संरक्षण

राहुल कुमार, वरिष्ठ शोध सहायक
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल

सफल सस्य उत्पादन के लिए फसल की रोगों कीटों व खरपतवारों से रक्षा करना अन्य कृषि कार्यों की तुलना में अधिक आवश्यक है। संसार की जनसंख्या लगभग 6.6 अरब है। जनसंख्या की वर्तमान दर को ध्यान में रखते हुए ऐसा अनुमान है कि कुपोषण से वर्तमान में 600 मिलियन व भूख से 1.8 मिलियन मनुष्य संसार में प्रभावित होते हैं। पेस्टीसाइड्स एसोशियेएन ऑफ इण्डिया के अनुसार कीट–पतंगों, बिमारियों व खरपतवारों से फसलों के कुल उत्पादन का 18 से 20 प्रतिशत नष्ट हो जाता है। यह हानि लगभग 5000 करोड़ रूपये तक प्रति वर्ष पहुँच जाती है। अगर हम इस हानि को बचा लें तो हमारे देश मे कभी भी आने वाले वर्षों में अन्न की कमी नहीं पड़ेगी। बीमारी, कीट–पतंगों व खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि से फसलों की सुरक्षा करना अति आवश्यक है। ताकि हमारा देश अन्न पूर्ति में आत्मनिर्भर बन सके।

फसल या पादप संरक्षण को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है;

1. रोग अथवा बिमारियों का नियंत्रण

2. कीट–पतंगों का नियंत्रण

3. खरपतवारों का नियंत्रण

फसलों में बिमारियों से हानि 1 से 100 प्रतिशत तक हो सकती है। इससे उत्पादन में गिरावट आती है एवं गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। इस प्रकार की हानि अन्न वाली फसलों, फल एवं सब्जियों व अन्य प्रकार की फसलों में होती है। इससे परोक्ष रूप से किसान की आर्थिक दशा पर प्रभाव पड़ता है। कभी संग्रहालयों में कीट पतंगों के अधिक प्रकोप के कारण किसानो को अपना उत्पादन जल्दी बेचना पड़ता है और कम लाभ प्राप्त होता है तथा अलग–अलग फसलों पर अलग–अलग बिमारियों का प्रकोप होता है। पौधे के रोग कई प्रकार के रोग जैसे बैक्टिरिया (जीवाणु), कवक (वायरस) या प्राकृतिक कारकों जैसे कम या अधिक तापमान मृदा में नमी की कमी या अधिकता या भूमि विकार जैसे अम्लीयता, क्षारीयता के कारण पैदा होते हैं।

फसल सुरक्षा में कारगर प्रयोग– किसान बहुत मेहनत करता है। फसलों की समय पर सिंचाई करता है और जरूरी खाद भी देता है। लेकिन उसकी फसल पर कीटों का प्रकोप हो जाये तो महनेत व पूँजी बेकार हो जाती है। इस स्थिति से बचने के लिए किसान को कीटनाशको के इस्तेमाल के साथ–साथ ऐसे वैज्ञानिक तरीके भी अपनाने चाहिए जिससे फसल की सुरक्षा भी कर सकें और किसान कीट आकर्षित करने वाली रक्षक फसल लगाकर काफी हद तक फसलों को सुरक्षित कर सकते हैं। इसमें मुख्य फसल के साथ रक्षक फसल भी लग जाती है जो कीटों को मुख्य फसल तक नहीं जाने देती एवं अच्छे फसल उत्पादन के लिए किसानों को कीट आकर्षित या रक्षक फसल प्रणाली को अपनाना चाहिए। यह वैज्ञानिक प्रणाली पर आधारित सुरक्षा रणनीति हैं।

इस प्रणाली में कीटों को आकर्षित करने वाले पौधों को इस्तेमाल किया जाता है या उगाया जाता है ये पौधे कीटों को अपनी और आकर्षित करते हैं और मुख्य फसल तक जाने से रोकते हैं। जिससे फसलों की सुरक्षा होती है। मुख्य फसलों को कीटों से बचाव के लिए निम्न रक्षक फसलों को उगाया जा सकता हैं। जैसे;

रक्षक फसलें

1. मूंगफली की फसल को पत्ती मोड़ने वाले थ्रिप्स माईट से सुरक्षित रखने के लिए लोबिया मददगार है।
2. टमाटर की फसल को फल छेदक या निमेटोड से सुरक्षित करने के लिए गेंदा मददगार हैं। गेदे की हर दो कतार टमाटर की 14 पंक्तियों के बाद लगाए।
3. गोभी की फसल में 25 कतारों के बीच दो कतारे सरसों की लगाए जो गोभी की फसल के लिए बहुत ही लाभकारी होती है।
4. मक्का व ज्वार दोनों फसलों में तना छेदक कीट बहुत हानि पहुँचाता है। इस कीट से बचाव के लिए फसलों के चारों ओर सूडान घास को रक्षक फसल के रूप में उगाया जा सकता है।

पादप रोगों के स्त्रोत्र

1. बीजो से फैलने वाले (बीजोढ) पादप रोग
2. मृदा से फैलने वाले (मृदोढ) पादप रोग
3. हवा से फैलने वाले (वातोढ) पादप रोग

4. कीट वहित रोग कीटों से फलने वाले पादप रोग

1. बीजोढ़ रोग– फसलों में ये रोग बीजों द्वारा फैलते हैं इन रोगों के रोग जनक बीजों के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं तथा जब बीज अंकुरित होता है तो वे रोग जनक भी सक्रिय हो जाते हैं और आगे चलकर पौधो में रोग उत्पन करते हैं। जैसे, गेहूँ का कण्डुवाँ रोग

2. मृदोढ़ रोग– यह रोग भूमि से पौधों में लगते हैं। इन रोगों के रोग जनक भूमि के अन्दर पाये जाते हैं। और जब बीज बोया जाता है तो उस समय अंकुरित पौधों पर आक्रमण कर देते हैं। जैसे, उकठा मूल विगलन रोग।

प्रबंधन

जड़ों की बिमारियों का नियंत्रण फसलों में कुड़ा करकट व खरपतवारों की सफाई, भूमि का रासायनो से उपचारित करके, यंत्र जैविक विधियों से नियंत्रण व बीमारी रोधक फसलों की जातियों को उगाकर करते हैं। वानस्पतिक रूप से फसलों का फसल–चक्र में उगाने पर इस प्रकार की बिमारियाँ समाप्त होती है।

फसलों में रोग विनाश के अनेक उपाय बीज बोने का समय, बीज की गहराई, खाद एवम् उर्वरकों का सही समय पर प्रयोग भूमि का पी. एच सन्तुलन, खेतों की जुताई, पौधों का अन्तरण आदि क्रियाओं को अपनाकर नियन्त्रण करते हैं।

3. वातोढ़ रोग या हवा द्वारा फैलने वाले रोग– कुछ फसलों में रोगों के रोग जनक हवा द्वारा फैलते हैं। जैसे– गेहूँ, जौ, जई आदि फसलों में गेरूई या रतुआ हवा द्वारा ही स्वस्थ पौधो पर फैलते है।

4. कीट वाहित रोग– कुछ रोग कीटों द्वारा पौधो में फैलते हैं। ये कीट पतंगे विषाणु रोग फैलाने में मदद करते हैं। जैसे–सोयाबीन, उड़द, मूँग आदि का पीला विषाणु रोग एक छोटे से कीट सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। कुछ रोग दैहिक रोग भी होते हैं जो फसलों में पोषक तत्वों की कमी से फैलते हैं जैसे धान का खैरा रोग, मक्के की सफेद कली आदि जिंक की कमी से फसलों में फैलते हैं। ऐसे रोगों, से बचाव के लिए अनेकों विधियाँ अपनाकर फसलों को रोग मुक्त किया जा सकता है।

प्रबंधन

1. रोगी पौधों या पौधों के अंगों को नष्ट कर देना चाहिए।
2. फसल चक्र अपनाकर या भूमि को परती रखकर रोग नियंत्रण करना चाहिए।
3. परपोशी पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।
4. कृषि क्रियाओं में परिर्वतन कर देना चाहिए।
5. पौधों के धावों का उपचार करना चाहिए।
6. रोगवाहक कीटों का नियंत्रण करना चाहिए।
7. बीजों का सौर उर्जा एवम् गर्म पानी से उपचार करना चाहिए।
8. समय–समय पर फसलों में आवश्यक उर्वरकों का प्रयोग करके जैसे धान का खैरा रोग जिंक की कमी के कारण

तालिकाः– विभिन्न फसलों की रोगरोधी किस्में

फसल का नाम	रोग	रोग रोधी किस्में
धान	ब्लास्ट	गोबिन्द, हिमालय–2, जया, कृष्णा, मधु विजय, वीएल–8
मक्का	डाऊनी मिल्ड्यू (2) लीफ ब्लाइट	गंगा–5, हिमालयन–123, प्रताप, प्रताप–1 गंगा–5, दक्कन, अगेती–76, बी सी मक्का–54
ज्वार	गेरूई रस्ट	सी एस एच–3, सी एस एच–5, सी एस एच–9, सी एस वी–4, सी एस वी–10, सी एस वी–11
बाजरा	डाऊनी मिल्ड्यू	पी एच बी 47, एम बी एच 101, एच सी–4, सी आ–6, पी एस बी–15, आर सी बी–2, आर ए आई–1
चना	विल्ट ब्लाइट	पूसा 212, पूसा 244, पूसा 417, पूसा 261, पूसा 408, पूसा 413
आलू	अगेती झुलसा पछेती झुलसा	कुफरी बादशाह, कु.ज्योति, कु.ज्योति, कुफरी जीवन, कु. ज्योती आदि
कपास	बैक्टी रियल ब्लाइट फ्यूजेरियम	गोदावरी, डी बी–1,एल आर ए 5166 जीकोट–11, जीकोट–13 रायचुर–11

लगता है जिसके लिए 20–25 किलोग्राम जिंक उर्वरक प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए।

9. सिंचाई प्रबंधन के द्वारा आलू की फसल में स्कैब बीमारी का प्रकोप कम होता है।

10. रोग अवरोधी जातियाँ उगायी जानी चाहिए जो अनेकों परीक्षणों से गुजरने के बाद किसानो को वितरित की जाती है।

रसायनों का प्रयोग– जिन पादप रोगों के रोगजनक पौधों के बीजों पर चिपके होते हैं या मृदा कणों पर पाये जाते है। तो विभिन्न प्रकार के रसायनो का प्रयोग घूलि द्रव या घूम्र के रूप में परिस्थितियों के अनुसार करते हैं।

1. **ताँबा युक्त रसायन**– इस वर्ग में बोर्डो मिश्रण ब्लाइटोक्स पेरेलोन व क्यूपरासन आदि रसायन हैं।
2. **गन्धक युक्त रसायन**– इस वर्ग में जिनैब, नुवान थीरम, सल्फोसल्फेट आदि रसायन सम्मलित हैं।
3. **पारा युक्त रसायन**– इस वर्ग में एग्रोसन जी एम, सेरेसान, ऐरेटान, व नोमरसन आदि रसायन प्रयुक्त है।
4. **अन्य रसायन**– विटावैक्स. कैप्टान. पी.सी.एन.बी. नामक आदि रसायन सम्मिलित किए जाते हैं।

फसल की कटाई के बाद उत्पन्न बिमारियों का नियन्त्रण– फसल की कटाई के बाद विशेष रूप से सब्जियों व फलों के ऊपर भी रोगों का संक्रमण हो जाता है। भडांर में उपज के लिए रोग नियन्त्रण के लिए रसायनो का प्रयोग करने से अधिकांश यौगिक ऊपज पर विषैला प्रभाव छोड़ते हैं तथा इनको नष्ट भी कर देते हैं। भण्डारों में ऊपज की रक्षा के लिए इनके हल्के घोल का प्रयोग किया जाता है। सल्फरडाइ ऑक्साइड आदि रसायनों का प्रयोग भण्डारों में गैस के रूप में रोगों के संक्रमण के लिए करते हैं। भण्डारों में बोरेक्स, नाईट्रोजन ट्राइक्लोराइड़ सोडियम कार्बोनेट नामक रसायनों का प्रयोग करते हैं। इन सभी तरीकों से फसल संरक्षण किया जा सकता है।

निष्कर्ष

फसलों का संरक्षण बीज उपचार से प्रारम्भ होकर भंडारण तक किया जाता है। अतः पौधें के जीवन–चक्र की विभिन्न अवस्थाओं पर होने वाले संक्रमण से बचाना अति आवश्यक है। कीड़ों, बिमारियों, खरपतवारों से होने वाली हानियों को ध्यान में रखते हुए लाभप्रद खेती को बनाने के लिए फसलों का समय–समय पर संरक्षण एक अहम पहलु है जिसकी समुचित जानकारी किसानो को अवश्य होनी चाहिए।

हिन्दी को आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी,
मेरे लिए तो दोनो ही एक है।
हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना
राष्ट्रीय कार्य हिन्दी भाषा में करें।

– महात्मा गाँधी

गेहूँ में बिजाई के समय का महत्त्व

शारिक अली, सोनू सिंह यादव, सतीश कुमार एवं चंद्र नाथ मिश्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एंव जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत विश्व के प्रमुख गेहूँ उत्पादक और उपभोग करने वाले देशों में से एक है। गेहूँ की खेती में शामिल प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा जैसे मैदानी क्षेत्र स्थित हैं। ये देश में उत्पादित कुल गेहूँ का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा वहन करते हैं। पंजाब और हरियाणा बेहत्तर सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता के कारण गेहूँ की उच्चतम पैदावार प्रदान करते हैं।

गेहूँ को कृषि–जलवायु स्थितियों के आधार पर व्यापक रूप से पांच क्षेत्रों में बांटा गया है

1. उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रः यह सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है और इसमें पंजाब, हरियाणा, जम्मू, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मैदान शामिल हैं। यहाँ गेहूँ की बुआई अक्तूबर से नवंबर में की जाती है और आमतौर पर कटाई अप्रैल के मध्य तक शुरू होती है।

2. उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रः इस क्षेत्र में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम, और ओडिशा, शामिल हैं। क्योंकि इस क्षेत्र में खरीफ की फसल मुख्यतः धान की कटाई होती है, इसलिए गेहूँ को नवंबर के अंत में या दिसंबर के शुरू में ही बोया जाता है और फसल की कटाई मार्च–अप्रैल तक की जाती है।

3. मध्य क्षेत्रः इसमें मध्य प्रदेश, गुजरात, दक्षिण–पूर्व राजस्थान और उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र शामिल हैं। इस क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता का ड्यूरम गेहूँ का उत्पादन किया जाता है।

4. प्रायद्वीपीय क्षेत्रः प्रायद्वीपीय क्षेत्र में दक्षिणी राज्य महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु शामिल हैं। बुवाई आमतौर पर नवंबर के शुरू में पूरी होती है और कटाई फरवरी–मार्च में शुरू होती है। इस क्षेत्र में गेहूँ का फसल–अवधि कम दिनो की होती है।

5. उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रः इस क्षेत्र में कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल और सिक्किम के पहाड़ी इलाके शामिल हैं। गेहूँ अक्तूबर में बोया जाता है और मई–जून में कटाई की जाती है। फसल ठंड के नवंबर से मार्च महीनों में निष्क्रिय रहती है और अप्रैल में तापमान बढ़ने के साथ बढ़ती है।

समय से बुवाई को अपनाने से औसत गेहूँ उपज और लाभप्रदता में उच्चतम वृद्धि की संभावना है। गेहूँ की बिजाई में विलंब से गेंहूँ के मौसम चक्र में कमी आती है, जिससे उपज क्षमता कम हो जाती है। गेहूँ की बुवाई का समय, तापमान, खेती का प्रकार यानि शुष्क या सिंचित, गेहूँ किस्मों की अवधि पर निर्भर करता है। आमतौर पर वर्षा की फसल को 15 से 30 अक्तूबर तक बोया जाता है और सिंचित फसल को 1 से 15 नवंबर तक बोया जाता है।

गेहूँ की पाँच विधियों से बुआई की जाती है

1. **छिटकाव विधि**–इस विधि में बीजों का छिटकाव किया जाता है और फिर उन्हें ढँकने के लिए हैरो का उपयोग किया जाता है। हालाँकि, बीज को समान रूप से खेत में वितरित नहीं किया जाता है। बुआई की यह विधि बहुत प्रचलित है और इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। इस विधि में बीजों का अंकुरण अपेक्षाकृत कम होता है और पौधे की स्थिरता अनियमित होती है। बीज का अपव्यय भी होता है क्योंकि अधिकांश बीज सतह पर छोड़ दिए जाते हैं जो अंकुरित नहीं हो पाते हैं और पक्षियों द्वारा उठाए और खाएं भी जा सकते हैं।

2. **स्थानीय हल बिजाई विधि**–अधिकांश किसान इस पद्धति का उपयोग करते हैं। इस विधि में स्थानीय हल के साथ खोले गए फरो में हाथ से बिजाई शामिल है। जब बीज को हाथ से गिराया जाता है, तो इसे केरा विधि कहा जाता है इस विधि में बीज 5–6 सेंटीमीटर की गहराई पर गिराए जाते हैं और अंकुरण संतोषजनक होता है। इस विधि से बड़े पैमाने पर बिजाई करना संभव है।

3. **सीड ड्रिल विधि**–इस विधि में बीज को सीड ड्रिल या फर्टि–सीड ड्रिल द्वारा बोया जाता है। इसकी मदद से बीज की बुवाई गहराई से होती है और परिणाम में समान अंकुरण और नियमित स्थिरता होती है। सीड ड्रिल या फर्टि–सीड ड्रिल के इस्तेमाल हेतु सीड बेड को अच्छी तरह से समतल और खरपतवार मुक्त किया जाना चाहिए। बाजार में सीड ड्रिल आसानी से उपलब्ध हैं। ये बैल चालित या ट्रैक्टर चालित हो सकते हैं। उर्वरक–बीज ड्रिल का उपयोग जहाँ भी संभव हो, बुवाई की समान गहराई, उर्वरकों के उचित स्थान और अच्छे अंकुरण को सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए।

4. **डिबलिंग विधि**–इस विधि का उपयोग उस स्थिति में किया जाता है जहां बीज की आपूर्ति सीमित होती है। बुआई एक छोटे से कार्यान्वयन की मदद से की जाती है जिसे डिबलर के रूप में

जाना जाता है। यह एक लकड़ी या लोहे का फ्रेम होता है जिसमें खूंटे होते हैं। फ्रेम को खेत में दबाकर उठा लिया जाता है और फिर प्रत्येक छेद में एक या दो बीज हाथ से गिरा दिए जाते हैं। यह एक सामान्य तरीका नहीं है क्योंकि इसमें बहुत समय लगता है और मजदूर भी अधिक लगते है।

5. **जीरो टिलेज तकनीक**–इस नई विधि का उपयोग धान–गेहूँ फसल–प्रणाली में किया जाता है, इस मशीन का प्रयोग अगेती व पछेती गेहूँ की बिजाई के लिए किया जाता है। कई कारणों से बुआई में देरी होती है जैसे खेत की तैयारी, अनिश्चित वर्षा और धान की पारंपरिक विधि से कटाई हैं। इनमें से खेत की तैयारी सबसे महत्वपूर्ण कारणों में से एक है, जो गेहूँ की बुआई में देरी का कारण बनता है। धान की फसल की कटाई के बाद, खेत में जुताई और गेहूँ की बुआई के लिए कम से कम 6–8 जुताई कार्यों की आवश्यकता होती है, जिसमें आमतौर पर उचित खेत की तैयारी के लिए 10–15 दिनों की आवश्यकता होती है।

निम्नलिखित तैयारियों के साथ शून्य–जुताई को अपनाया जा सकता है।

- बुआई के समय खेत में उचित नमी होनी चाहिए।
- धान की कटाई भूमि के पास से की जानी चाहिए और ठूंठ या डंठल 15 सेमी से अधिक नहीं होना चाहिए साथ ही खेत खरपतवारों से मुक्त होना चाहिए।
- बीज को 2.5 ग्राम/किलोग्राम गेहूँ बीज की दर से वीटावैक्स या बाविस्टिन से उपचारित करना चाहिए। बीज दर 100 कि.ग्रा./हैक्टर होनी चाहिए।
- बुआई की गहराई लगभग 5–6 सें.मीं. बनाए रखनी चाहिए।

किसानो को जलवायु एवं बिजाई के समय अनुसार तथा सिचांई उपलब्धता के आधार पर प्रजातियों का चयन करना चाहिए। तालिका–1 में विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के अनुसार समय तथा देरी से बुआई हेतु नवीन प्रजातियाँ दर्शाई गयी हैं। इन प्रजातियों का चयन करके किसान अधिक लाभ कमा सकते हैं।

तालिकाः क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदित उन्नत किस्में।

उत्पादन स्थिति	उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	मध्य क्षेत्र	प्रायद्वीपीय क्षेत्र
सिंचित, समय से बुआई	वी एल गेहूँ 907 एच एस 507 (पूसा सुकेती), एच पी डब्ल्यू 349	डब्ल्यू बी 02, पी बी डब्ल्यू 723, एच पी बी डब्ल्यू 01, एच डी 3086, एच डी 2967 डी बी डब्ल्यू 88, डब्ल्य एच 1105	डब्ल्यू एच डी 2967, डी बी डब्ल्यू 187, एच डी 2985, एन डब्ल्यू 5054 (नरेंद्र गेहूँ–1) के 1006 (नई शेखर), राज 4120, डी बी डब्ल्यू 39	एच आई 8759 (डी), एच डी 4728 (पूसा मालवी) (डी), एच आई 8737 (पूसा अनमोल) (डी), डी बी 110, एम पी ओ 1215, एच डी 4728 (पूसा मालवी), पूसा तेजस (एच आई 8759)	डी बी डब्ल्यू 168, एम ए सी एस 349 (डी), डब्ल्यू एच डी 948 (डी), एम ए सी एस 6478, एम ए सी एस 2971, यू ए एस 415, ए के ए डब्ल्यू 4627, एम ए सी एस 6222, यू ए एस 428, यू ए एस 304, डब्ल्यू एच डी 948, एम ए सी एस 6478, एम ए सी एस 3949

विलंब से सिंचित बुआई	–	डी बी डब्ल्यू 173, डी बी डब्ल्यू 90, डब्ल्यू एच डब्ल्यू एच 1124, पी बी डब्ल्यू 590, डी बी डब्लयू 71, एच डी 3059 (पूसा पछेती), डी बी डब्ल्यू 90, डब्ल्यू एच 1124	एच डी 3118 (पूसा वत्सला), डी बी डब्ल्यू 107, एच डी 2985 (पूसा बसंत), एच आई 1563 (पूसा प्राची), एच डी 3118, डी बी डब्ल्यू 107	राज 4238, एम पी 1203, एम पी 3336 (जे डब्ल्यू 3336), ऐच आई 8713 (पूसा मंगल), एच आई 8737 (पूसा अनमोल), राज 4238	एच डी 3090 (पूसा अमूल्य)
वर्षा आधारित समय से बुआई	टी एल 2969	पी बी डब्ल्यू 660	के 1317, एच डी 3171	एम पी (जे डब्ल्यू) 3173, एम पी 3288 (जे डब्ल्यू 3288)	यू ए एस 375, एम ए सी एस 4028 (डी), ऐच आई 8777 (डी), यूएएस 34 7, यूएएस 446 (डी), पी बी डब्ल्यू 596, एच डी 2987, (पूसा बहार), एन आई ए डब्ल्यू 1415 (नेत्रावती)
सीमित सिंचाई, समय से बुआई	–	डब्ल्यू एच 1142	–	डी बी डब्ल्यू 110	एच आई 1605, डी बी डब्ल्यू 93, एच आई 1605 (पूसा उजाला)

जैव प्रौद्योगिकी द्वारा कृषि में उन्नति

रिंकी, अंकिता पाण्डेय, राकेश, योगेश कुमार एवं माम्रुथा एच.एम.
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

पिछले कुछ दशकों में विकसित होने वाली प्रौद्योगिकीयों ने मानव सभ्यता के विकास एवं आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऐसे तो प्रौद्योगिकियों का उपयोग जीवन के हर क्षेत्र में आने वाली कठिनाईयों को सरल बना रहा है किन्तु कृषि के क्षेत्र में तो इन प्रौद्योगिकियों ने क्रान्ति ही ला दी है। इन सबमें जैव प्रौद्योगिकी ने आधुनिक समय में सबसे उन्नत तकनीक के रूप में पहचान बना रही है क्योंकि इसका प्रयोग मुख्यतः पौधे की किस्मों के आनुवंशिक सुधार तथा उपज को बढ़ाने हेतु किया जा रहा है। जैव प्रौद्योगिकी की कुछ तकनीकों जैसे जेनेटिक इंजीनीयरिंग, उत्तक संवर्धन (टिशू कल्चर), भ्रूण स्थानांतरण, लिंग परिवर्तन इत्यादि ने कृषि एवं पशुपालन के क्षेत्र में अविश्वसनीय परिवर्तनों का प्रर्दशन किया हैं।

जैव प्रौद्योगिकी उत्पादकता को बढ़ा कर किसानों की आय वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। हरित क्रान्ति के समय कृषि उत्पादन की स्थिति बहुत दयनीय थी किन्तु समय के साथ हुई वैज्ञानिक तकनीकों की प्रगति ने उस स्थिति को सुधार कर हमें आज विकसित देशों के साथ ला कर खड़ा कर दिया है। आज हम न केवल अपने लिए पर्याप्त उत्पादन करने में सक्षम हुए हैं, अपितु अन्य देशों को निर्यात भी करते हैं। जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से हमने विभिन्न फसलों (जैसे कपास, मक्का, गेहूँ, धान, इत्यादि) के हाईब्रिड विकसित किए हैं, जो कि पिछले पैदावार से किसानों द्वारा उगाई जा रही उत्पादन किस्मों से कई गुणा श्रेष्ठ है। कीट प्रतिरोधी, विषाणु प्रतिरोधी फसलों की प्रजातियों का विकसित होना जैव प्रौद्योगिकी की ही देन है। इस लेख में हम कृषि एवं कृषि विज्ञान में जैव प्रौद्योगिकी के योगदान की परिचर्चा करेंगे (चित्र:1)

1. उत्तक संवर्धन (टिशू कल्चर)

किसी जीवित प्राणी/पौधे की कोशिकाओं एवं उत्तकों को कृत्रिम माध्यम (अगार, ब्रौथ, एम.एस.) इत्यादि का प्रयोग करके नवजीवन का निर्माण उर्त्तक संर्वधन कहलाता है। उत्तक संवर्धन द्वारा हम छोटे से उत्तक या कोशिका को नए पौधे में परिवर्तित कर सकते है। इस विधि द्वारा अच्छी गुणवत्ता वाले फूल, फल के पौधों की सटीक प्रजातियों का उत्पादन किया जा सकता है। बीज के अभाव की स्थिति में भी उत्पादन को बढ़ाने का यह एक अच्छा तरीका है।

विषाणु तथा अन्य संक्रमणों से ग्रसित पौधों का भी उत्तक संर्वधन के माध्यम से ''साफ स्टाक'' बना कर कृषि विशेषतः बागवानी के क्षेत्र में गुणवत्ता एवं उत्पादन दोनों को बढ़ाया जा रहा है।

2. आनुवंशिक रूपांतरण

इस विधि द्वारा किसी भी जीव की आनुवंशिक संरचना में फेर–बदल करके वांछित गुणों वाली संतती प्राप्त की जा सकती है। यह कई प्रकार की तकनीकों का समावेश है जिसके प्रयोग द्वारा न केवल एक ही प्रजाति के जीवों की अपितु किसी भिन्न प्रजाति के जीवों की डी एन ए संरचना में हस्तक्षेप करके उनके गुणों को सुधारा जा सकता है। बनाए

(चित्र 1)

गए नए डी एन ए के आवश्यकतानुसार जानोम के किसी भी विशिष्ट भाग में लक्षित किया जा सकता है। जिसके कारण यह एक अत्यंत उपयोगी तकनीक साबित हो रही है। हालांकि यह विधि केवल कृषि क्षेत्र में ही उपयोगी नहीं है। अनुसंधान, औद्योगिक क्षेत्र तथा दवाईयों के क्षेत्र में भी इस तकनीक ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किए है। इस विधि द्वारा बनाए गए आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों को जी एम ओ कहा जाता है। आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा विकसित किए गए जी एम ओ पोषण मूल्य में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि, रोग प्रतिरोधकता इत्यादि के गुणों को समाहित करके अन्ततः कृषि उत्पादन को बढ़ा रहे हैं।

3. पशु जैव प्रौधोगिकी

कृषि जैव–प्रौद्योगिकी के साथ पशुपालन का विकास भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से जीवों को संशोधित कर लक्षित उत्पादन बनाना, जीवों को बेहतर बनाना तथा विशिष्ट कृषि उपयोगों के लिए सूक्ष्मजीवों का विकास इत्यादि पशुपालन के स्तर को बढ़ा रहे है। पशु जैव प्रौद्योगिकी के उदाहरणों में ट्रांसजनिक जीवों का निर्माण, विशिष्ट जीनों को निष्किय करना, सेल क्लोनिंग इत्यादि सम्मिलित है। इस तकनीक द्वारा मानव ने मुर्गीपालन, सुअर पालन, बकरी पालन इत्यादि में (दूध की मात्रा को बढ़ाना, मांसपेशियों के विकास इत्यादि) अच्छी बढ़त हासिल की है, जो कि इस तकनीक का एक सराहनीय योगदान है। (चित्र 2) प्रत्येक तकनीक/आविष्कार के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलू होते है। उसका अच्छा या बुरा होना उसके उपयोग पर निर्भर करता है। जैव प्रौद्योगिकी ने जीवन (जैव) को सीधा तकनीक से जोड़ कर उससे होने वाले प्रभावों को भी अधिक प्रभावशाली बना दिया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी एक ऐसी अनोखी दुनिया है जिसको पूर्ण रूप से समझना मानव के लिए बहुत कठिन कार्य है। प्रौद्योगिकी का विकास एवं इस्तेमाल एक सीमा तक ही उचित है क्योंकि इन सब वैज्ञानिक तरीकों का अंधाधुंध उपयोग पूरे विश्व के लिए खतरा बन सकता है।

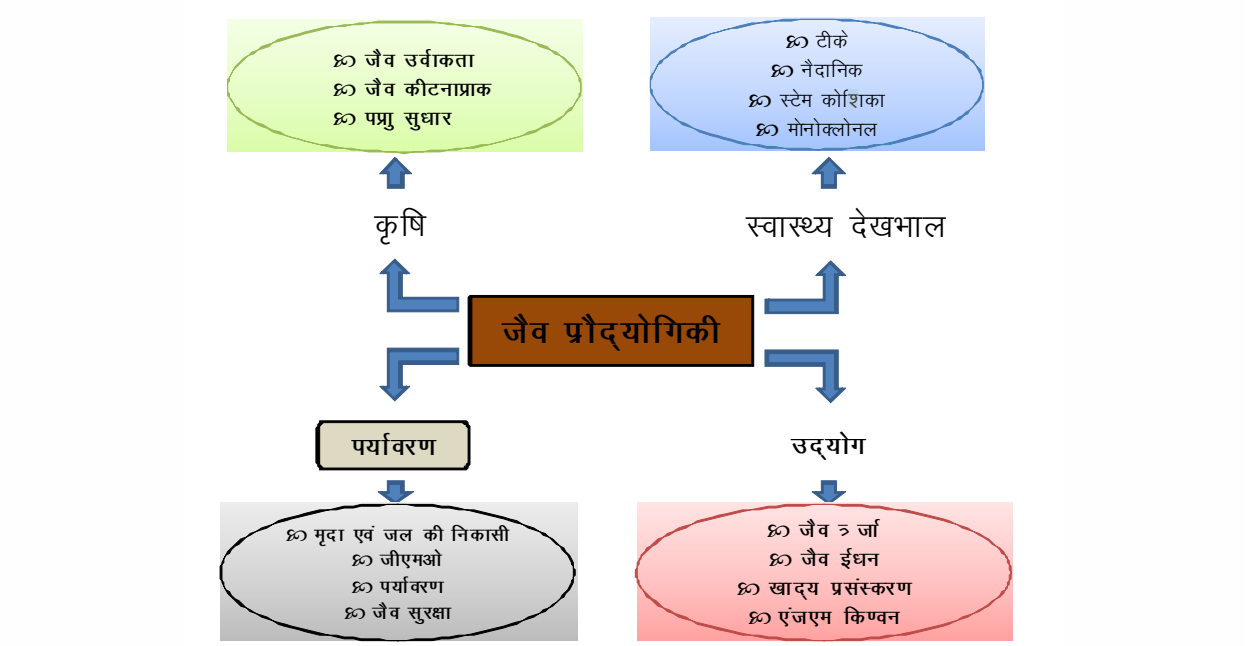

(चित्र 2)

गेहूँ का बीज उत्पादनः आय वृद्धि के लिए एक उपयोगी व्यवसाय

विजय राणा, रवि शर्मा, आशिमा एवं शुभांशु अनुभव
धान एवं गेहूँ अनुसन्धान केन्द्र, मलां, हिमाचल प्रदेश

अच्छी गुणवत्ता का बीज आधुनिक खेती तकनीकी को किसानों तक पहुँचाने का सफल व आसान तरीका है। खेती की निरंतर बढ़ती हुई वैज्ञानिक प्रगति से किसानों को तभी लाभ प्राप्त हो सकता है, जब उन्हें नई–नई उन्नत किस्मों के शुद्ध व अच्छी गुणवत्ता वाले बीज प्रर्याप्त मात्रा में सरलता से प्राप्त हो। इसके

लिए यह आवश्यक है कि किसानों को बीज का महत्व मालूम हो। क्योंकि किसान भाई यदि बुआई में उन्नत बीज का उपयोग करते हैं और साथ ही उचित समय पर उर्वरक, खाद, पानी व अन्य संसाधनों का इस्तेमाल करते हैं तो बीजोत्पादन निश्चित रूप से 15–20 प्रतिशत अधिक होता है। दूसरे शब्दों में गुणवत्ता बीज किसी भी फसल के उत्पादन का आधार है। खेती से सम्बन्धित तकनीकी/तकनीकों का उचित लाभ तभी संभव है जब बीजाई में अच्छी गुणवत्ता के बीजों का इस्तेमाल किया जाए। एक अनुमान के अनुसार केवल अच्छी गुणवत्ता के बीज के इस्तेमाल से उत्पादकता को 15–25 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता हैं।

उन्नत बीज उत्पादन उच्च गुणवत्ता वाले बीजों को पैदा करने को ऐसी विधि है, जिसमें उत्पादन, संसाधन, भण्डारण, वितरण आदि के दौरान बीज गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले सभी कारकों पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण रखा जाता है। देश में हरित क्रांति जैसे कीर्तिमान की स्थापना उन्नत किस्मों के विकास और बीज की बड़े स्तर पर उपलब्धता से ही संभव हो सकी है।

भारत में राष्ट्रीय खेती–बाड़ी अनुसंधान प्रणाली, फसलों की अच्छी किस्मों के विकास एवं उचित तकनीकी के विकास के लिए जिम्मेदार है। इस प्रणाली में नई किस्मों को किसानों तक पहुँचाने से पहले परीक्षण के एक लम्बे दौर से और फिर विमोचन और पंजीकरण/विज्ञापन आदि अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। समय के साथ नई बिमारियों और कीटों की नई प्रजातियाँ पैदा होने से कई बार नई किस्मों के उत्पादन में लगाये गए प्रयासों, परिणामों का लाभ उठाने के लिए किसी फसल की उन्नत किस्मों के गुणवत्ता बीज का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना बहुत आवश्यक है।

वर्तमान समय में किसानों का गुणवत्ता बीज के महत्व के प्रति जागरूक होना बहुत आवश्यक है। समय के साथ–साथ कम भूमि, मजदूरों की कमी, कृषि योग्य भूमि का गैर कृषि उद्योगों के लिए और फसल विविधीकरण आदि की वजह से यह आवश्यक हो गया है कि कम से कम भूमि से अधिक से अधिक उत्पादन लिया जाए। इसके लिए पढ़े लिखे जागरूक किसान भाईयों की आवश्यकता है, जो फसल उत्पादन तथा बीजोत्पादन को एक व्यवसाय की तरह लें। उन्नत और शुद्ध बीज का अर्थ भौतिक तथा आनुवंशिक शुद्धता है, जिसके कारण उस बीज से पैदा हुए सारे पौधे एक रूप, गुणों मे एक जैसे और एक जैसी पकने की अवधि वाले होते हैं। उत्कृष्ट गुणवत्ता वाले बीज में अंकुरण एवं पौधों की बढ़वार क्षमता साधारण बीज की अपेक्षा अधिक होती है।

आमतौर पर बीज उत्पादन दो प्रकार से किया जाता है;

1. परम्परागत बीज उत्पादनः इस प्रकार के बीज उत्पादन में कृषक सामान्य फसल का ही बीज उपयोग में लाते हैं। जिसके कारण उत्पादन कम प्राप्त होता है, साथ ही बीज की गुणवत्ता भी उत्तम किस्म की नहीं होती है।

2. वैज्ञानिक बीज उत्पादनः इस विधि में बीज उत्पादन योजनाबद्ध तरीके से निम्न चरणों में किया जाता है

1. वैज्ञानिक बीज उत्पादन में आनुवंशिक एवं भौतिक रूप से शुद्ध प्रमाणित एवं आधार बीज का उपयोग होता है।
2. उन्नत कृषि तकनीक पर आधारित विधियों को अपनाया जाता है।
3. बीजोत्पादन प्रक्रिया में पृथक्करण दूरी (आइसोलेशन डिस्टेन्स) का ध्यान रखा जाता है।
4. सम्बन्धित किस्म के गुण समान न पाये जाने पर अवांछित पौधों को निकाल दिया जाता है।
5. खरपतवारों व अन्य फसल के पौधों को समय–समय पर बीज फसल से निकाल दिया जाता है।
6. रोगग्रस्त पौधों को भी अनिवार्य रूप से निकाला जाता है, जिससे अन्य पौधे रोगग्रस्त न हो सकें।
7. समय पर फसल कटाई, सुखाना, गहाई, सफाई आदि से एवं यांत्रिक क्षति और मिश्रण से सुरक्षित रखा जाता है।
8. भण्डारण के दौरान कीड़ों के नुकसान, बीज जनित रोग संक्रमण को रोकने तथा भूमि संबधित रोगों, जो प्रौढ़ अवस्था में होने वाले रोगों की रोकथाम हेतु रसायनिक बीज उपचार करके दूर किये जाते हैं।
9. भौतिक एवं आनुवंशिक शुद्धता की जाँच के लिए बीज

परीक्षण किए जाते हैं जिसके अंतर्गत अंकुरण तथा आर्द्रता का परीक्षण किया जाता है।

10. संसोधित बीज को उपयुक्त थैलों में भरा जाता है व प्रमाण पत्र संलग्न कर थैली या बोरी को सील किया जाता है।

11. उचित भण्डारण हेतु न्यून तापमान व आर्द्रता की परिस्थितियों में भण्डारण किया जाता है, जिससे रोगों व कीटों से बीज सुरक्षित रहता है।

इस प्रकार उपयुक्त तरीके से बीजोत्पादन करने से बीज पूर्ण रूप से स्वस्थ व उत्तम किस्म का होता है और ऐसा करने से अगले 3–4 वर्षों तक किसानों को बीज बदलने के झंझट से मुक्ति मिलती है।

बीज की श्रेणी: बीज को स्त्रोत के आधार पर तीन श्रेणियों मे रखा गया हैं।

1. प्रजनक बीज (ब्रीडर सीड)

2. आधार बीज (फाउण्डेशन सीड)

3. प्रमाणित बीज (सर्टिफाइड सीड)

1. प्रजनक बीज (ब्रीडर सीड): प्रजनक बीज एक बीज श्रृंखला आरम्भिक स्त्रोत होता है जिसे प्रायः उस किस्म में प्रजनक द्वारा पैदा किया जाता है जब एक किस्म आधिकारिक रूप से रिलीज़ होती है, तो उस किस्म के प्रजनक/संस्थान (कृषि विश्वविद्यालय अथवा कम्पनी) द्वारा थोड़ी मात्रा मे शुद्ध बीज पैदा किया जाता है, जिसे प्रजनक बीज कहते है। किस्म की शुद्धता की बरकरारी और आधार व प्रमाणित बीज पैदा करने के लिए तथा प्रजनक बीज की लगातार आपूर्ति की जिम्मेदारी उस किस्म के प्रजनक संस्थान की होती है।

2. आधार बीज (फाउण्डेशन सीड): प्रजनक बीज की सन्तति को आधार बीज कहा जाता है किसी जिले या प्रदेश की प्रमाणित बीज की माँग को पूरा करने के लिए प्रजनक बीज को कृषि विभाग या गैर सरकारी संस्थानों द्वारा आगे बढ़ाया जाता हैं।

3. प्रमाणित बीज (सर्टिफाइड सीड): तकनीकी तौर पर आधार बीज की सन्तति को प्रमाणित बीज कहा जाता है। बड़ी मात्रा में बढ़ाकर विभिन्न बीज उत्पादन संस्थाओं व ईकाईयों द्वारा प्रमाणित बीज किसानों तक पहुँचाया जाता है। हालांकि गेहूँ में बीज और अनाज के फसल उत्पादन मे लगभग एक जैसी प्रक्रियाएँ प्रयोग होती हैं लेकिन योजना क्रम अलग होता है। वैज्ञानिक पद्धति में बीज की फसल को योजनावद्ध तरीके से उगाया जाता है। फसल की अच्छी सस्य–क्रियाओं के अतिरिक्त बीज उत्पादन कुछ अहम् पहलुओं में सामान्य फसल उत्पादन से भिन्न होता है। गेहूँ के शुद्ध बीजोत्पादन के लिए उपयुक्त वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव गेहूँ की फसल की प्रत्येक अवस्था को प्रभावित करता है बीज के अंकुरण से लेकर फसल के पकने की अवस्था तक वातावरण का प्रभाव रहता है।

यदि गेहूँ की फसल के पकने की अवस्था के समय वर्षा हो जाये तो उसका सीधा प्रभाव बीज की गुणवत्ता पर पड़ता है। इसलिये वातावरण प्रत्येक अवस्था मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

किसान भाई निम्न तकनीक का उपयोगकर स्वयं गेहूँ का बीजोत्पादन करके लाभ उठा सकते हैं।

प्रजनक बीज उत्पादन तकनीक: यह बीज एक योग्य पादप प्रजनक के सीधे पर्यवेक्षण के अंतर्गत अलगाव में उगाया जाता है। प्रजनक बीज उत्पादन अत्यधिक विशेष प्रक्रिया है और कुछ सावधानियों और विशेष क्रियाओं का अपनाया जाना बहुत आवश्यक है। यद्यपि प्रजनक बीज भारतीय बीज अधिनियम (1966) के पूर्वावलोकन में नहीं आता है, तो भी पादप प्रजनक को नाभिक और प्रजनक बीज उत्पादन के लिए अधिक सख्त न्यूनतम बीज प्रमाणन मानकों का पालन करना पड़ता है, जो भारतीय बीज प्रमाणन बोर्ड ने आधार बीज और प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए तय किए है। (आकृति – 1)

प्रथम वर्ष (सिट्टों का संग्रह)

1. डिबलिंग विधि का उपयोग करते हुए मूल स्टॉक/स्त्रोत से बीज को उगाएं।
2. 300–500 (संख्या) सही गुणों को दिखाते हुए सिट्टों का चुनाव करें (प्रजनक बीज की माँग के अनुसार)

द्वितीय वर्ष (नाभिकिय बीज चरण–1)

1. डिबलिंग विधि का उपयोग करते हुए हर सिट्टों की संतति को अलग–अलग लाईनों में उगाकर आगे बढ़ाएं।
2. फसल के विभिन्न विकास चरणों में महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ लें।
3. परिवर्तन दिखाने वाली संततियों को अस्वीकार करें।
4. कटी हुई संततियों का उचित रिकार्ड रखें।
5. अलग–अलग संततियों का बीज अलग से इकट्ठा कर लें।

तृतीय वर्ष (नाभिक बीज चरण–2)

1. नाभिक बीज चरण–1 फसल के प्लॉट को अलग से उगाएं।
2. प्रत्येक भूखंड को विभिन्न विकास चरणों में किसी भी प्रकार के विचलन के लिए गंभीर रूप से देखें।
3. भिन्नता दिखाने वाले भूखंडों को त्याग दें।
4. दाने के गुणों के आधार पर भूखंडों को अस्वीकार करें।
5. उपरोक्त बचाये गए सही भूखंडों के बीज को स्टॉक या नाभिकीय बीज के रूप में बनाकर संग्रहण करें।

चौथा वर्ष (प्रजनक बीज)

1. बीज ड्रिल की सहायता से एक दिशा में प्रजनक बीज भूखंड उगाएं।
2. हर आठवीं पंक्ति के बाद एक पंक्ति छोड़ दें।
3. अलग प्रकार के पौधों को हटाने के लिए रोगिंग के नियमों का पालन करें।
4. किसी भी यांत्रिक मिश्रण से बचने के लिए अत्यंत

तालिका 1. प्रक्षेत्र मानक के लिए न्यूनतम प्रमाणीकरण आवश्यकताएँ

प्रक्षेत्र चयन	प्रक्षेत्र मानक					विशिष्ट आवश्यकताएँ				सीमाएं	
	प्रक्षेत्र का निरीक्षण	पृथक्करण दूरी (मी॰)				दूसरी किस्म के पौधे (आवंछित पौधे)		अविभाज्य अन्य फसल के पौधे		बीज द्वारा पैदा होने वाले बिमारियों वाले पौधे	
		फसल		रोग							
		आ॰	प्र॰	आ॰	प्र॰	आ॰	प्र॰	आ॰	प्र॰	आ॰	प्र॰
स्वयं सेवक पौधों से मुक्त	दो	3	3	150	150	0.05	0.2	0.01	0.05	0.1	0.5

तालिका: 2. बीज मानक के लिए न्यूनतम प्रमाणीकरण आवश्यकताएं

कारक	मानक	
	आधाार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98 प्रतिशत	98 प्रतिशत
जड़ सामग्री (न्यूनतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसल के बीज (अधिकतम)	10/कि.ग्रा.	20/ कि.ग्रा.
अन्य अलग–अलग किस्मों के बीज (अधिकतम)	10/कि.ग्रा.	20/कि.ग्रा.
कुल घास का बीज (अधिकतम)	10/कि.ग्रा.	20/कि.ग्रा.
आपत्तिजनक घास की बीज (अधिकतम)	2/कि.ग्रा.	5/कि.ग्रा.
अंकुरण (न्यूनतम)	85 प्रतिशत	85 प्रतिशत
नमी (अधिकतम)	12 प्रतिशत	12 प्रतिशत
भाप–प्रू फ कंटेनरों के लिए (अधिकतम)	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत

सावधानी से बीज के भूखंडों की गहाई करें।

5. प्रत्येक का उचित रिकार्ड अलग से रखें।

1. खेत का चयन: बीजोत्पादन हेतु निम्न विशेषताओं वाली भूमि का चयन फसल के अनुसार करना चाहिए।

अ. उच्च उर्वरा क्षमता

ब. रोग व कीड़े–मकोड़ों से रहित

स. समतल व उपयुक्त जल निकास प्रबंधन

द. फसल/किस्म के अनुसार पिछले वर्ष फसल की किस्म या फिर फसल बदलकर बुआई करना चाहिए।

2. पृथक्करण दूरी: बीजोत्पादन हेतु एक किस्म से दूसरी किस्म के बीज की दूरी निश्चित की गई है, जिससे एक किस्म क फूल परागकण दूसरी किस्म के गुणवत्ता व गुण, मानक स्तर को प्रमाणित न कर सकें। गेहूँ की अलग–अलग बीज श्रेणियों यानी प्रजनक बीज, आधार बीज और प्रमाणित बीज के लिए गुणवत्ता के मानक अलग–अलग हैं। बीजोत्पादन के लिए एक किस्म को दूसरी किस्म के बीज की मानक दूरी 3 मीटर तक निर्धारित की गई है, यानि बीज की फसल वाले खेत को चारों तरफ से दूसरी किसी फसल की 3 मीटर चौड़ी पट्टी से पृथक करना काफी रहता है या चारों तरफ 3 मीटर की दूरी तक कुछ भी न बोया जाए। प्रक्षेत्र मानक के लिए न्यूनतम प्रमाणीकरण आवश्यकताएं तालिका 1 में दी गई हैं।

अगर आसपास के खेतों में खुली कंगियारी का प्रकोप 0.1 प्रतिशत (आधार बीज/फाउण्डेशन के लिए) और 0.5 प्रतिशत (प्रमाणित सर्टिफाइड बीज) से अधिक हों तो भारतीय बीज प्रमाणित मानक के अनुसार 150 मीटर की पृथक्करण दूरी आवश्यक होती है, यही पृथक्करण दूरी परंपरागत फसलों में 100 मीटर से 1000 मीटर तक रखी जाती है।

बीजोत्पादन प्रक्रिया में गेहूँ की प्रत्येक किस्म की पहचान हेतु अलग–अलग विशेष गुण होते हैं, जिसके आधार पर वह किस्म पहचानी जाती है। प्रत्येक किस्म मे कुछ न कुछ अपनी विशेषताएँ होती है, जिसके कारण उन्हें बीजोत्पादन हेतु अनुशंसित किया जाता है।

3. प्रमुख कृषि क्रियाएँ: (खेत की तैयारी): खेत की तैयारी अच्छी होने से बीज का अकुंरण अच्छा होता है एवं खरपतवारों की रोकथाम करने मे सहायता मिलती है।

4. रोगिंग (अवांछित पौधों को निकालना): खरपतवारों वाले पौधे व उन्नत किस्म के मानक गुणों से भिन्न पौधों को निकाल देना चाहिए। रोगिंग फसल की तीन अवस्थाओं में की जाती है, जिसमें अवाँछित पौधों को निकालना आसान होता हैं।

1. बालियाँ आने से पहले लंबाई के आधार पर ऊँचे–नीचे पौधों की पहचान अच्छी तरह से हो जाती हैं।
2. बालियाँ आने पर और सारी बालियाँ निकल आने के समय और फसल के रंग बदलने से पहले।
3. बालियों के रंग बदलने के बाद और पकना शुरू होने पर (बालियों का रंग देखकर) अवांछनीय पौधों को आसानी से निकाला जा सकता हैं।

बीजोत्पादन एवं बीज की गुणवत्ता को प्रभावित करने में भूमि की बनावट, सरंचना, नमी, भूमि की दशा, तापमान, आर्द्रता, वर्षा, रोगों व कीड़ों का प्रकोप आदि कारक मुख्य रूप से प्रभाव डालते हैं।

शुद्ध व अच्छे बीज के लक्षण

1. बीज की भौतिक शुद्धता: किसी भी फसल/किस्म के बीजों में दूसरी फसल या खरपतवार के बीजों का मिश्रण नहीं होना चाहिए।

2. बीजों की अंकुरण क्षमता: किसी भी फसल के बीज का मूल्यांकन उसकी अंकुरण क्षमता पर निर्भर करता है। इसी आधार पर बीज की मात्रा निर्धारित की जाती है। इसलिए निर्धारित मानकों की अंकुरण क्षमता वाले बीज का उपयोग करना चाहिए।

3. बीज की जीवन क्षमता: सामान्यतः एक परिपक्व बीज चमकीला, साफ व पुष्ट होता है और अपरिपक्व बीज सिकुड़े, छोटे व बदरंग होते है। बीज का भ्रूण चोटग्रस्त नहीं

होना चाहिए। कीड़ों द्वारा नुकसान पहुँचाने एवं अधिक नमी तथा ताप पर भण्डारण करने आदि दोषों से बीजों की जीवन क्षमता समाप्त हो जाती है।

1. बीज का आकार सुड़ौलता व आकृति में समानता: बीज एक समान आकार, आकृति व रंग के होने चाहिए। बड़े आकार व स्वस्थ बीजों से प्रायः स्वस्थ तथा मजबूत पौधे होते हैं, जो बीज छोटे व सिकुड़े होते हैं, उनमें संचित खाद्य पदार्थ की मात्रा कम होने से उनसे कमजोर पौधे विकसित होते हैं।

बीज मानक के लिए न्यूनतम प्रमाणीकरण आवश्यकताएँ तालिका 2 में दी गई हैं।

आय में वृद्वि

आर्थिक दृष्टि से गेहूँ एक स्वपरागित, हाई वाल्यूम, लो प्रोफिट (यानि अधिक मात्रा एवं कम लाभ वाली फसल) होने के कारण अधिकतर पब्लिक या प्राईवेट संस्थान इसके बीज उत्पादन में अधिक रूचि नहीं दिखाते हैं। इसलिए बीजोत्पादन के विभिन्न पहलुओं की सही तकनीकी जानकारी का प्रशिक्षण लेकर कृषि विभाग से सहयोग व अनुदान लेकर किसान भाई उत्तम गुणवत्ता वाले बीज पैदा करने में पहल दिखा सकते हैं। अकसर अधिसूचित किस्मों का शुद्ध बीज बाजार में मिलने वाले बीज से महंगा होने के कारण कई किसान भाई उसके लाभ से वंचित रह जाते हैं। ऐसे किसान भाई तकनीकी प्रक्रिया का पालन कर अपने खेत में ही गुणवत्ता का बीजोत्पादन कर स्वावलंबी बन सकते हैं और रोजगार के नये आयाम खोल सकते हैं, परम्परागत विधि से बीज पैदा करने वाले किसान अगर ऊपर दिये गए तकनीकी पहलुओं पर गौर करें, तो उत्पादन के प्रत्येक चरण मे सावधानीपूर्वक सही तकनीकी अपना कर अपने ही खेतों में बीजोत्पादन करके अपनी क्षेत्र की गुणवत्ता बीज की मांग को पूरा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए प्रमाणित बीज के प्रति किलोग्राम के लिए लगभग 40–45 रूपये मिलते हैं, जबकि वर्ष 2017–18 मे सरकार द्वारा गेहूँ की अनाज फसल के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य 1840 रूपये प्रति कुंतल था।

इन सब बातों से यह प्रतीक होता है कि अगर एक ही फसल (गेहूँ) को दो अलग–अलग कारणों के लिए उगाया जाए तो उनकी कीमतों में महत्वपूर्ण अंतर होता है।

अब तक किसान भाई यह समझ चुके होंगे कि वैज्ञानिक बीज उत्पादन एक तकनीकी कार्य है, जिसके द्वारा गुणवत्ता वाले बीज का उत्पादन आसानी से किया जाता है। उचित समय पर खाद, पानी तथा अन्य सस्य क्रियाओं का प्रयोग करके बीजोत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

उच्च एवं मध्यम स्तर पर खेती करने वाले किसान भाई आधार बीज व प्रमाणित बीजोत्पादन के लिए कृषि विभाग द्वारा अपना पंजीकरण करवाकर अपने क्षेत्र की माँग को पूरा करने में अपना सहयोग दे सकते हैं। इससे नई उन्नत किस्मों को बढ़ावा मिलने से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है।

समृद्ध भारत की आधारशिला किसान

ऋषिपाल गंगवार, स्नेहांशु सिंह, सुरेश कुमार एवं संजय कुमार सिंह
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ और जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत को कभीं 'सोने की चिड़ियाँ' कहा जाता था, यहाँ के सभी लोग आर्थिक रूप से बहुत संपन्न और प्रगतिशील हुआ करते थे। उस समय पूरे विश्व की कुल जीडीपी में भारत का योगदान 25 प्रतिशत था और यहाँ के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। लेकिन सन 1700 के बाद औद्योगिक क्रान्ति और ब्रिटिश शासन की नीतियों के परिणामस्वरूप भारत देश की सम्पन्नता धीरे–धीरे कम होती रही और सन 1947 में आज़ादी के समय ये सिमट कर पूरे विश्व की जीडीपी के 2 प्रतिशत पर आ गयी। आज़ादी के पश्चात् देश की नीतियों

ने न तो उपयुक्त औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया न ही हमारे देश के आधार स्तंभ कृषि को, जिसके कारण पाश्चात्य जगत में भारत को 'सपेरों का देश' कहा जाने लगा। कृषि का विचार आते ही हमारे दिमाग में उस किसान की झलक आती है जो गरीब, असहाय, कमजोर, साधन विहीन और ज्ञान विहीन है। जो परम्परागत और आधुनिक कृषि के बीच में इस प्रकार फंसा की उसे न ही परम्परागत खेती की जानकारी रही है और न ही आधुनिक खेती के साथ वो कंधे से कन्धा मिलाकर चल पा रहा है। अतः आज के दौर में किसान को समृद्ध और कृषि को प्रगतिशील बनाने के लिए ये आवश्यक है की कृषि को परम्परागत, आधुनिक, औद्योगिक और संचार क्रान्ति के साधनों के साथ–साथ सरकार की योजनाओं के प्रति जागरूक और उनसे लाभान्वित किया जाए जिससे भारत देश समृद्धि की ओर मजबूत कदम बढ़ा सके।

परम्परागत साधन : जब किसान परम्परागत साधनों से कृषि करता है, तो उसकी पैदावार भी जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त रहती है। इसके साथ–साथ उसकी कृषि की लागत काफी कम हो जाती है, जो कि कृषि से आय बढ़ाने और कृषि की उर्वरा शक्ति को बरकरार रखने का एक अच्छा साधन है। परम्परागत खेती के लिए निम्नलिखित परम्परागत विधियाँ प्रयोग में लायी जाती है

1. जैविक उर्वरक का अधिकाधिक प्रयोग।
2. जैविक कीटनाशकों का अधिकाधिक प्रयोग।
3. रसायनिक खाद का कम से कम प्रयोग।
4. रसायनिक कीटनाशकों का कम कम से प्रयोग।
5. एक खेत में विभिन्न फसलों की अदला–बदली।
6. जलवायु परिस्थियों के अनुकूल विभिन्न फसलो का चयन।

आधुनिक साधन : औद्योगिक क्रांति ने किसानो के कठिन परिश्रम को कम कर दिया और श्रम–बचत के लिए कृषि यंत्रों खेत और मशीनरी के निर्माण को प्रोत्साहित किया। जैसे टैक्टर, हैरो, ड्रील मशीन, कंबाईन, लेजर लैंड लेवलर आदि।

किसानों को समृद्ध बनाने हेतु उपाय

किसानों को समृद्ध बनाने के लिए उनके परंपरागत साधनों के साथ–साथ आधुनिक तकनीकों का प्रयोग आवश्यक है। विभिन्न आधुनिक मशीनों का प्रयोग खेत की तैयारी से लेकर कटाई और उसके उपरांत प्रसंस्करण के लिए किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ आधुनिक प्रौद्योकियों के उपयोग को समाहित किया जा सकता है जिसमें से कुछ निम्न–वर्णित हैं।

1. सिंचाई प्रौद्योगिकी

(क) ट्रीडल पम्पः यह एक पैर संचालित जल उठाने वाला उपकरण है, जो उन छोटे धारकों की भूमि के छोटे भूखंडों को सिंचाई कर सकता है जिसमें उच्च पानी की क्षमता है (25 फुट से अधिक नहीं)। एक टेडल पंप कम लागत वाली डिजाइन में सरल और आसानी से प्रबंधनीय प्रणाली है जो छोटे किसानों के लिए सिंचाई की जरूरत के लिए उपयुक्त है।

(ख) ड्रिप सिंचाई प्रौद्योगिकीः ड्रिप सिंचाई एक जल–बचत तकनीक है, यह फसल की पैदावार में वृद्धि के साथ–साथ खेती के क्षेत्र में भी फसल की उत्पादकता को अधिकतम करती है, और मिट्टी, पानी और उर्वरक संसाधनों

के संरक्षण के माध्यम से पर्यावरण को बचाती है।

कुछ सिंचाई प्रौद्योगिकी से सम्बंधित साधन भारत के पानी के दुर्लभ क्षेत्रों में किट के रूप में भारत सरकार द्वारा प्रोत्साहित किये जा रहें है जैसे ड्रम किट, बाल्टी किट, इत्यादि।

2. सही फसलों का चुनाव

सही फसल का चुनाव करके हम कृषि से ज्यादा लाभ कमा सकते है इसके लिए किसान अपने यहाँ की जमीन, मौसम, पानी की उपलब्धता और अपने आसपास के बाज़ार की मांग को देखकर अनाज वर्गीय फसलों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रकार की खेती को अपनाकर ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है

(क) फलों की खेती

1. बागवानी फसलों को अपनाकर कम क्षेत्र में ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है।
2. स्वस्थ फसल के लिए उच्च गुणवत्ता की पौध लगाकर ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है।
3. शीत भंडारण करके फलों को लम्बे समय तक ताज़ा रखा जा सकता है और ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है ।

(ख) सब्जियों की खेती

1. सब्जियों की खेती किसानों की आय बढ़ाने में एक प्रमुख भूमिका अदा कर सकती है।
2. पॉलीहाउस द्वारा बेमौसमी सब्जियों की खेती करके ज्यादा लाभ कमा सकते हैं।

(ग) फूलों की खेती

1. भारत में फूलों का उद्योग 2016 में 9000 करोड़ रूपये था। जिस तेजी से अपने देश के लोगों के रहन–सहन में बदलाव आ रहा है उसको देखते हुए आने वाले समय में अपने देश में इसके बहुत तेजी से बढ़ाने के आसार हैं।
2. जमीन, जलवायु और आस–पास के बाज़ार की मांग को देखकर विभिन्न प्रकार के फूलों की खेती किसानो की आय बढ़ाने का एक अच्छा साधन है।
3. पॉलीहाउस द्वारा बेमौसमी और विदेशी फूलों की खेती करके किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

3. कृषि सहायक व्यवसाय

(क) मत्स्य पालन : भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 2016 में मत्स्य उद्योग का योगदान 5.15 प्रतिशत था। मत्स्य उद्योग से सन् 2016 में 33441.61 करोड़ (राष्ट्रीय मात्स्यिकी विकास बोर्ड) रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। मत्स्य उद्योग के विस्तार को देखते हुए भारतीय किसानों की आय बढ़ाने के लिए ये एक अच्छा, और सशक्त माध्यम है।

(ख) डेरी उत्पादन : भारत के सकल घरेलु उत्पाद में 2014–15 में डेयरी उद्योग का योगदान 1.7 प्रतिशत था। अतः डेरी उद्योग को बढ़ावा देकर हम देश के छोटे से छोटे किसान को आर्थिक रूप से संपन्न बना सकते हैं।

4. अनुसंधान के प्रति किसानो की जागरूकता

किसानो को समय के साथ हो रहे कृषि साधनों व विधियों से सम्बंधित नये–नये अनुसंधान के प्रति जागरूक रहने की जरुरत है जिससे वे उत्पादकता के साथ–साथ आय भी बढ़ा सकते हैं।

1. **बीज :** भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसंधान संस्थान प्रत्येक वर्ष गुणवत्ता, पैदावार, बीमारी, को देखकर स्थानीय जलवायु के अनुसार विभिन्न फसलों की नयी–नयी प्रजातियाँ किसानो के लिए विकसित करते हैं। अतः किसानो अपने यहाँ के लिए विकसित की गयी विभिन्न फसलों की नयी प्रजातियों को सही बीज दर से लगाकर अच्छी गुणवत्ता और अच्छी पैदावार करके अच्छा लाभ कमा सकते हैं।

2. **उर्वरक :** किसानो को अपने खेत की मिट्टी की जाँच करानी चाहिये जिससे कि फसल की जरूरत के हिसाब से उचित मात्रा में उर्वरक दे सकें। जरुरत के हिसाब से उर्वरक देने से फसल की लागत कम करने के साथ–साथ हम फसल की उत्पादकता और आय बढ़ा सकते हैं।

3. **संचार क्रान्ति :** भारतीय किसान संचार क्रांति से अपने आपको जोड़कर कृषि के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति कर सकते हैं। संचार क्रान्ति के कुछ साधन निम्नलिखित है;

(अ) किसानों के लिए पोर्टल

(क) www.indiaagristat.com – यह कृषि शिक्षा, कृषि निर्यात, कृषि जनगणना, कृषि मूल्य, कृषि बीमा, पशुपालन, कृषि विपणन, बागवानी, कृषि मजदूरी और भारत के अन्य सभी प्रासंगिक कृषि सांख्यिकी जैसे क्षेत्रों पर प्रमाणिक सांख्यिकीय जानकारी प्रदान करता है।

(ख) www.isapindia.org – यह साइट भारतीय कृषि व्यवसाय व्यवसायी (आईएसएपी) के बारे में है जो किसानों के समुदाय की मदद करने और ग्रामीण–शहरी आय विभाजित करने के लिए काम करती है।

(ग) www.carrittmoran.com – यह साइट चाय और कॉफी के आंकड़ों (उत्पादन और बिक्री पर), कैटलॉग (भारत में चाय और कॉफी की विभिन्न किस्मों की बिक्री के बारे में), बाजार रिपोर्ट और टीएसआई के बारे में जानकारी प्रदान करती है।

(घ) www.fciweb.nic.in – भारत की खाद्य निगम द्वारा यह साइट संचालित है। यह किसानों और उपभोक्ताओं दोनों के लाभ के लिए प्रभावी मूल्य समर्थन, खाद्य सुरक्षा, मूल्य स्थिरीकरण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से अनाज वितरित करने के लिए काम करता है।

(ङ) www.agricoop.nic.in – इस पोर्टल पर सरकार फसलों से हुई पैदावार, किसानो द्वारा किये गए नये–नये प्रयोग उनसे लाभ, फसलों के लिए निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य और बहुत सारी किसानो के लिए लाभप्रद जानकारी उपलब्ध कराई जाती है।

(च) www.farmers.gov.in – इस पोर्टल पर सरकार द्वारा पूरे भारतवर्ष का जिलेवार आंकड़ा, किसानो के लिए उनके क्षेत्र में नयी संभावनाएँ, सरकार द्वारा किसानो के लिए संचार क्रांति के लिए किये गए नये–नये अनुप्रयोग आदि की जानकारी मिलती है।

(छ) www.mkisan.gov.in – इस पोर्टल पर किसानो के लिए विकसित किये गए सारे पोर्टल की जानकारी, आने वाले दिनों का मौसम और भी बहुत सारी किसान हितैषी जानकारी उपलब्ध है।

(ब). किसानों के लिए मोबाइल सेवाएँ

किसान कॉल सेंटर 1800–180–1551: इस नंबर पर काल करके किसान अपने खेत, फसल, उनकी बीमारी, आने वाले समय में मौसम, आदि के बारे में वैज्ञानिकों से सलाह ले सकता है।

5. कृषि बीमा : किसान आधुनिक और परम्परागत खेती के माध्यम से अपनी खेती की पैदावार तो बढ़ा सकते हैं लेकिन आने वाली आपदाओं पर उनका कोई वश नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि वो आने वाली आपदाओं के प्रति भी सजग रहें और उससे बचने के साधन अपनाएं। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना ऐसा ही एक साधन है जो किसानों के लिए एक सुरक्षा कवच है जो किसानो को प्राकृतिक जोखिमों जैसे–प्राकृतिक आपदा/संकट, कीट, और रोग एवं मौसम परिस्थितयों के विरुद्ध उनको वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है। इसके लिए बैंक की नजदीकी शाखा/कृषि सहकारी समितियाँ/सहकारी बैंक/क्षेत्र के लिए अधिसूचित सामान्य बीमा कम्पनी तथा जिला कृषि अधिकारी/खंड विकास अधिकारी से संपर्क स्थापित किया जा सकता है अथवा पोर्टल www.agri&insurance.gov.in पर देखें जा सकते हैं ।

निष्कर्ष

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न नवीनतम तकनीकियों द्वारा उत्तम कृषि कार्य किया जा सकता है जिससे कृषकों की समृद्धि सुनिश्चित हो सके और अंततः देश को समृद्ध बनाने में यथासंभव योगदान हो सके।

अनाज का सुरक्षित भण्डारण

उत्तम कुमार, राकेश कुमार एवं हरदेव राम
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

किसान अपने खेतों में उत्पादित अन्न को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भंडारित करता है, परन्तु भंडारण की सही जानकारी न होने के कारण काफी अनाज नमी, दीमक, घुन, चूहों, फफूँदी, एवं बैक्टीरिया द्वारा नष्ट हो जाता है।

निम्नलिखित उपायों को अपनाकर किसान भाई अपने अनाज को सुरक्षित ढंग से भंडारित कर होने वाली हानि को कम कर सकते हैं।

1.गोदाम की सफाई, मरम्मत व कीटमुक्त करना

सर्वप्रथम अनाज को रखने के लिये गोदाम की सफाई कर जाले, मकड़ी, दीमक, पुराने अवशेष आदि को बाहर निकालकर जलाकर नष्ट कर दें। दीवारों, फर्श व जमीन आदि में यदि दरार हो तो उन्हें सीमेन्ट, ईंट से बन्द कर दें। टूटी दीवारों आदि की मरम्मत करवा दें। कीटों से बचाव हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. 1 लीटर प्रति 100 लीटर पानी में मिलाकर फर्श, दीवारों व छत में छिड़काव कर दें और गोदाम को एक सप्ताह के लिए बन्द करके रखें। ऐसा करने से सभी हानिकारक कीट, फफूँदी, बैक्टीरिया आदि समाप्त हो जाएंगे और साथ ही गोदाम की नमी भी दूर हो जाये।

2. गोदाम के अन्दर अनाज का नमी से बचाव

अनाज को सीलन से बचाने के लिये किसान बिछावन के रूप में लकड़ी के मजबूत तख्ते, प्लास्टिक के रैक, भूमि पर लकड़ी की सूखी पट्टियाँ या भूसा फैला दें या फिर चटाई की दो परतों के बीच में पालीथीन बिछायें, अन्यथा मोटी पालीथीन की एक परत भी बिछा सकते हैं। किसान भाई अकसर बोरों को दीवार से सटा के रखते हैं जो कि गलत है। हमेशा बोरों के चट्टे दीवारों से 50 सेमी. की दूरी छोड़कर रखें।

3. अनाज की सफाई व सुखाना

अनाज के सुरक्षित भण्डारण हेतु खलिहान से ही अनाज की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए ताकि गोदाम में किसी कीट आदि का प्रकोप न हो पाये। इसके बाद अनाज को धूप में अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए जब नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से कम हो जाये अर्थात् दाँत से दाने को काटने पर कट की आवाज के साथ दाना दो भागों में टूट जाये तब दाने को गोदाम में रखने लायक समझना चाहिए। भंडारण के दौरान 10 प्रतिशत से ज्यादा नमी होने पर कीट और 14–15 प्रतिशत नमी होने पर फफूँदी व नमी 16 प्रतिशत से ज्यादा हो तो अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है।

4. कमरे में अन्न का खुला भंडारण

यदि भंडारण पूरे कमरे में फैलाकर करना हो तो सबसे पहले मोटी पालीथीन की शीट को जमीन या फर्श पर बिछा देनी चाहिए। तदोपरान्त अनाज का भण्डारण करें। अनाज को कीटों से सुरक्षा हेतु नीम की हरी सूखी पत्तियों को अनाज के साथ मिलाकर रखते हैं। दलहनी अनाजों को साबूत रखने के बजाय दाल के रूप में रखकर कीटों से बचाया जा सकता है। अन्य तरीकों में खाद्यान्नों में नमक, हल्दी पाउडर या कोई खाद्य तेल मिलाकर रख सकते हैं और दलहनों में 1 मिलीलीटर सरसों का तेल या डालडा प्रति किलोग्राम अनाज में मिलाकर रखने से भी कीटों का संक्रमण कम देखा गया है। सर्वाधिक ध्यान देने वाली बात यह है कि अनाज में किसी भी स्थिति में नमी न हो।

5. बोरों, बखारी आदि की सफाई व उपचार

भंडारण हेतु नई बोरियों का प्रयोग करें, नई बोरियों को भी धूप दिखा दें तो अच्छा रहेगा। यदि बोरियाँ पुरानी है, तो उन्हें उपचारित करके ही प्रयोग में लायें। उपचार करने हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. की 1 भाग मात्रा 500 भाग पानी में घोल बनाकर या फेनवलरेट 20 ई.सी. दवा का 1 भाग मात्रा 2000 भाग पानी में मिलाकर बोरियों को 10–15 मिनट के लिए भिगो दें। अब बोरियों को बाहर निकालें और छाया में ही सुखा लें। इसी दवा के घोल से भंडारण पात्र, बखारी, ड्रम आदि को भी अच्छी तरह उपाचारित कर सुखा लें।

6. भंडारण पात्रों में अनाज व कीटनाशी दवाईयों का अनुपात

अनाज को सुरक्षित रखने हेतु बखारी या बोरियों में कुछ दवाईयों को भी मिलाते है;

(अ) एक टन अनाज में 3 ग्राम की एल्यूमिनियम फास्फाइड की दो टिकियाँ का प्रयोग करते हैं।

(ब) बीज के लिये रखे जाने वाले अनाजों में 250 ग्राम मैलाथियान के 5 प्रतिशत धूल को एक कुन्तल अनाज में मिलाकर रखना चाहिए।

(स) सल्फास की 1 टिकियाँ प्रति घन मीटर की दर से प्रयोग कर सकते हैं।

भण्डारण एवं प्रसंस्करण का गेहूँ की पौषणिक गुणवत्ता पर प्रभाव

ओम प्रकाश गुप्ता, गोपालारेड्डी के, स्नेह नरवाल, वनिता पाण्डेय, प्रदीप शर्मा,
संजय कुमार सिंह, तुषार खन्डाले, रितु सैनी, विपिन कुमार मलिक, अनुज कुमार एवं सेवा राम
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व में धान के बाद, गेहूँ दूसरी सबसे अधिक उपयोग कि जाने वाला अनाज है। गेहूँ की उपयोगिता इस बात से आंकी जा सकती है कि यह विभिन्न प्रकार के अंतिम उत्पाद जैसे ब्रेड, बिस्कुट, आटा, पास्ता, सूजी एवं अन्य बेकरी उत्पाद बनाने में प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता है। उपर्युक्त सभी अंतिम उत्पाद गेहूँ की पौष्टिक गुणवत्ता के कारण संभव है जो कि लम्बे समय तक भण्डारण तथा प्रसंस्करण से अत्यधिक प्रभावित होती है। अन्य अनाज की तुलना में, गेहूँ पौष्टिक गुणवत्ता की दृष्टि से उत्तम है (चित्र 1)। लम्बे समय तक भण्डारण तथा प्रसंस्करण के समय की गयी लापरवाही गेहूँ की गुणवत्ता को काफी प्रभावित करती है। कटाई से लेकर भण्डारण तथा प्रसंस्करण के विभिन्न चरण सम्मलित हैं जिनका सुचार रूप से प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। इस लेख के माध्यम से हम भण्डारण तथा प्रसंस्करण से गेहूँ की पौषणिक गुणवत्ता पर होने वाले विभिन्न प्रभावों का उल्लेख करेंगें।

चित्र 1: गेहूँ के दाने की संरचना तथा पोषक तत्वों की

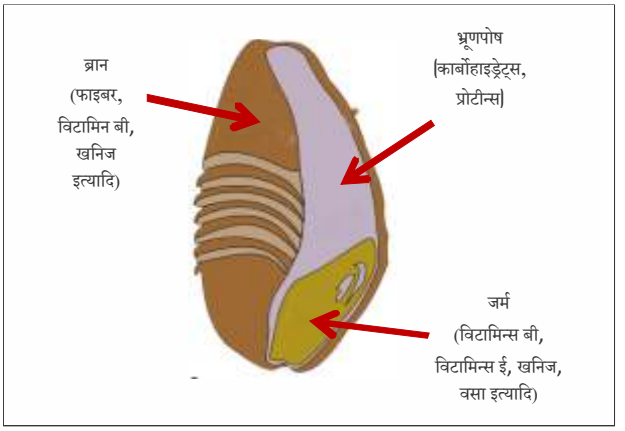

विभिन्न उत्तकों में उपस्थिति

प्रसंस्करण (निष्कर्षण) दर का पौषणिक गुणवत्ता पर प्रभाव

गेहूँ का दाना विभिन्न विटामिन्स जैसे थायमीन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, पाइरीडाक्सीन, विटामिन ई तथा सूक्ष्म पोषक तत्त्व जैसे लोहा एवं जस्ता का बहुत अच्छा स्रोत है। दूसरी ओर ये सभी पोषक तत्त्व गेहूँ के ऊपरी परत में विद्यमान होते हैं जोकि निष्कर्षण के दौरान नष्ट हो जाते हैं। पोषक तत्वों का नष्ट होना निष्कर्षण दर के व्युत्क्रमानुपाती होता है। यदि निष्कर्षण दर ज्यादा होगी तो इन सभी पोषक तत्वों का नुकसान कम होगा (चित्र 2)। खनिज तत्त्व विटामिन्स की तुलना में ज्यादा ताप सहन कर सकते है जिससे बेकिंग के दौरान होने वाला नुकसान कम होता हैं। बेकिंग के दौरान होने वाले नुकसान को तालिका 1 तथा 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 1: ब्रेड बेकिंग के दौरान पोषक तत्वों का नुकसान

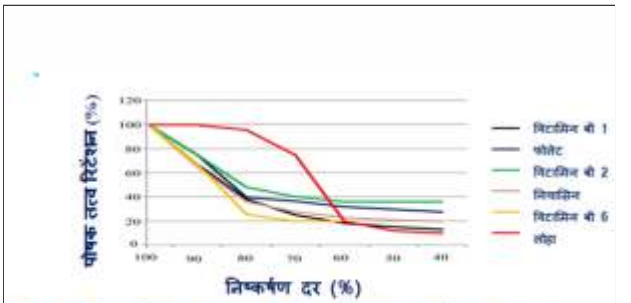

चित्र 2. निष्कर्षण के दौरान होने वाली पोषक तत्वों का नुकसान

तालिका 2: पास्ता सुखाने तथा पकाने पर विटामिन्स में होने वाला नुकसान

पोषक तत्त्व	नुकसान (प्रतिशत)
विटामिन ए	10–12
विटामिन बी 1	15–25
विटामिन बी 2	5–10
नियासिन	0–5
फोलिक एसिड	20–03

पोषक तत्त्व	75 डिग्री सेन्टीग्रेड पर सुखाने के बाद नुकसान (प्रतिशत)	पकाने के बाद नुकसान (प्रतिशत)
विटामिन ए	13	17
विटामिन बी 1	0	32
विटामिन बी 2	5	35
नियासिन	0	30

बेकिंग का प्रोटीन दक्षता अनुपात (पी.ई.आर.) पर प्रभाव

प्रोटीन दक्षता अनुपात (पी.ई.आर.) = शरीर भार में वृद्धि (ग्राम)/प्रोटीन खपत (ग्राम)। विश्व में बहुत से शोध यह सिद्ध कर चुके हैं कि पी.ई.आर. बेकिंग के दौरान कम हो जाता है। बेकिंग के समय पर क्रस्ट बनने की वजह से प्रोटीन गुणवत्ता प्रभावित होती है जिससे लाइसिन एमिनो अम्ल की पाचकता काफी हद तक प्रभावित होती है। विभिन्न उत्पाद को बेकिंग के दौरान पी.ई.आर. में कमी को तालिका 3 में दर्शाया गया है तथा विभिन्न खाद्य पदार्थों का पी.ई.आर.) चित्र 3 में दर्शाया गया है।

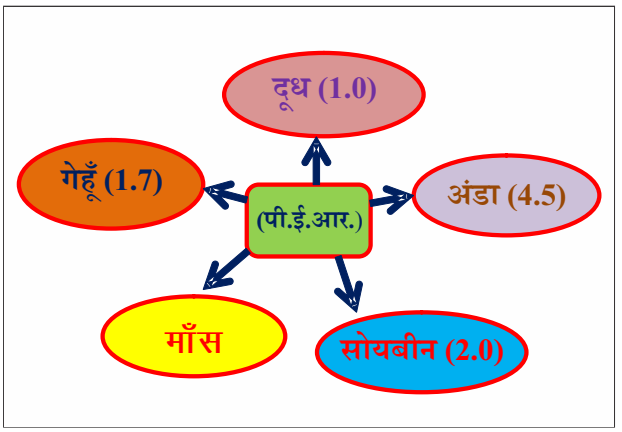

चित्र 3. विभिन्न खाद्य पदार्थों में पी.ई.आर.

भण्डारण का प्रोटीन गुणवत्ता पर प्रभाव

लगभग 80 प्रतिशत गेहूँ का प्रोटीन ग्लूटेन से बना है जोकि लोई की लोच तथा खिचाव के लिए प्रमुख कारक है। शोध में यह पाया गया है कि भण्डारण के 1 वर्ष तक ग्लूटेन अपरिवर्तित रहता है जोकि दूसरे एवं बाद के वर्षों में घटने लगती है। लाइसिन एमिनो अम्ल भी भण्डारण के दौरान काफी प्रभावित होती है। एक रिपोर्ट के अनुसार गेहूँ को 25 डिग्री सेंटीग्रेड तथा 45 डिग्री सेंटीग्रेड पर 3 तथा 2 महीनो तक भण्डारण से लगभग 10 प्रतिशत लाइसिन में कमी आती है। इसके अतिरिक्ति 6 महीनो से अधिक भण्डारण से प्रोटीन तथा स्टार्च की पाचकता काफी हद तक कम हो जाती है।

तालिका 3. विभिन्न उत्पादों का बेकिंग के दौरान पी.ई.आर. में कमी

उत्पाद	समय (मिनट)	ताप (डिग्री सें.)	पी.ई.आर .में कमी (प्रतिशत)
ग्रिडल केक	2	204	17.8
कूकीज	10	177	15.5
मफिन्स	23	204	14.5

भण्डारण का कार्बोहाइड्रेट्स की गुणवत्ता पर प्रभाव

वैश्विक शोध यह दर्शाता है कि 25 डिग्री सेंटीग्रेड पर गेहूँ के भण्डारण से कुल घुलनशील शर्करा की मात्रा 12 प्रतिशत बढ़ जाती है जोकि 45 डिग्री सेंटीग्रेड पर 37 प्रतिशत तक कम हो जाती है। शर्करा की मात्रा एमाइलेज एंजाइम की क्रिया पर निर्भर होती है तथा शर्करा में कमी मिल्लार्ड अभिक्रिया के वजह से होती है। इसके अतिरिक्ति भण्डारण का प्रभाव गेहूँ के क्रूड फाइबर पर न के बराबर है।

भण्डारण का वसा की गुणवत्ता पर प्रभाव

गेहूँ में वसा की मात्रा लगभग 1–1.8 प्रतिशत होती है जोकि आटे में ग्लूटेन परिवर्धन के लिए अत्यंत सहायक होता है। अधिक तापमान पर लम्बे समय तक गेहूँ के भण्डारण से लाइपेज एंजाइम की क्रिया काफी कम हो जाती है जिससे कुल वसा में कमी आती है। अधिक लाइपेज की क्रिया मुक्त वसा पैदा करती है जिससे गेहूँ में अम्लता बढ़ जाती है।

भण्डारण का विटामिन्स पर प्रभाव

थायमीन एक महत्वपूर्ण विटामिन है जो शरीर में विभिन्न अभिक्रियाओं में सक्रिय भूमिका निभाता है। गेहूँ का भण्डारण 6 महीने तक 25 डिग्री सेंटीग्रेड तथा 45 डिग्री सेंटीग्रेड पर भण्डारण से थायमीन की मात्रा में क्रमशः 21.5 प्रतिशत तथा 29.5 प्रतिशत की कमी देखी गयी है। इसके अतिरिक्ति गेहूँ में राख की मात्रा भण्डारण से अपरिवर्तित रहती है जो पोषक तत्व की दृष्टि से बहुत अच्छा है।

गेहूँ में एंटीऑक्सीडेंट्स तथा कुल फिनोलिक तत्व

गेहूँ की एंटीऑक्सीडेंट क्षमता अनाज की प्रजाति एवं किस्म, अनाज के अंश जैसे चोकर, आटा, साबूत अनाज तथा प्रसंस्करण की स्थिति पर निर्भर करती है। एंटीऑक्सीडेंट क्षमता के सन्दर्भ में चोकर तथा भ्रूण भाग सबसे आगे है, परन्तु दोनों ही भाग आटा पिसाई के समय अलग हो जाते हैं। इसलिए बेहतर स्वास्थ्य लाभ के लिए हमें परिष्कृत आटे पर आधारित उत्पादों की अपेक्षा साबुत अनाजों पर आधारित खाद्य पदार्थों का उपभोग करना चाहिए। गेहूँ के विभिन्न अंश में एंटीऑक्सीडेंट्स तथा कुल फिनोलिक तत्व की मात्रा तालिका 4 में दर्शायी गई है।

तालिका 4: गेहूँ के विभिन्न अंशों में एंटीऑक्सीडेंट्स तथा कुल फिनोलिक तत्वों की मात्रा

अंश	एंटीऑक्सीडेंट्स क्रिया (माइक्रो मोल ट्रोलोक्स इक्विवलेंट/ग्रा.)	कुल फिनोलिक तत्व (मि. ग्रा. गैलिक अम्ल इक्विवलेंट/ग्रा.)
आटा	2.0–10.0	0.2–1.2
ब्रान	5.0–15.0	2.9–5.6
मैदा	<0.5-2.0	<0.1

निष्कर्ष

गेहूँ ईश्वर द्वारा प्रदत अनमोल खाद्य पदार्थों में से एक है जो विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर है। इसके सभी पोषक तत्व जैसे विटामिन्स, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन इत्यादि सभी कही न कही गलत भण्डारण तथा प्रसंस्करण से प्रभावित होते हैं। अतः पोषक तत्वों की संपूर्ण सुरक्षा के लिए भण्डारण तथा प्रसंस्करण की वैज्ञानिक विधियों का ही इस्तेमाल करना चाहिए।

सीलिएक रोग : कारण और निवारण

स्नेह नरवाल, ओ.पी गुप्ता, वनिता पाण्डेय, रीतू सैनी एवं सेवा राम
भा.कृ.अनु.प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

दुनिया भर में सीलिएक रोग से लगभग 1 प्रतिशत आबादी प्रभावित है। यह रोग विशेष आनुवंशिक वर्ग वाले व्यक्तियों में ही पाया जाती है। सीलिएक रोग आंत का एक स्वप्रतिरक्षित विकार है जो कि गेहूँ, जौ एवं राई के ग्लूटेन प्रोटीन के कारण होता है। सीलिएक रोग कुछ व्यक्तियों जिनमें ह्यूमन ल्यूकोसाइट एंटिजन डी क्यू2/डी क्यू8 पाए जाते हैं में ग्लूटन इकाई के प्रतिरक्षा तंत्र की टी–कोशिकाओं से जुड़ने से शुरू होता है। संवेदनशील व्यक्तियों में सीलिएक रोग के कारण छोटी आंत की विल्ली क्षतिग्रस्त हो जाती है। सामान्य विल्ली पोषक तत्वों का अवशोषण के लिए एक बड़ी सतह क्षेत्र बनाती हैं। परन्तु क्षतिग्रस्त विल्ली चपटी हो जाती है जिससे अवशोषण के लिए उपलब्ध सतह क्षेत्र बहुत कम हो जाता है। इससे शरीर को पौष्टिक तत्व नहीं मिल पाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कई लक्षण सामने आते हैं जैसे दस्त, पेट दर्द, पेट फूलना, उल्टी, शरीर का विकास न होना तथा वजन कम होना। ग्लूटेन–असहिष्णु मरीजों के लिए आजतक कोई भी औषधीय उपचार उपलब्ध नहीं है। जीवन भर एक कठोर ग्लूटेन–रहित आहार ही सुरक्षित एवं प्रभावशाली उपचार उपलब्ध है। जिस आहार में 20 पी.पी.एम से कम गलूटेन होता है उसे ही ग्लूटेन–रहित माना जाता है। भोजन को लेकर पर्याप्त सावधानी बरतने से आंत अपने आप ठीक होने लगती है और रोग के लक्षण गायब होने लगते हैं। भारत में सीलिएक रोग के बढ़ने को दर्शाया गया है जोकि रोग की पहचान या व्यापकता या दोनों के बढ़ने के कारण हो सकता

चित्र : विश्व में सीलिएक रोग की व्यापकता

है। इस रोग की व्यापकता भारत के उतरी, उतर–पश्चिमी एवं मध्य क्षेत्रों में अधिक पाई गई है क्योंकि इन क्षेत्रों में गेहूँ, मुख्य रूप से खाया जाने वाला अनाज है। ग्लूटेन कई इकाईयों से बना एक जटिल यौगिक है। ग्लूटेन की मुख्य प्रतिरक्षाजनी इकाई प्रोलीन एवं ग्लूटामीन एमाइनो एसिड से भरपूर प्रोलामिन प्रोटीन (15 प्रतिशत प्रोलीन तथा 35 प्रतिशत ग्लूटामीन) से सम्बंध रखते हैं। ग्लाइडिन, होरडिन, सिकेलिन एवं एविनिन गेहूँ, जौ, राई एवं जई के प्रोलामिन प्रोटीन हैं। सीलिएक रोग में सक्रिय सभी प्रोटीन (ग्लाइडीन एवं ग्लूटेनिन) इकाईयों में एमाइनो एसिड अनुक्रम ग्लूटामीन– ग्लूटामीन–ग्लूटामीन–प्रोलीन तथा प्रोलीन–सीरीन– ग्लूटामीन– ग्लूटामीन आवश्यक रूप से

पाये जाते हैं। निष्क्रिय इकाईयों में ये अनक्रम नहीं पाए जाते। एक 33 एमाइनो एसिड लम्बी इकाई जिसमें तीन सीलिएक विषाक्त एपिटोप हैं की मुख्य कारक के रूप में पहचान की गई है।

गेहूँ, जननद्रव्य में पर्याप्त विविधता मौजूद है जिसे कम सीलिएक विषाक्त एपिटोप वाली प्रजातियों की पहचान के लिए जाँचने की आवश्यकता है। विश्व भर में हुए अध्ययन यह बताते हैं कि पुरानी किस्मों की तुलना में गेहूँ, की आधुनिक किस्मों में सीलिएक विषाक्त एपिटोप की संख्या अधिक पाई गई है। प्राकृतिक रूप से कम एपिटोप वाली चयनित किस्मों को संकरण कार्यक्रम में इस्तेमाल करके अधिक उपज देने वाली किस्मों में सी.डी विषाक्त ऐपीटोप को कम किया जा सकता है। इस तरह भोजन श्रृखंला मे कम सी.डी विषाक्त ऐपीटोप वाले गेहूँ उत्पादों को लाकर सिलिएक रोग के परिणामों को कम किया जा सकता है। खाद्य प्रसंस्करण प्रणालियों जैसे माल्टिंग, खमीरी आटा, पेपटाइडेज एंजाइम के द्वारा ग्लूटेन की विशाक्ता को कम किया जा सकता है। आनुवंशिक अभियंत्रिकी प्रक्रिया द्वारा ग्लूटेन प्रोटीन के प्रकटन को रोककर या कम करके भी ग्लूटेन–जनित रोगों को कम किया जा सकता है। परन्तु इस प्रक्रिया के इस्तेमाल में सावधानियाँ रखने की आवश्यकता है ताकि गेहूँ, से बनने वाले उत्पादों की गुणवता पर कोई प्रभाव ना पड़े। भविष्य में ग्लाइडिन एवं ग्लूटेनिन को समझने तथा उनमें बदलाव के लिए गेहूँ का जिनोम अनुक्रम महत्वपूर्ण साबित हो सकता है। सीलिएक विषाक्त एपिटोप की उपस्थिति/अनुपस्थिति के लिए आणविक चिन्हकों को विकसित करने में ग्लूटेन जीन की जटिलता बाधा डाल सकती है।

जैव विविधता, जैव प्रोद्योगिकी एवं प्राचीन किस्मों के प्रजनन द्वारा ऐसी प्रजातियाँ विकसित की जा सकती हैं जिनमें कम सीलिएक विषाक्त एपिटोप के साथ–साथ बेहतर प्रसंस्करण गुणवत्ता भी हो।

समन्वित फार्म प्रबंधन द्वारा किसानों की आय में वृद्धि

विष्णु शंकर मीना, हेमराज गुर्जर एवं शिरीष शर्मा
कृषि अनुसंधान केंद्र, नोगावा–अलवर
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय–जोबनेर, जयपुर

कैसे करें किसानों की आय दुगुनी

उत्पादन में वृद्धि इसके लिए किसान भाईयों को सिंचाई के समग्र साधनों को एवं जल संरक्षण का समुचित उपयोग करके फसलों कि आवश्यकता के आधार पर समुचित जल का सही उपयोग करके फसलों की क्रांतिक अवस्था को ध्यान में रखकर जल का सही एवं समुचित उपयोग सही विधियों का चुनाव करके फसलों को दिया जाये ताकि उनके उत्पादन में सही उपयोग हो सकें इसके लिए भारत सरकार एवं राज्य सरकार की कृषि सिंचाई योजना का लाभ उठाये। उदाहरण के तौर पर सूक्ष्म सिंचाई योजना, बूंद–बूंद सिंचाई योजना का अधिक से अधिक उपयोग करें। खेतों में तालाब बनाये जिसमें वर्षा जल को इकट्ठा करके फसलों में उपयोग करें। वर्ष 2014–17 के दौरान देश में सूक्ष्म सिंचाई के अंतर्गत उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि देखने को मिली है।

लागत का प्रभावी उपयोग

किसान को उसकी जमीन की उर्वरा क्षमता की जानकारी के लिए भारत सरकार ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड की योजना चलाई जिससे मृदा की स्वास्थ्य संम्बधित जानकारी मिल जाती है। जिससे किसान उसकी मृदा में प्राथमिक पोषक तत्वों, सूक्ष्म पोषक एवं रासायनिक तत्वों के बारे में जानकारी उपलब्ध हो जाती है। जिससे किसान उसकी मृदा की समुचित जानकारी प्राप्त करके उचित पोषक तत्व देकर उसकी कमी को पूरा कर सकता है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के द्वारा रासायनिक उर्वरकों की खपत में 8–10 प्रतिशत की कमी लायी जा सकती हैं। साथ ही सरकार अब नीम लेपित (नीमकोटेड) यूरिया 100 प्रतिशत उपलब्ध करवा जा रही हैं जिससे यूरिया का रासायनिक उद्योगों में दुरूपयोग बंद हो गया है। जिससे किसानो को पर्याप्त मात्रा में यूरिया मिल रहा हैं एवं इससे उत्पादन में 10–17 प्रतिशत की वृद्धि हुई हैं। किसानो को जैविक खेती को बढ़ावा देना चाहिए जिससे उसके उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि की जा सके।

गुणवत्ता में वृद्धि

हम खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से कृषि में गुणवत्ता को प्रोत्साहन दे रहे हैं। इसके लिए 6000 करोड़ रूपये के आवंटन से प्रधानमंत्री किसान सम्पदा योजना की शुरुआत की गयी जिसके तहत एग्रो प्रोसेसिंग क्लस्टरों के फॉरवर्ड एवं बैकबर्ड लिंकेज पर क्रय करके फूड प्रोसेसिंग संस्थाओं का विकास करना पड़ेगा जिससे इस योजना से 20–25 लाख किसान लाभान्वित होंगे।

ई राष्ट्रीय कृषि बाजार योजनाओं में वृद्धि

भारत सरकार ने 14 अप्रैल 2016 को ई राष्ट्रीय कृषि बाजार योजना की शुरुआत की जिससे अब तक देश में 562 मंडियों को जोड़ा जा चूका हैं एवं 116 मंडियों में ऑनलाइन से कृषि बाज़ार ट्रेडिंग को बढ़ावा मिल रहा है। जिससे किसान, व्यापारी और ट्रेडरों को एक उचित प्लेटफोर्म उपलब्ध हो रहा हैं किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य एवं सही समय पर भुगतान हो पा रहा हैं। फलस्वरूप बाज़ार के अन्तर्गत कालाबाजारी में कमी आई है। इसके अलावा सरकार द्वारा किसानों के लिए एकल मंडी करने के उद्देश्य से राज्यों से बात कर तीन प्रमुख सुधार जैसे इलेक्ट्रोनिक ट्रेडिंग को मान्यता, एकल बिंदु पर मार्केटिंग फीस एवं एकीकृत लाइसेंस पद्धति स्कीम लाई गई इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में बाज़ार सुधार की दिशा में एक मोडल ए.पी.एम.सी. एक्ट (जिसमे निजी क्षेत्र में मंडी स्थापना, प्रत्यक्ष विपणन मंडी यार्ड के बाहर बनाकर समस्त राज्य सरकारों को इस एक्ट को अपनाने के लिए प्रतिबंध किया गया) इसके अतिरिक्त संविदा कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार मॉडल एक्ट बनाने पर कार्य कर रही हैं। जिससे किसानो को एक उचित मार्केट मिल सके ताकि वह उनके उत्पादनों को सही कीमत में बेच सके तथा उनकी फसलों की कीमत में नुकसान से बचा जा सके।

कटाई के बाद नुकसान को कम करना

कृषि उपज का बड़ा हिस्सा उपभोक्ता तक पहुंचने से पहले ही नष्ट हो जाता है। किसानों द्वारा मजबूरी में की जाने वाली बिक्री को रोकने के लिए किसानों में जागरूकता लाने की आवश्यकता है। इसके लिये किसानों को उनके उत्पादन को उचित समय उचित मूल्य में बेचने के लिए जागरूकता लानी चाहिए जिससे किसानों को उसके माल (फसलों) की उपयुक्त कीमत मिल सके। इसके लिए किसानों को उनके अनाज के भण्डारण हेतु भंडार गृह के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। जिससे उसके उत्पाद रखने के बदले भंडार गृह से रसीद के बदले कम ब्याज पर ऋण ले सके तथा अपने जरूरत कि वस्तुओं को खरीद सके। उसके कृषि कार्यों में कोई व्यवधान नहीं पड़े तथा अपने माल की बिक्री सही समय जब उसकी कीमत अच्छी हो तब बाजार में बेच सके जिससे उसके उत्पाद का सही दाम मिल सके। भारत सरकार द्वारा छोटे एवं सीमान्त किसानों को फसलोत्पादन हेतु 6 माह की अवधि हेतु ऋण की व्यवस्था की गयी हैं। इसी प्रकार फल एवं सब्जियों के भंडारण के लिए एकीकृत शीत श्रृंखला, पैक हाउस, रेफर ट्रैक पकाने वाले चैम्बर्स (रिपेनिंग चैम्बर्स) इत्यादि के लिए किसानों को जागरूक करना चाहिए जिससे वह फल एवं सब्जियों का सही दाम ले सके।

जोखिम में कमी

इसके लिए भारत सरकार द्वारा शुरू की गई प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के प्रति किसानो को जागरूक करना चाहिए जिससे किसान खरीफ व रबी फसलों का बीमा करवा सके जिससे उसकी फसल को प्राकृतिक आपदाओं

से होने वाले नुकसान की भरपाई की जा सके। इस क्षति का आंकलन करने के लिए पहली बार फसल बीमा को खेतवार किया जा रहा है तथा संभावित दामों का 25 प्रतिशत भुगतान तत्काल ऑनलाइन किया जाता है। ये महत्वपूर्ण सुधार यह की बीमित की जाने वाली राशि पर कैपिंग हटा ली गयी है। बीमा के दावों के लिए तकनीक इस्तेमाल पर काफी जोर दिया जा रहा है ताकि किसान को भुगतान शीघ्र हो सके। यह योजना किसानो की फसल के लिए एक सुरक्षा कवच साबित हुई हैं। पहले पचास प्रतिशत से अधिक फसल का आपदा से नुकसान होने पर जो मुवावजा मिलता था अब ये राहत 33 प्रतिशत कर दी गई है और इससे अधिक की क्षति होने पर मिलता है साथ ही मुवावजा में मिलने वाली राशि को 1.5 प्रतिशत बढ़ा दिया गया हैं।

बागवानी को बढ़ावा देना

किसानों की आय को दोगुना करने के लिए बागवानी अहम् भूमिका निभा रही है। इसके लिए किसानों में जागरूकता लाने की जरूरत है। जिससे कम भूमि में अधिक उत्पादन करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है। इसके लिए बेहतर रोपण सामग्री, उन्नत बीज, संरक्षित खेती, सघन रोपण, जीर्णोद्धार, परिशुद्ध खेती जैसे कार्य करके उच्च गुणवत्ता की बागवानी और रोपण के जरिये अधिक लाभ लिया जा सकता हैं।

एकीकृत फार्मिंग

भारत सरकार ने समग्र कृषि प्रणाली (आई.एफ.एस.) इस्तेमाल करके बहू फसल पद्दति, चक्रिय फसल, अंतर फसल, मिश्रित फसल अभ्यासों के साथ सम्बन्ध क्रियाकलापों जैसे बागवानी, पशुधन, मत्स्यिकी, मधुमक्खीपालन आदि पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जिससे किसानों को ना सिर्फ सतत् आजविका के लिए उत्पादन बढ़ाने योग्य बनाता हैं बल्कि सुखा, बाढ़ अथवा अन्य गंभीर मौसमी घटनाओं के प्रभाव को भी कम करता है।

जैविक खेती को बढ़ावा

जैविक खेती एक प्रकार की पारंपरिक खेती है जिसमें बिना कीटनाशक एवं बिना रासायनिक उर्वरक के की जाती है। इसमें किसान अपने घरेलू खाद जैसे गोबर की खाद, केचुए की खाद, नीम की खाद आदि प्राक्रतिक खाद का प्रयोग करके खेती करता है तथा जो उत्पादन लिया जाता हैं उसे जैविक खेती एवं जैविक उत्पाद कहते हैं। ऐसा उत्पाद बाज़ार में उच्च मूल्य पर बिकता है जिससे मुनाफा बढ़ाया जा सकता हैं और अततः आमदनी में वृद्धि की जा सकती है।

परिवार के सदस्यों का खेती में उपयोग

परिवार के सदस्यों का कृषि कार्य में समुचित उपयोग करके श्रमिक खर्च को कम किया जा सकता है। जिससे किराए पर लगे श्रमिकों को कम करके इसकी जगह परिवार के सदस्यों को खेती कार्यों में संलग्न करके खेती की लागत को कम किया जा सकता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य

किसानो को अपनी फसल को सरकार द्वारा निर्धारित की गयी कीमत पर ही बेचनी चाहिए। इसके लिए किसान को जागरूक रहकर ऐसी फसलों का चुनाव करना चाहिए जिसका कम खर्चे में अधिक उत्पादन तथा उचित मूल्य मिल सके। इसके लिये किसानो को न्यूनतम समर्थन मूल्य के प्रति जागरूक रहकर अपने उत्पाद को बेचने के लिए ई–मित्र से समय पर टोकन लेकर अपने उत्पादन को उचित कीमत में बेचकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

सरसों की खेती के साथ मधुमक्खीपालन

किसानों को सरसों की खेती के साथ मधुमक्खी पालन भी करना चाहिए क्योंकि मधुमक्खियाँ सरसों के फूलों से रस चूसकर शहद का निर्माण करती हैं तथा पड़त भूमि और मेड़ों पर मधुमक्खी पालन बॉक्स रखकर मधुमक्खी पालन आसानी से किया जा सकता है। इस प्रकार पड़त भूमि एवं मेड़ों का सही उपयोग होता है तथा मधुमक्खिओं को उसी स्थान पर पोषण प्राप्त हो जाता हैं। शहद का विक्रय कर अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता हैं और इससे किसानों की आय बढ़ाई जा सकती हैं।

मुर्गी पालन को बढ़ावा

किसानो को मुर्गीपालन के लिए जागरूक करके उसकी आय बढ़ाई जा सकती है। किसान को अपने घर के बाहर खाली पड़ी जमीन पर मुर्गीपालन करके एक पूरक आय प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए पोषण सम्बन्धी सहायता भी राष्ट्रीय पशुधन मिशन के तहत अनुदान प्राप्त किया जा सकता है।

पशुधन योजनाओं से जुड़ना

सरकार द्वारा पशुधन के लिए अनेक योजनायें चलाई जा रही हैं जैसे भेड़–बकरी पालन, सूअर पालन, बतख पालन करके भी किसान अपनी आय में वृद्धि सकता है।

राष्ट्रीय गोकुल मिशन से देशी नस्लों का संरक्षण एवं विकास तथा उनकी आनुवंशिक संरचना में सुधार करके दुग्ध उत्पत्दन व उत्पादकता की वृद्धि में सफलता हासिल की जा रही है। इसके लिए सरकार ने 2017–18 के लिए 2000 करोड़ रूपये की कायिक निधि से डेयरी प्रसंस्करण और अवसंरचना विकास निधि की स्थापना की जा रही है जिससे अगले तीन वर्षों के दौरान 8000 करोड़ रूपये तक बढ़ाया जायेगा। पशुपालन एवं डेयरी विभाग ने वित्त मंत्रालय नीति आयोग, ग्रामीण विकास मत्रालय तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय के साथ परामर्श करके इस योजना को चलाया जा रहा है। इन योजनाओं के माध्यम से डेयरी के क्षेत्र में स्वरोजगार के अवसर सृजित किये जा रहे हैं किसान इस योजना का लाभ उठाकर अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकता है।

कृषि वानिकी

हर खेत की मेड़ पर पेड़, पड़त भूमि पर पेड़ तथा इंटर क्रोपिंग में पेड़ लगाने के उद्देश्य से कृषि वानिकी उपमिशन क्रियान्वित किया गया है। इस योजना का किसान अधिक से अधिक लाभ उठाकर अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

भारत में मशरूम की खेती की संभावनाएँ

जे.के. पाण्डेय, अनुज कुमार एवं राजेन्द्र कुमार
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

मशरूम या जिसे खुम्ब भी कहते हैं वनस्पति जगत में कवक कुल का पौधा है। यह एक ऐसा आकर्षक पौधा जिसका उपयोग आदिकाल से मनष्य इसका करता आ रहा है, इसकी उत्पति के बारे में बहुत सारी मानयताएँ व धारणाएं रही है, इसके संबंध में कई सारे प्राचीन ग्रंथों में भी इसकी चर्चा है। प्राचीन काल में ग्रीक एवं रोम के शाही व्यंजन में मशरूम का उपयोग होता था। विश्व के बहुत से देशों में इसकी खेती होती है। ऐसा माना जाता है कि चीन में इसकी खेती बहुत पुरानी है एवं उसके बाद 16वीं–17वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में बटन मशरूम की खेती की जाने लगी।

3–4 दशक पहले विश्व में मशरूम की खेती तेजी से बढ़ने लगी तथा भारत में इसकी खेती में किसानो का रूझान बढ़ा है और एक दशक में विश्व तथा भारत में मशरूम का उत्पादन तेजी से बढ़ा इसका प्रमुख कारण नई किस्मों का विकास है जो खाने के लिए उपयुक्त हैं तथा उनमें औषधीय गुणों की भरपूर मात्रा है। इसके साथ ही शोध संस्थाओं द्वारा इसकी उत्पादन तकनीकों को विकसित किया है जिससे बड़े स्तर पर उसकी व्यवसायिक खेती होने लगी है।

भारत की स्थिति

शुरू में भारत में ज्यादातर सफेद बटन मशरूम का उत्पादन करने का कार्य टेम्पेरेट शीत जलवायु (पहाड़ी) क्षेत्रों तक सीमित था परन्तु बाद में जागरूकता बढ़ने, कम्पोस्ट बनाने की तकनीक, उच्च उत्पादन तकनीक एवं अन्य तकनीकी विकास की वजह से यह पूरे देश में उगाने जाने लगा।

आज भी भारतीय उपभोक्ताओं में यह दैनिक उपयोग में या सब्जी रूप में इसका स्थान नहीं है। भारत में प्रति, व्यक्ति/वर्ष खपत है जो कि बहुत ही कम 100 ग्रा. है।

मशरूम की भारत में कुल उत्पादन 0.13 मिलियन टन (2010 से 2017) रहा है तथा 4.3 प्रतिशत की दर से उत्पादन में बढ़ोत्तरी हो रही है और 2016–2017 के दौरान 1054 टन सफेद बटन मशरूम का निर्यात किया गया जिससे रूपये 7282.26 लाख रूपये प्राप्त हुए। व्यापारिक तौर पर अपने देश में पाँच प्रकार के मशरूम उगाये जाते हैं जैसे कि सफेद बटन मशरूम (एगारिकस बाइस्पोरस), आयस्टर (प्लूरोटस प्रजाति) धान के पुआल पर उगाये जाने वाला मशरूम (वोल्वेरियेल्ला वोवेसिया), मिल्की मशरूम (कैलोसाइब इंडिका) और शीतेक (लेन्टिनुला इडोडस), सफेद बटन, आयस्टर एवं धान के पुआल मशरूम इन तीनों को मिलाकर भारत के कुल उत्पादन का 96 प्रतिशत होता है।

देश में सबसे अधिक मशरूम उत्पादन पंजाब में 14 प्रतिशत उसके बाद हरियाणा (12 प्रतिशत), ओडिशा (12 प्रतिशत), महाराष्ट्र (9 प्रतिशत), गुजरात (9 प्रतिशत), उत्तराखण्ड (8 प्रतिशत), एवं तमिलनाडु (8 प्रतिशत), और

उत्तर प्रदेश (5 प्रतिशत) में होता है। यानि कि पाँच राज्य पंजाब, हरियाणा, ओडिशा, महाराष्ट एवं गुजरात मिलकर कुल उत्पादन का 56 प्रतिशत उत्पादन करते हैं।

भारत में तकनीकी उपलब्ध्ता के लिए मशरूम निदेशालय, सोलन है जो इस मामले में राष्ट्र का सबसे बड़ा संस्थान है जो तकनीक एवं नई प्रजातियों का विकास करता है। कुछ हद तक इसका स्पान निजी कम्पनियाँ देती हैं परन्तु अभी भी इनकी भागीदारी नाम मात्र है।

संभावनाएँ एवं अनुकलता

आज के समय मशरूम उगाने का कार्य एक बंद एवं खड़ी जगह में होता है। कृषि विकास के लिए प्राकृतिक संपदा के संरक्षण एवं उत्पादन में बढ़ोत्तरी के लिए कृषि अवशेष, कृषि–इंडस्ट्री अवशेष के पुनः प्रसंस्करण करना अति आवश्यक है। हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 600 मिलियन टन कृषि अवशेष होता है जिसका अधिकतर भाग या तो प्राकृतिक रूप से सड़–गल जाता है इसका उपयोग मशरूम उत्पादन में आसानी से किया जा सकता है।

हमारे देश में जलवायु की विविधता की वजह से अलग–अलग फसलों तथा उनकी अनेकों किस्में को उगाते हैं। फसल अवशेष की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता है जो, मशरूम की खेती के लिए भरपूर जैव विविधता उपलब्ध करता है साथ ही सस्ते श्रम की उपलब्धता और बड़े बाजार की संभावनाएं आदि मशरूम उत्पादन के लिए असीम संभावनाएं प्रस्तुत करती हैं।

आवश्यकता है किसानो को मशरूम उत्पादन के प्रति जागरूक करने की और उनको प्रशिक्षित करने की। मशरूम उत्पादन के विभिन्न पहलुओं पर नित नए अनुसंधानों से किसानो का मार्गदर्शन एक आवश्यक पहलु है साथ ही इसके प्रसंस्करण एवं मूल्य संवंधर्न पर भी अधिकाधिक जोर दिया जाना आज की प्राथमिकता है। उद्यमिता विकास द्वारा इस व्यवसाय से युवाओं को जोड़कर मशरूम की खेती को भारत में बड़े पैमाने पर प्रचारित व प्रसारित करने की आवश्यकता है।

रागी की खेती

रामेती जांगिड़[1], सुनील कुमार[2], दिक्षा ताजन[1] एवं क्रांति पाटिल[1]
[1] नवसारी कृषि विश्वविद्यालय गुजरात
[2] राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान करनाल

रागी के फिंगर बाजरा, अफ्रीकन रागी, लाल बाजरा आदि के नाम से भी जाना जाता है। यह सबसे पुरानी खाने वाली और पहली अनाज की फसल है, जो घरेलू स्तर पर प्रयोग की जाती है। इसका असली मूल स्थान इथोपियाई उच्च ज़मीन है और यह भारत में लगभग 4000 साल पहले लायी गई थी। इसको शुष्क मौसम में उगाया जा सकता है। यह गंभीर सुखे को भी सहन कर सकती है और ऊंचाई वाले क्षेत्रों में भी उगाई जा सकती है। यह कम समय वाली फसल है और इसकी कटाई 65 दिनों में की जा सकती है। इसको बड़ी आसानी के साथ सारा साल उगाया जा सकता है। सारे बाजरे वाली फसलों में से यह सबसे ज्यादा उगाई जाने वाली फसल है। बाकी अनाज और बाजरे वाली फसलों के मुकाबले इसमें प्रोटीन और खनिजों की मात्रा ज्यादा होती है। इसमें महत्वपूर्ण अमीनो एसिड भी पाया जाता है। इसमें कैल्शियम (344 मि.ग्रा.) और पोटाशियम (408 मि.ग्रा.) की भरपूर मात्रा होती है। कम हिमोग्लोबिन वाले व्यक्ति के लिए यह बहुत लाभदायक है, क्योंकि इसमें लौह तत्व की काफी मात्रा होती है। गेहूँ, जौ एवं राई में पाए जाने वाले ग्लूटेन एक जीवनपर्यंत फूड एलर्जी सीलिएक के लिए भी जिम्मेदार होता है। रागी इत्यादि से बने खाद्य पदार्थ इस बीमारी में लाभकारी सिद्ध होते हैं।

जलवायु

तापमान : 20–30 डिगी सेंटीग्रेड और वर्षा : 100 से. मी.

मिट्टी

इसको बहुत किस्म की मिट्टी में उगाया जा सकता है, जैसे कि उपयुक्त दोमट से जैविक तत्वों वाली कम उपजाऊ पहाड़ी मिट्टी आदि। इसको उपयुक्त निकास वाली काली मिट्टी में भी उगाया जा सकता है, क्योंकि यह सोखित पानी को काफी हद तक सहन कर सकती है। रागी के लिए पी एच 4.5–8 वाली मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। पानी सोखने वाली मिट्टी को इसकी खेती के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

प्रसिद्ध किस्में और पैदावार

वी एल मडुआ 101, वी एल मडुआ 204, वी एल 124, वी एल 149 , वी एल 146, वी एल मडुआ 315 और वी एल मडुआ 324 और पहाड़ी इलाकों के लिए के एम और 65, पी ई एस आदि।

पी इ एस 400: यह 98–102 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 8 कुंतल प्रति एकड़ है। यह जल्दी पकने वाली किस्म है और भुरड़ रोग की प्रतिरोधक है।

पी इ एस 176: यह 102–105 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 8–9 कुंतल प्रति एकड़ है। इसके बीज भूरे रंग के होते है और भुरड़ रोग की प्रतिरोधक है।

के एम 65: यह 98–102 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 8–10 कुंतल प्रति एकड़ है।

वी एल 315: यह 105–115 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 10–11 कुंतल प्रति एकड़ है। यह गर्दन तोड़ और भुरड़ रोग को सहन कर सकती है।

वी एल 146: यह 95–100 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 9–10 कुंतल प्रति एकड़ है। यह भुरड़ रोग की प्रतिरोधक है।

वी एल 149: यह 98–102 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 10–11 कुंतल प्रति एकड़ है। यह बहुत अनुकूल, अगेती और भुरड़ रोग की प्रतिरोधक किस्म है।

वी एल 124: यह 95–100 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 10 कुंतल प्रति एकड़ है। यह बीजों और चारे के लिए बढ़िया किस्म है।

वी आर 708: यह सूखे को सहनयोग्य किस्म है। यह सारे प्रांतो में उगाई जा सकती हैं

अक्षय, पी इ एस 110, पी आर 202, जे एन आर 852, एम आर 374

खेत की तैयारी

1. फसल–चक्र : रागी की फसल के लिए फसल–चक्र बहुत ही महत्वपूर्ण विधि है। इसके साथ ज्यादा पैदावार मिलती है और ज्यादा रासायनिक खादें डालने की भी जरूरत नहीं होती। इसके साथ मिट्टी में उपजाऊपन भी बना रहता है। उत्तरी भारत में रागी की फसल के साथ चने, सरसों, तम्बाकू, जौ, अलसी आदि को फसल–चक्र के लिए अपनाया जाता है।

2. अंत–फसल : उत्तराखंड में, रागी और सोयाबीन को भर के आधार पर 90:100 प्रतिशत पर मिलाया जाता है और फिर बिजाई के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में रागी+सोयाबीन खरीफ में और जवी रबी में उत्तम और लाहेवन्द फसल कड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अंतः–फसल : फसलों में, 2–3 बार खेती गहरी जोताई करें ताकि नमी को संभाला जा सके। बिजाई से पहले खेत की दोबारा जोताई करें और समतल बेड तैयार करने के लिए ज्यादा डंडों वाली कसी का प्रयोग जरूरी है। बिजाई से पहले ज़मीन को हल्का नरम करें, इसके साथ मिट्टी में नमी की मात्रा को संभाला जा सकता है।

बिजाई का समय

ज्यादा बारिश वाले क्षेत्रों में, बढ़िया निकास वाली मिट्टी में इसको पनीरी लगाकर उगाया जा सकता है। इसको सूखे ओर सिंचित स्थितियों में उगाया जा सकता है। इसको देश के अलग–अलग हिस्सों में सारी फसलों की ऋतु में उगाया जा सकता है। 90 प्रतिशत से ज्यादा सूखे क्षेत्रों में यह खरीफ ऋतु में उगाई जाती है।

दूरी

जरूरत से ज्यादा या कम घने पौधे लगाने से पैदावार कम हो जाती है। उचित घनत्व के लिए, 25.15 सें.मी. का फासला (25 सें.मी. पंक्ति के बीच और 15 सें.मी. पौधों के बीच दूरी) रखें।

बीज की गहराई

बीज को 3–4 सें.मी. से कम गहराई पर ना बोयें।

बिजाई का ढंग

1. हाथों से छीटा मारकर

2. पंक्तिबद्ध

3. मशीन

4. पौध लगाकर

बीज की मात्रा

ज्यादा पैदावार लेने के लिए पौधों की उचित मात्रा 1.6–2 लाख है। और मुख्य खेत के लिए बीज की मात्रा 4 किलोग्राम प्रति एकड़ है। पौधों की उचित मात्रा के लिए खाली जगह भर दें और पौधों में सामान्य फासला रखें। बिजाई से 20–27 दिनों बाद, जब पौधे खेत में लगा दिए जाते हैं, तब पौधों में सामान्य फासला रखने के लिए अधिक पौध निकालनी जरूरी होता है। ऐसे ही जहाँ भी पौधों की मात्रा बराबर नहीं है, तब 20–25 दिन पुराने पौधों को खाली जगह भरने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

बीज का उपचार

बीजों को 6 घंटे के लिए पानी में (एक लीटर पानी में प्रति लीटर बीज) भिगोएं। फिर पानी निकाल दें और बीजों को दो दिन के लिए एक कपड़े में अच्छी तरह से बांध दें। दो दिन के बाद बीजों को कपड़े से निकल लें, इन पर अंकुरण के चिन्ह नज़र आयेंगे। इनको दो दिन के लिए छाँव में सुखाएं। इन बीजों को बिजाई के लिए प्रयोग करें। एजोस्पाइरिलम ब्रेसीलेन्स (नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरियम) और एस्पर्जिलस एवामोरी (फास्फेट घुलनशील फंगस) 25 ग्राम के साथ प्रति किलोग्राम बीज का उपचार लाभदायक होता है। अगर बीजों का रसायनों के साथ उपचार किया जाये तो, पहले रासायनिक उपचार को पूरा करें और फिर जैव उर्वरकों के साथ उपचार करें। इनमें से किसी एक फफूंदनाशी का प्रयोग करें।

खेत में पौध रोपण

उचित नमी वाले क्षेत्रों में पौध वाला ढंग अपनाया जा सकता है। यह सीधे ढंग से की गई बिजाई के ज्यादा पैदावार देता है। भारी बारिश के समय पौध वाली फसल पानी को जमा नहीं होने देती है।

पौध / पनीरी लगाने का ढंग

फफूंदनाशी / कीटनाशी का नाम	मात्रा (प्रति किलोग्राम बीज)
थीरम	4 ग्राम
कैप्टान	4 ग्राम
कार्बेन्डाजीम	2 ग्राम

बीजों को तैयार की गई नर्सरी में मई–जून के महीने में लगाएं। एक एकड़ में पौध लगाने के लिए 2 किलो बीजों की जरूरत होती है पौध के लिए 3–4 हफ्ते पुराने पौधे प्रयोग करें। पौधों को उखाड़ने से पहले, नर्सरी को पानी लगाएं। 2 पैकेट एजोस्पाइरिलम 300 ग्राम प्रति एकड़ को 40 लीटर पानी में मिला कर घोल तैयार करें और नये पौधों को जड़ वाले हिस्से से 15–30 मिनट के लिए भिगोएं और फिर मुख्य खेत में बीज दें। दो पौधे प्रति बेड पर 25.8 या 25.10 सें.मी. के दूरी पर और 2–3 सें.मी. की गहराई पर बीजाई करें। पौध लगाने के 3 दिन बाद खेत की सिंचाई करें। समय के अनुसार बारिश ना होने पर खेत को नियमित रूप से पानी लगाएं, जब तक पौधे पूरी तरह से जम नहीं जाते।

उर्वरक : एक एकड़ खेत के लिए 25 किलोग्राम नत्रजन, 12 किलोग्राम फास्फोरस तथा 12 किलोग्राम पोटाश की

आवश्यकता होती है। इसके लिए 52 किलोग्राम यूरिया, 80 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 14 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग करें।

बिजाई से एक महीना पहले 5–10 टन गोबर की खाद डालें। रागी की फसल खाद डालने के साथ, खास रूप से नाइट्रोजन और फासफोरस के साथ उत्तेजित होती है। मिट्टी में आवश्यक खादों की कमी को जानने के लिए मिट्टी की जाँच करें। अगर मिट्टी की जाँच उपलब्ध ना हो तो नःफाःपोः 25:12:12 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। फासफोरस और पोटाश की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई के समय डालें। बाकी बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा दो से तीन हिस्सों में (बिजाई से 30 और 50 दिन बाद) मिट्टी की नमी के अनुसार डालें।

खरपतवार प्रबंधन

अच्छी पैदावार के लिए खरपतवारों की रोकथाम करना बहुत जरूरी है। पंक्तियों में बोयी फसल को 2–3 गोड़ाईयों और एक हाथों द्वारा गोड़ाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवारों की प्रभावशाली रोकथाम के लिए खरपतवार के अंकुरण से पहले नदीन–नाशक जैसे कि ऑक्सीफ्लूरोफैन 1.25 किलोग्राम या आईसोप्रोटरॉन 400 ग्राम प्रति एकड़ कि स्प्रे करें। खरपतवारों के अंकुरण के बाद 2–4 डी सोडियम नमक 250 ग्राम प्रति एकड़ की स्प्रे बिजाई से लगभग 20–25 दिन बाद करें।

सिंचाई

जैसे कि रागी की फसल बारिश की ऋतु की फसल है, इसलिए इसको सिंचाई की जरूरत नहीं होती है। पर जुताई और फूल निकलने के समय, अगर बारिश लम्बे समय तक ना हो तो पौधे के अंकुरण और बढ़िया विकास के लिए और पैदावार के लिए सिंचाई जरूरी है। सिंचाई और जल निकासी के लिए मेंड़ और खालियां तैयार करें। यह फसल पानी के जमा होने को सहन कर सकती है, इसलिए जरूरत ना होने वाले पानी को निकालने के लिए पूरी सुरक्षा रखें।

कीट और रोकथाम

सिंचाई	सिंचाई का समय
पहली सिंचाई	बिजाई से तुरंत बाद
दूसरी सिंचाई	बिजाई से 30 दिन बाद
तीसरी सिंचाई	बिजाई से 70 दिन बाद
चौथी सिंचाई	बिजाई से 120 दिन बाद
पांचवी सिंचाई	बिजाई से 180 दिन बाद

सैनिक और कुतरा सुंडी: यह फसल के शुरू के समय पर हमला करती है। यह सुंडी शुरू के समय में पौधे के आधार को काट देती है। यह रात को हमला करती है और दिन के समय पत्थरों के निचली ओर या दरारों की निचली ओर छुप जाती है। यह सुंडी बार–बार बनती रहती है।

रोकथामः कुतरा सुंडी के अंडों की रोकथाम के लिए 3 हफ्ते लगातार ट्राइकोग्रामा पैरासिटोइड हफ्ते में एक बार डालें। जब इसके लक्षण दिखाई दें तो मैलाथियान 5 प्रतिशत 10 किलोग्राम प्रति एकड़ या क्यूनोलफॉस 1.5 प्रतिशत 250 मि. ली. प्रति एकड़ का बुरकाव करें।

चेपाः यह फसल पर किसी भी समय हमला कर सकते हैं। यह पत्तों के बीच और बालियों पर पाये जाते हैं। चेपा के हमले के समय पत्ते पीले होने लग जाते हैं। इसके छोटे कीट गोलाकार और लाल–भूरे रंग के होते हैं। बड़े कीट पीले होते हैं और इनकी टांगे हरे रंग की होती है।

रोकथामः अगर इसका हमला दिखाई दें तो, मिथाइल डेमेटन 25 ई सी 80 मि.ली. या डाइमेथोएट 30 ई सी 200 मि.ली. प्रति एकड़ को 100 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।

तने का सफेद केंचुआः इसका लार्वा तने के निचले हिस्से में पाया जाता है और नुकसान करता है। यह जड़ों को खाते हैं और गंभीर हमले से बीच वाली शाखाएं सूख जाती हैं और पीली पड़ जाती हैं। इसका लार्वा सफेद दूधिया रंग का होता है और इसका सिर पीला, जबकि बड़े कीटों का रंग गहरा भूरा होता है और पंख सफेद रंग के होते है।

रोकथामः अगर इसका हमला दिखाई दें तो, कार्बरील 50 डब्ल्यू पी 1 किलोग्राम प्रति एकड़ या डाईमेथोएट 30 ई सी 200 मि.ली. को प्रति 100 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।

बालियों का टिड्डाः यह दूध के दानों के तैयार होने पर हमला करते हैं। यह गुच्छों को खाते हैं और दानों को अंदर से खाकर उस पर जाला डाल देते हैं। इसके संतरी बालों वाले अंडे चमकीले सफेद रंग के होते हैं और गुच्छों में मिलते हैं। इसकी सुंडी भूरे रंग की होती है, जिसका सिर पीला रंग का और बालों वाली होती है। इसके कीट भूरे रंग के होते है, जिसके अगले पंख रेशेदार और पिछले पंख पीले होते हैं।

रोकथामः इनको आकर्षित करने के लिए दिन के समय रोशनी वाले यंत्रों का प्रयोग करें। फेरोमोन फूल निकलने के समय फीरोमोन कार्ड 5 प्रति एकड़ में लगाएं। गंभीर हमले की स्थिति में मैलाथियान 400 मि.ली. या कार्बरील 600 ग्राम को 100 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।

घास के टिड्डे: यह पत्ते खाते हैं। छोटे कीट सफेद रंग के होते हैं, जिसमें धारियाँ होती हैं और बड़े कीट हरे–भूरे रंग के होते हैं, जिनमे धारियां होती है।

रोकथामः कटाई के बाद पौधों के बचे–खुचे को निकाल दें और अच्छी तरह से सफाई करें। गर्मियों में कटाई के बाद जुताई करें, ताकि मिट्टी के अंदरूनी अंडे धूप के साथ नष्ट हो सकें। शुष्क और नमी वाली स्थितियों में इसकी रोकथाम के लिए एंटोमॉफ़्थोरा गरिल्ली डालें। अगर हमला दिखाई दें तो कार्बरील 50 डब्ल्यू पी 600 ग्राम प्रति एकड़ की स्प्रे करें।

पत्ता लपेट सुंडी: इसके साथ पत्ते लम्बाई के आकर में मुड़ जाते हैं पर लार्वा इनके अंदर रहता है। यह पत्तों को

नुकसान करती है, जिस कारण इस पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। मादा सुंडी पत्ते के दोनों तरफ 200 अंडे देती है। अंडों का रंग सफेद–पीला होता है। लार्वा हरे–पीले रंग का होता है, जिसका सिर भूरे या काले रंग का होता है। इसकी सुंडी गहरे भूरे रंग की होती है और मुड़े हुए पत्ते के अंदर पायी जाती है, जबकि बड़े कीट सफेद–पीले या सुनहरी–पीले रंग के होते हैं।

रोकथाम: इस फसल के साथ अनाज वाली फसले ना उगाएं। खेत और इसके आस–पास के इलाकों को साफ़ रखें। बिजाई के समय दूरी कम ना रखें। नुकसान हुए पत्तों को इकट्ठा करें और खेत को दूर ले जाकर नष्ट कर दें। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस 2.5 मि.ली. कुंल्फॉस 2.5 मि.ली. या ऐसेफेट 1 ग्राम या कार्बरील 1 ग्राम या कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर की स्प्रे करें।

भुरड़ रोग: गंभीर हमले के साथ पौधा सड़ा हुआ दिखाई देता है और फसल में गर्दन तोड़ भी देखा जा सकता है। यह ज्यादातर खरीफ़ की ऋतु में हमला करते है। अगर हमला नर्सरी में या बालियाँ बनने के समय हो तो पैदावार में बहुत कमी आती है।

रोकथाम: प्रतिरोधक किस्में उगाएं। बिजाई से पहले फफंदूनाशी जैसे कि कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम के साथ प्रति किलोग्राम बीज का उपचार करें। अगर इसके लक्षण दिखाई दें तो किसी एक फफंदूनाशी का स्प्रे करें, जैसे कि कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम प्रति एकड़। दूसरा और तीसरा स्प्रे फूल निकलने के समय 15 दिनों के अंतराल पर गर्दन या पत्तों पर हमला दिखाई देने पर करें। 50 प्रतिशत बालियाँ बनने पर पत्तों पर मैंकोजेब 400 ग्राम या स्यूडोमोनास फ्लूरोसेंस 0.2 प्रतिशत की स्प्रे करें।

चित्तकबरा रोग: इसके साथ शुरू में नाली वाले पत्तों पर छोटे काले धब्बे लगभग 45 दिन के बाद पाये जाते हैं। गंभीर हमले के समय सारा पौधा पीला दिखाई देता है। नुकसान हुए पौधे की जरुरतमन्द शाखाएँ निकाल आती है और पौधे को अनुपजाऊ कर देती हैं।

रोकथाम: अगर इसके लक्षण दिखाई दें तो नुकसान हुए पौधों को जड़ों से उखाड़ दें और दूर ले जाकर नष्ट कर दें। मिथाइल डेमेटन 25 ई सी 200 मि.ली. प्रति एकड़ की स्प्रे करें। जरूरत पड़ने पर दूसरा स्प्रे 20 दिनों के अंतराल पर करें।

फसल की कटाई

आमतौर पर फसल 120–135 दिनों में पक जाती है, पर इसका समय प्रयोग की जाने वाली किस्म पर निर्भर करता है। कटाई दो बार की जानी चाहिए, बालियों को दराती के साथ काट लें और पौधे के बाकी हिस्से को ज़मीन के साथ में से काट लें। बालियों का ढेर बनाकर धूप में 3–4 दिनों के लिए सुखाएं। अच्छी तरह सुखाने के बाद थ्रेशिंग करें। कुछ जगह पर पूरा पौधा बालियों समेत काट लिया जाता है और फिर धूप में 2–3 दिन सुखाने के बाद थ्रेशिंग कर ली जाती है।

उपयोग

रागी का प्रयोग शराब के कच्चे माल, बच्चो के भोजन, दूध गहरा बनाने के लिए और दूध वाली बिवरेज़ बनाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। देश के कुछ हिस्सों में उबालु ड्रिंक या बियर भी इसी से तैयार की जाती है।

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी
को काम में लाना
देश की एकता और उन्नति के
लिए आवश्यक है।

– महात्मा गाँधी

वर्तमान परिदृश्य में भारतवर्ष की देशज पशुधन विविधता एवं उनका संरक्षण

अविनाश सिंह, सोनिका अहलावत, रेखा शर्मा एवं मधुसूदन टांटिया
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला देश है तथा पशुपालन व्यवसाय भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है तथा यह लगभग दो तिहाई ग्रामीण जनसंख्या के जीवनयापन का आधार है। पशुपालन व्यवस्था मनुष्यों को दूध, अंडे तथा मांस उत्पादन के रूप में पोषक खाद्य पदार्थ तो उपलब्ध कराता ही है साथ ही यह कृषि के लिए उपयोगी

भारवाही शक्ति, खाद घरेलु ईंधन तथा पशुओं की खाल से बने उत्पाद के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराता है जो कि सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्त्व रखते हैं। उपरोक्त उत्पादों के आधार पर ही पशुपालन व्यवसाय ग्रामीण आय एवं रोजगार का मुख्य स्रोत है। पशुधन ग्रामीण जनसंख्या के लिए प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा, आकाल एवं अन्य आपदाओं के समय सर्वश्रेष्ठ सुरक्षित निधि का कार्य करता है। वर्ष 2013–14 के आंकड़ों के अनुसार पशुधन व्यवसाय के द्वारा 137.7 मिलियन टन दूध, 74.75 बिलियन अंडे, 47.9 मिलियन कि.ग्रा. ऊन तथा 6.2 मिलियन टन मांस का उत्पादन किया गया जिसका कुल मूल्य वर्ष 2012–13 के परिपेक्ष्य में लगभग 5,37,535 करोड़ रुपये था जो कि कृषि, मत्स्य एवं वानिकी के कुल उत्पादन का लगभग 25.63 प्रतिशत वर्तमान मूल्यों में एवं 26.02 स्थिर मूल्यों (वर्ष 2004–05) में रहा, वर्ष 2012–13 के दौरान वर्तमान मूल्यों के आधार पर पशुधन व्यवसाय का कृषि क्षेत्र के जी.डी.पी. में 27.25 प्रतिशत का योगदान रहा तथा कुल जी.डी.पी. में 4.1 प्रतिशत का योगदान रहा। पशुधन उत्पादन में कुल उत्पादन का लगभग दो तिहाई 65 प्रतिशत दुग्ध का तथा अन्य 19.8 प्रतिशत व 3.8 प्रतिशत मांस एवं अण्डों का योगदान है।

भारतीय परिदृश्य में पशु आनुवंशिक संसाधन

भारतवर्ष परम्परागत रूप से ही पशु जैवविविधता का मुख्य केंद्र रहा है तथा प्राचीन काल से ही गाय, भैंस, बकरी, भेड़, सूअर, ऊंट, घोड़े, गधे, याक तथा मिथुन के रूप में विभिन्न क्षेत्रों में पशुपालन व्यवसाय होता रहा है। कुक्कुटपालन के क्षेत्र में मुर्गीपालन के अलावा अन्य प्रजातियाँ जैसे कि बत्तख, गीज, कोयल, टर्की तथा तीतर आदि भी भारत वर्ष में कुक्कुट उत्पादन के रूप में उत्पादित किए जाते हैं।

भारतवर्ष विश्व में अपनी सबसे बड़ी जैव विविधता के केंद्र के रूप में जाना जाता है। भारतवर्ष की इस विशाल जैवविविधता का विस्तार एक बहुत बड़े भौगोलिक, पारिस्थितिक एवं विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले क्षेत्रों में हैं तथा यह भारतवर्ष की ग्रामीण जनसंख्या के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करता है। वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार भारतवर्ष की कुल पशुधन संख्या लगभग 512 मिलियन है जिसमें कि 191 मिलियन गायें, 109 मिलियन भैंसे, 65 मिलियन भेड़ें, 135 मिलियन बकरियाँ तथा 10 मिलियन सूअर हैं। इसके आलावा लगभग 729 मिलयन कुक्कुट जनसंख्या है। अगर अंतिम दो पशुगणनाओं (वर्ष 2007 एवं 2012) की तुलना की जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि गाय, भेड़ एवं बकरी की पशु संख्या में क्रमशः 0.8, 1.8 एवं 0.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की गिरावट दर्ज की गयी है। साथ ही भैंस एवं कुक्कुट की पशु संख्या में क्रमशः 0.6 एवं 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। भारतवर्ष में देशज पशुओं की बहुत बड़ी संख्या है इसके अलावा कम संख्या में संकर पशु भी है। जोकि देशज एवं विदेशी पशुओं के संकर से बने हैं एवं बहुत ही कम मात्रा में विदेशी पशु भी हैं जोकि केवल प्रतिष्ठित व्यवसायिक एवं शोध प्रक्षेत्रों में पाले जाते हैं। वर्तमान समय में भारतवर्ष में पशुधन एवं कुक्कुट की 160 पंजीकृत नस्लें हैं। जिनमें से 40 गायों की, 13 भैंसों की, 26 बकरियों की, 42 भेड़ों की, 6 घोड़ों की, 9 ऊंटों की, 6 सूकरों की, 1 गधे की एवं 17 कुक्कुट प्रजाति की नस्लें हैं। इसके आलावा अभी भी बहुत सी देशी प्रजातियों की नस्लों के पंजीकरण का कार्य शेष है तथा प्रजातियों जैसे की खच्चर, याक, मिथुन, बतख एवं कोयल आदि की नस्लों के पंजीकरण की भी आवश्यकता है।

भारतीय पशुधन विविधता संरक्षण के गुण

- पशुधन व्यवसाय में सभी पालतू प्रजातियों की विशाल जैवविविधता भारत वर्ष में उपलब्ध है।
- सभी पालतू प्रजातियों की नस्लों की विशाल संख्या जो की एक विशेष कृषि जलवायु के अनुकूल है।
- गाय की नस्लों में विविधतापूर्ण दुधारू, भारवाही एवं द्वेध प्रकार की नस्लें भारवाही नस्लें कृषि कार्यों में अपने योगदान से जैविक ईंधन कि बचत में योगदान करती हैं।
- भारतीय पशुधन की विभिन्न नस्लें विभिन्न जलवायु परिस्थितियों जैसे की शुष्क, आर्द, गर्म एवं ठंडी जलवायु

के अनुकूल हैं तथा ये विभिन्न नस्लें विभिन्न प्रकार की परजीवी एवं अन्य बीमारियों के प्रतिरोधी भी हैं।

- भारतीय पशुधन की नस्लें निम्न गुणवत्ता के चारे जैसे कि भूसा, सुखा चारा इत्यादि को खाकर भी उत्पादन करने की क्षमता रखती है।
- भारतीय गाय की नस्लें उच्च गुणवत्ता का ए2 प्रकार का दुग्ध उत्पादन करती है, जोकि विदेशी गायों द्वारा उत्पादित ए1 प्रकार के दुग्ध से अधिक पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक है।
- भारतवर्ष में भैंसो की सर्वश्रेष्ठ नस्लें उपलब्ध हैं जोकि पशुधन व्यवसाय में एक बहुउद्देशीय पशु है।
- भारतवर्ष में पशुधन जैव विविधता के संरक्षण के लिए केन्द्रीय शोध संस्थनों, प्रदेशिक कृषि एव पशुपालन विश्वविधालयों एवं अन्य गैर सरकारी संस्थाओं का मजबूत तंत्र उपलब्ध है जो कि पशुधन विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

भारतीय पशुधन विविधता संरक्षण के दोष

- भारतवर्ष में वर्तमान में विभिन्न प्रजातियों की नस्लवार पशुगणना का आभाव है।
- भारतीय नस्लों का उत्पादन विदेशी नस्लों की तुलना में काफी कम है ।
- पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रजनन सम्बन्धी योजनाओं का सही प्रकार से क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है।
- पशु संख्या घनत्व की तुलना में चारा तथा चारागाहों की उपलब्धता काफी कम है।
- कृषकों के स्तर पर पशुओं की वंशावली से संबंधित आंकड़ों का विवरण उपलब्ध नहीं है।
- कृत्रिम गर्भधान के लिए उच्च गुणवत्ता के नरों का आभाव है।
- पशुधन विविधता संरक्षण हेतु अभी पर्याप्त प्रयास नहीं किए जा रहे हैं।
- स्थानीय स्तर पर संरक्षण हेतु ब्रीड़ सोसायटी एवं अन्य इस प्रकार की संस्थाओं का अभाव है।
- पशुधन उत्पादों के लिए पर्याप्त विपणन व्यवस्था का आभाव है।
- पशुधन मालिकों एवं कृषकों के लिए नस्लों के पंजीकरण हेतु आवश्यक क़ानूनी सहायता का आभाव है।

भारतीय पशुधन विविधता संरक्षण में अवसर

- भारतीय पशुधन व्यवसाय कृषि का अभिन्न अंग है।
- भारतीय पशुधन व्यवसाय का सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान है।
- भारतीय पशुधन व्यवसाय ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार के अवसर प्रदान करता है।
- भारतीय पशुधन की नस्लें कम गुणवत्ता के चारे में अच्छा उत्पादन करती है एवं भारतवर्ष की बड़ी जनसंख्या के भरण–पोषण में सहायता करती है।
- पशुधन के जननद्रव्य जैसे कि भ्रूण/वीर्य आदि का विदेशों में निर्यात किया जा सकता है।
- भारतीय पशुधन में बड़ी संख्या में आनुवंशिक विविधता जिसका उपयोग पशुओं की उत्पादकता को बढ़ाने में किया जा सकता है।

भारतीय पशुधन विविधता संरक्षण में भय

- अनियमित प्रजनन, प्रवासन एवं पशुवध के कारण उच्च कोटि का जन्नद्रव्य नष्ट हो रहा है।
- अव्यवस्थित प्रजनन के कारण पशुधन का आनुवंशिक तनुकरण हो गया है।
- पशुधन का गैर क़ानूनी रूप से दूसरे देशों को निर्यात किया जा रहा है।
- उत्पादन तंत्र में बदलाव जिसके कारण एक ही प्रकार की नस्ल के पशुधन को बढ़ावा मिल रहा है।
- जनसंख्या वृद्धि के कारण चरागाहों की संख्या एवं क्षेत्रफल में लगातार कमी आ रही है।

भारतीय परिपेक्ष्य में पशुधन विविधता का संरक्षण

पशुधन विविधता संरक्षण एक बहुदिशात्मक प्रक्रिया है जिसमें पशुधन का संरक्षण तो किया जाता है साथ ही पशुधन की नस्लों की उन्नति एवं उचित प्रबंधन की भी व्यवस्था होती है कुल मिलाकर पशुधन संरक्षण का मुख्य उद्देश्य पशुधन संसाधन के नवीनीकरण, विस्तार एवं वहनीय उपयोग के द्वारा मानव जाति की वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करना है।

भारतवर्ष में पशुधन संरक्षण एक जटिल प्रक्रिया है, क्योंकि भारतीय पशुधन विविधता एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई है तथा भारतीय कृषक संरक्षण के महत्त्व को उचित प्रकार से समझ नहीं पा रहा है जिस कारण से वह पशु प्रजनन सम्बन्धी वंशावली के आंकड़ों का भी लेखा–जोखा नहीं रखता है। नई प्रौधोगिकी के आने के कारण बहुत सी पशुधन नस्लों का आर्थिक महत्त्व कम हो रहा है जिस कारण से उनका धीरे–धीरे क्षरण हो रहा है। भारतीय पशुधन की विभिन्न नस्लों के उत्पादों में भी बहुत विविधता है तथा ये उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी हैं, अतः इन

उत्पादों की विपणन प्रणाली को विकसित कर इन नस्लों के आर्थिक महत्त्व को बढ़ाया जा सकता है जोकि इन नस्लों के संरक्षण में सहायक होगा।

पशुधन विविधता का संरक्षणः मुख्यतः दो विधियों द्वरा किया जा सकता हैं।

1. इन सीटू संरक्षण

2. एक्स सीटू संरक्षण

1. इन–सीटू संरक्षणः इस विधि में प्राथमिक रूप से अल्प अवधि के लिए पशुओं की विविधता को सक्रिय प्रजनन के द्वारा सर्वोष्ठ उपयोग किया जाता है तथा इस विविधता की दीर्घावधि के लिए कायम रखा जाता है। भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल के द्वारा इन–सीटू संरक्षण विधि को विकसित किया गया है तथा इसके लिए यह संस्थान कृषकों को तकनीक एवं प्रेरणा उपलब्ध करा रहा है। इस विधि में वीर्य उत्पादन हेतु प्रजनन उपयोगी नरों की उत्कृष्ट मादाओं से प्राप्ति हेतु मुक्त नाभिक प्रजनन प्रणाली का नाभिक झुंड प्रत्येक नस्ल हेतु अलग–अलग स्थापित किया जाता है।

2. एक्स सीटू संरक्षणः पशुधन संरक्षण की विधि जिसमें पशुधन का संरक्षण उनके उद्‌गम स्थल से दूर अन्य स्थान पर वैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाता है उसे एक्स–सीटू संरक्षण विधि कहते हैं।

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा विभिन्न पशुधन के जन्नद्रव्य का संरक्षण इस विधि के द्वरा किया गया है। विभिन्न पशुधन की लगभग 44 नस्लों जिनमें गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, याक व घोड़े शामिल हैं। इनके लगभग 311 प्रजनन योग्य नरों की लगभग 1,29,174 हिमीभूत सीमन स्ट्रा को राष्ट्रीय जीन बैंक में संरक्षित किया गया है। इसके अलावा लगभग 130 विभिन्न नस्लों का डी.एन.ए एवं भैंस की मेमरी ग्लैंड ई.एस. टी. लाइब्रेरी का भी संरक्षण किया गया है तथा विलुप्तप्रायः प्रजातियों की सोमेटिक कोशिकाओं के भी संरक्षण के प्रयास इस विधि के द्वारा किये जा रहे हैं।

प्रजनन योग्य उच्च गुणवत्ता के नरों द्वारा वीर्य उत्पादन हेतु उनके संरक्षण एवं उपयोग हेतु दो विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

1. संगठित प्रक्षेत्र गृह में संरक्षण

2. पशुधन मालिकों के साथ मिलकर संरक्षण

प्रथम विधि में 20–25 उच्च गुणवत्ता के असंबंधित नरों को उनके उद्‌गम स्थल से दूर संगठित प्रक्षेत्र गृहों में रखा जाता है तथा कम से कम 15 नरों के द्वारा उत्पादित 2000 सिमन स्ट्रा प्रति नर गाय, भैंसों तथा अन्य के लिए तथा 1000 सीमन स्तर प्रति नर भेड़ व बकरी के लिए राष्ट्रीय जीन बैंक में संरक्षित किये जाते हैं तथा प्रान्तीय संस्थाओं की सहायता से उत्पादित अन्य सीमन स्ट्रा का उपयोग नस्लों के उत्थान के लिए भी किया जा सकता है। दूसरी विधि में कृषकों द्वारा आधारित लगभग 100 असंबंधित उच्च गुणवत्ता की मादाओं को पहचान कर पंजीकृत किया जाता है तथा इनसे जन्म लेने वाले नरों का उपयोग प्रजनन हेतु किया जाता है।

भारत वर्ष में परम्परागत रूप से समुदाय आधारित स्थानीय नस्लों का संरक्षण उस विशेष समुदाय की आवश्यकता एवं भौगोलिक कारणों से होता रहा है। इस समुदाय विशेष नस्ल संरक्षण विधि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। जैसे की उचित प्रशिक्षण एवं उनकी अन्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उचित प्रबंधन किया जा सकता है।

भारतवर्ष अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे कि CBD WTOTRIPS का सदस्य है जो कि इस बात पर जोर देता है कि जैविक संसाधनों का प्रलेखन बहुत ही आवश्यक है। जिस कारण से पशुधन विविधता के संरक्षण में सहायता मिलती है। अतः एक राष्ट्रीय प्रलेखन तंत्र जोकि भारतीय पशु आनुवंशिक संसाधन सूचना तंत्र का एक हिस्सा है का विकास भा.कृ.अनु.प–राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो के द्वारा किया गया है। जो कि पशुधन की नस्लों से संबंधित विभिन्न सूचनाओं जैसे कि प्रत्येक नस्ल के गुण, संख्या, चित्र, उपयोग, भौगोलिक वितरण, उत्पादन, प्रजनन तथा वृद्धि के मापदण्ड इत्यादि के आधार पर डाटाबेस तैयार करता है जोकि पशुधन विविधता संरक्षण हेतु बहुत आवश्यक है।

ऊँट का दूधः एक प्राकृतिक, प्रभावशाली एवं औषधीय आहार

हिमानी शर्मा, रेणुका नेहरा, सोनिका अहलावत, रेखा शर्मा एवं एम. एस. टांटिया
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल

विश्व स्तर पर ऊँटों की आबादी 47 दशों में फैली हुई है जिसका 83 प्रतिशत भाग पूर्वी एवं उतरी अफ्रीका में तथा शेष भारतीय उपमहादीप एवं मध्य पूर्व एशिया में पाया जाता है। ऊँटों की अनुमानित संख्या लगभग 26.99 लाख है (तालिका 1)।

सबसे अधिक ऊँटों की संख्या 7.10 लाख सोमालिया में है।

वर्ष	आबादी (लाख)	प्रतिशत अन्तर (1961–2012)
1961	0.90	–
1966	1.00	(+) 11.11
1972	1.10	(+) 10.00
1977	1.10	–
1982	1.08	(–) 1.82
1987	1.00	(+) 7.41
1992	1.03	(+) 3.00
1997	0.91	(–) 11.65
2003	0.63	(–) 30.77
2007	0.52	(–) 17.50
2012	0.40	(–) 22.63

ऊँटों की संख्या के आधार पर भारत द्वितीय स्थान पर है। जहाँ पर 3.8 लाख ऊँट हैं। जिसमें मुख्य रूप से राजस्थान (81.41 प्रतिशत), गुजरात (7.6 प्रतिशत), हरियाणा (4.7 प्रतिशत), बिहार (2.2 प्रतिशत) तथा उत्तर प्रदेश (2 प्रतिशत) सम्मिलित है (तालिका 2)।

रेगिस्तान की कठिन परिस्थितियों में ऊँट की उत्पादन क्षमता किसी भी अन्य प्रजाति की तुलना में सबसे अधिक होती है, जबकि उनकी खाद्य आवश्यकताएँ सामान्य है। मवेशियों के दूध की तुलना में, ऊँट के दूध में वसा, प्रोटीन, एवं ठोस पदार्थ कम मात्रा में होते हैं। जबकि कुल लवण तथा रक्षात्मक प्रोटीन उच्च प्रतिशत में पाए जाते हैं। विश्व

वर्ष	विश्व	अफ्रीका क्षेत्र	एशिया क्षेत्र (भारत)
1961	12.93	8.63	4.02 (09)
1971	16.82	12.41	4.17 (1.1)
1981	18.41	14.00	4.17 (1.08)
1991	19.32	14.73	4.33 (1.03)
2001	20.78	17.11	3.66 (063)
2013	26.99	23.00	3.98 (04)

के विभिन्न क्षेत्रों मे ऊँट का ताजा एवं किण्वित दूध कई बिमारियों के ईलाज के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

ऊँट के दूध को असाधारण औषधीय गुणों के लिए मान्यता प्राप्त है। यह कैंसर समेत कई बिमारियों के विरुद्ध औषधीक क्षमता के लिए जाना जाता है। दीर्घकाल से ऊँट का दूध बिमारियों की विस्तृत श्रृंखला में अपने लाभकारी प्रभाव के कारण उपयोग किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए इंसुलिन निर्भर मधुमेह मेलिटस (आई.डी.डी.एम.), शिशु दस्त, हेपाटाइटिस, एलर्जी, लैक्टोज असहिष्णुता, ऑटिज्म और शराब के कारण हुई यकृत क्षति इत्यादि। इसके अतिरिक्त ऊँट के दूध में लाइसोजाइम, लैक्टोफेरिन तथा लैक्टोपेरॉक्सिडेज जैसे महत्वपूर्ण प्रतिरक्षित अणु भी होते हैं। ऊँट के दूध में विभिन्न बीमारियों जैसे ड्रोप्सी, पीलिया, तपेदिक, अस्थमा, एनीमिया तथा खाद्य एलर्जी आदि के विरुद्ध औषधिक गुण होते हैं।

ऊँट के दूध के गुण

1. भौतिक गुण

ऊँट का दूध सामान्य दूधिया गन्ध के साथ रंग में अपारदर्शी सफेद तथा स्वाद में नमकीन मीठा होता है, जो मुख्य रूप से चराई क्षेत्र में उपलब्ध चारे या वनस्पत्ति के प्रकार पर निर्भर करता है। ऊँट के ताजे दूध का पी.एच. 6.4 से 6.7 तक होता है, जो कि भेड़ के दूध के समान एवं मवेशी के दूध से कम है।

2. शेल्फ लाईफ

ऊँट के कच्चे दूध की शेल्फ लाइफ 37 डिग्री सेल्शियस तापमान पर एक हफ्ते से ज्यादा की होती है। भारत जैसे देश में जहाँ 24 घंटे बिजली की व्यवस्था नहीं है तथा गरीब लोग जो कि फ्रिज खरीदने में सक्षम नहीं है, उनके लिए ऊँट का दूध एक अच्छा विकल्प है। कच्चे दूध में लैक्टोपेरॉक्सिडेज की गतिविधि अधिक होती है एवं पॉस्चुराइज्ड दूध में अनुमानित सीमा से नीचे होती है। सूक्ष्मजैविक गुणवत्ता के मूल्यांकन से संकेत मिलता है कि ऊँट का दूध गाय के दूध के समान ही अंतराष्ट्रीय मानकों पर खरा उतरता है। चार लैक्टिक उपभेदों के साथ किण्वन के दौरान पाया गया कि ऊँट के दूध की अम्लता की विकास दर मवेशी दूध की अपेक्षा धीमी है।

3.सकल रासायनिक संरचना

भारत सहित विश्व के विभिन्न हिस्सों में ऊँट के दूध की संरचना का मूल्यांकन किया गया है जिसमें व्यापक भिन्नता है। हालांकि, इन विभिन्नताओं के कारण हो सकते हैं जैसे

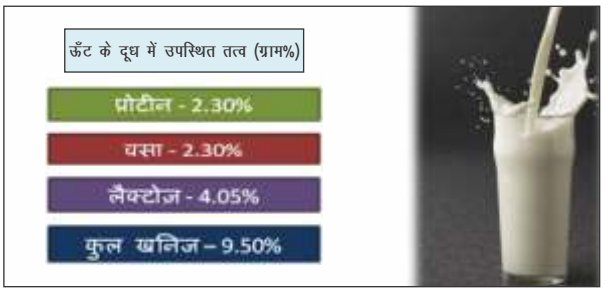

कि विश्लेष्णात्मक माप प्रक्रियाएँ, भौगोलिक क्षेत्र, खाने–पीने की स्थिति, विभिन्न नस्लों से लिए गए नमूने, स्तनपान का चरण एवं आयु इत्यादि।

(क) प्रोटीन–दूध में औसत प्रोटीन की सर्वाधिक मात्रा कच्छी नस्ल में, उसके बाद बीकानेरी तथा जैसलमेरी नस्ल में दर्ज की गई है। केसीन प्रोटीन के लिए भी इसी प्रकार की प्रवृति देखी गई है। ऊँट के दूध की कुल प्रोटीन मात्रा 2.1 से 4.9 प्रतिशत तक दर्ज है। यह कुछ प्रसंस्करण विशेषताओं, ऊष्मीय उपचार तथा केसिन मिसेल्स की जमावट को प्रभावित करता है।

मट्ठा प्रोटीन कुल प्रोटीन का 20–25 प्रतिशत है तथा ऊँट के दूध में इसकी मात्रा 0.63 से 0.80 प्रतिशत पाई जाती है। तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार ऊँट तथा गाय के दूध के मट्ठा की प्रोटीन में विभिन्नताएँ दर्शाते हैं। जो दो प्रकार की मट्ठा प्रोटीन में से एल्फा–लैक्टोएलव्यूमिन प्रमुख है तथा बीटा–लैक्टोग्लोबूलिन कम मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ऊँट के दूध में सीरम एलब्यूमिन, लैक्टोफेरिन, इक्यूनोग्लोबूलिन तथा पेप्टाइडोग्लाइकन की पहचान करने वाले प्रोटीन इत्यादि पाए जाते हैं।

(ख) वसा–ऊँट के दूध की कुल वसा 1.2 और 5.4 के बीच लगभग 3.29 प्रतिशत से पाई जाती है जो कि पोषण के स्तर, नस्ल तथा मौसम आदि पर निर्भर करता है। जैसलमेरी नस्ल में, बीकानेरी तथा कच्छी नस्ल की तुलना में अधिक वसा पाई जाती है। वसा तथा प्रोटीन के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया है। ऊँट के दूध में विद्यमान वसा ग्लोब्यूल्स आकार में छोटे होते हैं। परन्तु मवेशी के दूध की तुलना में ऊँट के दूध की पाचन क्षमता अधिक होती है। ऊँट के दूध की वसा में कैरोटिन की मात्रा मवेशी दूध की तुलना में कम होती है। वसा मनुष्यों में सीसा लिपिड को कम करती है तथा लिपिड से सम्बंधित हदय एवं रक्त वाहिकाओं की बिमारीयों को भी 30–50 प्रतिशत तक कम करने में सहायक है।

(ग) दूध शर्करा (लैक्टोज)–सभी स्तनधारियों के दूध में, लैक्टोज व मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट होता है। ऊँट के दूध में इसकी मात्रा 2.40 प्रतिशत से 58 प्रतिशत तक होती है। विभिन्नता का कारण चराई क्षेत्र में पाए जाने वाले शुष्क पौधों तथा झाड़ियों की विविधता हो सकता है।

(घ) खनिज पदार्थ–ऊँट का दूध क्लोराइड का समृद्व स्रोत है जिसका कारण ऊँट के द्वारा खाए जाने वाली बबूल तथा एटिप्लेक्स की झाड़ियाँ हैं। जिनमें नमक की मात्रा अधिक होती है। ऊँट के दूध का स्वाद नमकीन होने का यह एक कारण हो सकता है। भिन्न–भिन्न नस्लों के ऊँटों में सूक्ष्म खनिज पदार्थ की मात्रा भिन्न होती है। जिसका कारण आहार, विश्लेश्णात्मक प्रक्रिया तथा पानी का सेवन हो सकता है।

(ड़) विटामिन्स–पानी में घुलनसील विटामिन्स में से ऊँट के दूध में नियासीन और विटामिन–सी की मात्रा अधिक होती है। मवेशी की तुलना में ऊँट के दूध में 3 से 5 गुणा अधिक विटामिन–सी पाया जाता है। कच्चे दूध में इसकी मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। जो कि शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की कठिन परिस्थितियों में महत्वपूर्ण विकल्प है। ऊँट के दूध में विटामिन–बी1, बी2, फोलिक एसिड तथा पेन्टोथेनिक एसिड कम मात्रा में पाए जाते हैं जबकि विटामिन–बी6, बी12 की मात्रा गाय के दूध के समान होती है।

यू.एस.डी.ए. की 2009 की रिपोर्ट के अंर्तगत 250 मि.लि. ऊँट का दूध एक व्यस्क को दैनिक सेवन मानकों के अनुसार लगभग 15.5 प्रतिशत कोबालामिन (बी–12), 8.25 प्रतिशत राइबोफ्लेविन (बी–2), विटामिन–ए का 5.25 प्रतिशत, एस्कोरबिक एसिड (सी) का 10.5 प्रतिशत, थाइमिन (बी–1) और पायरोडोक्सिन (बी–6) प्रदान करता है।

(च) दूध एन्जाईम, रक्षात्मक प्राटीन तथा हॉरमोन्स–ऊँट के दूध में बहुतायत रक्षात्मक प्रोटीन उपस्थित होते हैं। जिसमें मुख्य तौर पर रोगाणु विरोधी प्रोटीन जैसे कि लाइसोजाइम, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपेरॉक्सीडेज तथा पेटाइडो ग्लाइकोजन पहचान प्रोटीन (पी.जी.आई.पी.) शामिल है। पी.जी.आई.पी. गाय के दूध में नहीं पाया जाता। इस एन्जाईम में व्यापक रोगाणु विरोधी गतिविधि होती है जो कि कैंसर मेटास्टेसिस को नियंत्रित करने की क्षमता रखती है। गाय के कोलोस्ट्रम की अपेक्षा ऊँट के कोलोस्ट्र में लैक्टोफेरिन और लाइसोजाइम की उच्च सांद्रता होती है।

(छ) कार्यात्मक गुण और औषधीय उपयोग–मानव पोषण के लिए गाय के दूध के विकल्प में ऊँट के दूध को विश्व के विभिन्न हिस्सों में लंबे समय से अपनाया जाता रहा है। यह प्रमाणित है कि ऊँट के दूध में रक्षात्मक प्रोटीन होते हैं। जिनमें प्रतिरक्षा बढ़ाने की क्षमता होती है। ऊँट के दूध में कई जैव सक्रिय घटकों के माध्यम से ये सम्भावित स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। ये घटक या तो ऊँट के दूध में स्वाभाविक रूप से मौजूद होते हैं या प्रोटियोलाइटिक एन्जाईम एवं हाइड्रोलाइटेज का उपयोग करके लैक्टिक अम्ल के साथ किण्वन के द्वारा उत्पन करवाए जाते है।

(ज) एन्टीवायरल गतिविधि–रोटा वायरस दुनिया के अधिकांश हिस्सों में शिशओं, बच्छड़ों में गैर जीवाणु से गैस्ट्रोऐंटरिटिस का कारण हैं। सूत्रों के अनुसार ऊँट के दूध से प्राप्त इम्यूनोग्लोबुलिन (आईजी–जी) और स्रावित

इक्यूनोग्लोबिनए (एस.आई.जी.ए.) मवेशी एवं मानव से प्राप्त रोटा वायरस के विरूद्ध प्रभावशाली है।

(झ) एन्टीबैक्टीरियल गतिविधि–ऊँट का दूध विभिन्न श्रेणी के रोगाणुओं को बाधित करता है। इसमें उपस्थित लैक्टोफेरिन कोलोन कैंसर के प्रसार को रोकने की क्षमता रखता है तथा इसमें उपस्थित इक्यूनोग्लोबुलिन की मात्रा गाय अथवा भैंस की तुलना में अधिक पाई जाती है।

क्षय रोगी के लिए ऊँट का दूध एक सहायक

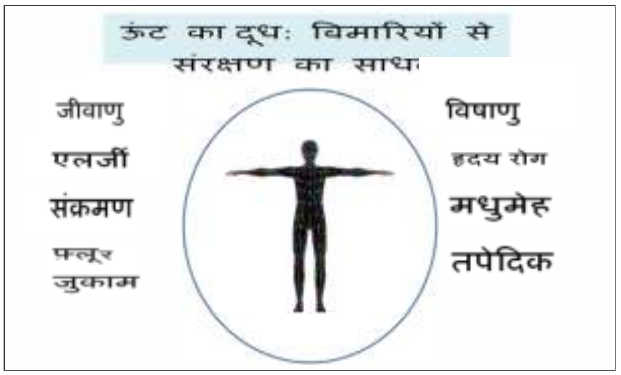

विभिन्न प्रकार के मानव तपेदिक जैसे एम्पीमा एवं विभिन्न औषधी प्रतिरोधी (एम.डी.आर.) रोगों के उपचार के लिए ऊँट के दूध का इस्तेमाल किया गया है। ऊँट के दूध का सेवन करने वाले एम.डी.आर. तपेदिक के रोगियों में अध्ययन की गई इम्यूनोग्लोबुलिन की स्थिति के आधार पर यह पाया गया कि आइजी–जी तथा आइजी–ए संक्रमण स्तर को कम करने में सहायक थी। अतः सामान्य चिकित्सा के साथ–साथ ऊँट के कच्चे दूध का इस्तेमाल तपेदिक के शीघ्र उपचार में सहायता करता है तथा एक पौष्टिक पूरक के रूप में भी कार्य करता है।

मधुमेह प्रंबधन में सहायक

अर्ध–सीस्टीन, इन्सुलीन जैसे उच्च सान्द्रता वाले पदार्थ ऊँट के दूध में पाए जाते हैं। जो कि मधुमेह के उपचार में सहायक हैं। यह समीक्षा की जाती है कि रक्त शर्करा तथा इन्सुलिन की आवश्यकता को कम करने में ऊँट का दूध शक्तिशाली हैं। दीर्घकालिक ग्लाइसेमिक नियंत्रण में सुधार करने के लिए तथा टाईप–1 मधुमेह के मरीजों में महत्वपूर्ण भूमिका प्रबंधन के लिए ऊँट का दूध अत्यंत उपयोगी हैं।

ऊँट का दूध

मवेशियों के दूध से एलार्जिक लोगों के लिए एक वरदान

ऊँट का दूध उन बच्चों के लिए एक नया प्रोटीन स्रोत है जो कि मवेशियों के दूध से एलर्जिक होते हैं। ऊँट का दूध अपेक्षाकृत कम संवेदनशील प्रतिक्रियाओं का कारण होता है, क्योंकि ऊँट तथा मनुष्य के दूध में पाए जाने वाले प्रोटीन की मात्रा लगभग समान होती है।

ऊँट के दूध से बने उत्पादन

ऊँट के दूध से बने विभिन्न उत्पादों में मुलायम पनीर, किण्वित दूध, दही, आइसक्रीम और मक्खन सम्मिलित है। ऊँट के पनीर का वाणिज्यिक उत्पादन सक्रिय ऊँट चिमोसिन के उपयोग द्वारा भी संभव है जिसे पिचिया पास्टोरिस नामक जीवाणु में अभिव्यक्त करवाया जाता है। राष्ट्रीय ऊष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पादन बनाए जाते हैं तथा उनका मूल्यांकन किया जाता हैं। ऊँट के दूध की क्रीम का त्वचा स्व–प्रतिरक्षित रोगों पर औषधीय प्रभाव भी देखा गया है।

निष्कर्ष– ऊँट का ताजा दूध तथा उससे बने उत्पाद शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए एक अच्छे जैव सक्रिय सहायक हैं। मवेशियों के दूध जैसे अन्य पशुओं की प्रजातियों के दूध की तुलना में ऊँट के दूध की जागरूकता एवं उसका उपयोग धीरे–धीरे बढ़ रहा है क्योंकि ऊँट के दूध से रक्षात्मक प्रोटीन, वसा युक्त अम्ल, सूक्ष्म खनिज तथा विटामिन–सी के समृद्व गुण मिलते है। वसायुक्त ग्लोबूल झिल्ली, जैव सक्रिय प्रोटीन तथा पेप्टाइड्स की विशेषता है। पनीर बनाने से जुड़ी समस्याओं को हल करने के लिए अम्ल तथा चिमोसिन एंजाईम द्वारा ऊँट के दूध में प्रोटीन जमावट पर कार्य भी जरूरी है। ताजा एवं किण्वित दूध अद्वितीय जैव सक्रिय पदार्थों के आधार पर उपभोक्ता को विशेष लाभ प्रदान करता है। ऊँट के दूध और उत्पादों के लिए आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर स्थान बनाने, अनुमानित स्वास्थ्य लाभों की पुष्टि करने तथा इस प्राकृतिक सहायक के गुणों की विशेषताओं को उजागर करने के लिए अधिक व्यापक शोध की आवश्यकता है। यह लेख आधुनिक ऊँट डेयरी एवं उत्पादों को विकसित करने तथा अनुसंधान में रूचि पैदा करने के लिए नए मार्ग प्रशस्त करने की आशा करता है।

मोबाईल एप्लिकेशन "जौ जानकारी"

सुमन लता, ए.एस. खरब, दिनेश कुमार एवं विष्णु कुमार
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ जानकारी, एक एंड्रॉयड एप्लिकेशन है जो किसानों को जौ की फसल के बारे में विस्तृत ज्ञान उपलब्ध करवाता है। जौ जानकारी किसानों तक बड़े पैमाने पर पहुँचाने के लिए इस ऐप को हिन्दी में बनाया गया है। किसान भाई, इसकी सहायता से अपनी जौ की फसल की भरपूर पैदावार ले सकते हैं। इसमें जौ फसल के विभिन्न पहलुओं जैसे उन्नत प्रजातियाँ, फसल प्रबन्धन, रोग एवं कीट प्रबन्धन, उर्वरक एवं खरपतवार प्रबन्धन पर प्रकाश डाला गया है। इस ऐप में न केवल फसल सलाहाकार, अकसर पूछे जाने वाले प्रश्न, जौ के स्वास्थ्य लाभ और घर में इस्तेमाल, शामिल हैं, बल्कि बाजार में वर्तमान फसल की दर, जौ के उपयोग के लिए वीडियो के साथ वर्तमान मौसम को भी शामिल किया गया है। इस मोबाईल ऐप में विशेषज्ञों से परामर्श और प्रतिक्रिया विकल्पों के माध्यम से किसानों और विशेषज्ञों के बीच वार्तालाप संभव किया गया है।

यह ऐप एंड्रॉयड पलेट्फॉर्म संस्करण 3.0.1 का उपयोग करके विकसित किया गया है और यह गुगल प्लेस्टोर (Google play store) पर स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है। इस ऐप में तृतीय पक्ष पुस्तकालयों के उप कार्यक्रमों का उपयोग करके गतिविधियों, टुकड़ों, और जहाँ भी आवश्यक हो वहाँ अनुमतियों और निर्भरताओं को जोड़कर विकसित किया गया है। इसे निम्नलिखित लिंक के माध्यम से डाउनलोड किया जा सकता है।

https://play.google.com/store/apps/details?id=berley.agriculture.berley

मोबाईल ऐप का मुख्य उपयोगकर्ता किसान है, इसलिए हमने इसे किसान की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने की कोशिश की है। वह प्रत्येक चित्र/शीर्षक को देखकर विकल्पों का निर्णय ले सकता है और एक क्लिक पर जानकारी प्रदर्शित की जाती है।

फ्रंट एंड के 12 विकल्प

- उन्नत प्रजातियाँ
- फसल प्रबंधन
- रोग और कीट प्रबंधन
- उर्वरक और खरपतवार प्रबंधन
- जौ प्रयोगशाला सुविधाएँ
- जौ वीडियो
- बाजार भाव
- मौसम का हाल
- साहित्य
- सामान्य प्रश्न
- स्वास्थ्य लाभ के लिए जौ उपयोग
- सलाहकार

बाईं ओर के मेनू पर 8 विकल्प प्रदान किए जाते हैं। यह ≡ को क्लिक करके प्रकट होता है आवश्यक विकल्प पर क्लिक करके उससे संबंधित जानकारी विस्तृत जानकारी मोबाईल स्क्रीन पर देखी जा सकती है।

बाएं तरफ मेनू के 8 विकल्प:

- होम
- जौ फसल के बारे में
- जौ के स्वास्थ्य लाभ
- अस्वीकरण (नियम और शर्तें)
- हमारे बारे में
- सामान्य प्रश्नें
- हमसे संपर्क करें
- बंद करें

चार विकल्प ऐप सभी स्क्रीन के नीचे (तल पर) दिऐ गए है:

- होम
- विशेषज्ञों से सलाह
- प्रतिक्रिया
- बंद करें

फसल के वर्तमान मूल्य के लिए बाजार भाव का विकल्प, दिनांक, माह और फसल (यानी जौ) जमा करने के लिए सरकारी साइट http://www.agmarknet.nic.in पर जाता है और मौसम का हाल के विकल्प पर यह याहू साइट से जुड़ा हुआ है। यह वर्तमान तापमान, आर्द्रता और स्थान के दबाव के बारे में भी जानकारी प्रदान करता है। जिसका नाम सबमिट किया गया है। उपयोगकर्ता इस ऐप के बारे में प्रतिक्रिया विकल्प के माध्यम से अपने सुझाव भेज सकते हैं, जिसे ऐप के अगले संस्करण में क्रियान्वित किया जा सकता है।

बायोडीजल उत्पादन

रेनू सिंह[1] एवं रूमा दास[2]

1 सी.ई.एस.सी.आर.ए.–आई.सी.ए.आर–आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली

2 मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान आई.सी.ए.आर–आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली

बायोडीजल का जीवाश्म ईंधन के एक उपयुक्त विकल्प के रूप में उपयोग किया जाने लगा है। इसका उत्पादन जैट्रोफा, सोयाबीन, कपास बीज, करंज, कॉर्न आदि के तेल, शैवाल जनित तेल, पुनर्चक्रित खाद्य तेल, चर्बी, पशु चर्बी या इन पदार्थों के विभिन्न संयोजन से होता है। इसके परिष्करण हेतु अपनाए गए उपायों में ट्रांसएस्टरीफिकेशन, तेल निष्कर्षण परिशोधन आदि शामिल हैं। इसका उत्पादन न्यूनतम लागत पर सामान्य जैवरासायनिक प्रक्रिया से किया जाता है। अतः बायोडीजल पुनर्चक्रित एवं नवीकरणीय दोनों होते हैं। उच्च दहन बिन्दु होने के कारण दुर्घटना की स्थिति में बायोडीजल जीवाश्म ईंधन से कहीं अधिक सुरक्षित भी है।

पौधों के तेल को ईंधन के रूप में उपयोग की अवधारणा नई नहीं है। रूडोल्फ डीजल जिन्होंने डीजल इंजन का अविष्कार किया है, उन्होंने 1895 में पहली बार पौधे के तेल से इंजन को चलाया था। सन् 1900 में पेरिस में हुई विश्व प्रदर्शनी में उन्होंनें मूँगफली के तेल को ईंधन के रूप में उपयोग करके इंजन को चलायमान करने का प्रदर्शन किया। सन् 1973 और 1978 के ऊर्जा की संकट अवस्था के पश्चात् जीवाश्म ईंधन डीजल को पौधों के तेल द्वारा प्रतिस्थापन करने का प्रयास किया गया, जो कि एक नवीकरणीय ईंधन का स्रोत है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप इंजन की संरचना में रूपांतरण किया गया ताकि पौधे के तेल को ईंधन के रूप में उपयोग करके इंजन को चलायमान किया जा सके। डीजल इंजन का उपयोग कार, ट्रक, बस, ट्रेन जनरेटर, एवं कृषि उपकरणों में होता हैं, ये सभी वनस्पति तेल द्वारा भी चल सकते हैं।

बायोडीजल एक पूर्ण प्राकृतिक, नवीकरणीय ईंधन है जो आसानी से पेट्रोल एवं डीजल के स्थान पर प्रयोग हो सकता है। जैव डीजल में न ही पेट्रोल और न ही कोई अन्य जीवाश्म ईंधन उपस्थित होता है एवं ये 100 प्रतिशत वनस्पतिक तेल आधारित ईंधन है। यूरोप में खेतों में हुई फसलों के तेल से जैव डीजल बनाया जाता है, जो कि विस्तृत रूप से डीजल वाहनों में उपयोग होता है। अनेक लाभों के कारण से जैव डीजल ने वैकल्पिक ऊर्जा का स्रोत के रूप में विश्वस्तरीय सर्वमान्यता प्राप्त की है। बड़ी संख्या में ठोस अवशिष्ट भराव क्षेत्र के लघुकरण के अतिरिक्त पर्यावरण अनुकूल ईंधन के द्वारा उत्सर्जित, धुए, विषाक्त गैसों एवं दुर्गंध में भी कमी आती है। इंजन पारम्परिक डीजल के बिना किसी अशोधन के, काफी अच्छी तरह से बायो डीजल ईंधन द्वारा चलायमान हो जाता है और ये पारम्परिक डीजल के साथ सम्मिश्रण होकर भी उपयोग में आते हैं, जिसके कारण से विषैली गैसों के उत्सर्जन में भी कमी आती है। जैव डीजल प्राकृतिक रूप से सड़नशील पदार्थ, विशाक्त रहित, अज्वलनशील ईंधन है, जिसका संभारण अन्य पारम्परिक पेट्रोलियम, डीजल ईंधन से अधिक सुरक्षित है। बायोडीजल, वेजिटेबल ऑयल, मिथाइल ईस्टर है और ये विभिन्न प्रकार के ईस्टर पर आधारित ऑक्सीकृत ईंधन है, जो सोयबीन एवं अन्य वनस्पतिक तेल या पशु वसा से बनता है। बायोडीजल का निर्माण वनस्पतिक तेल से ग्लिसरीन के रूप में ट्राइग्लिसराइड अणु के निष्कासन से होता है। जैसे ही वनस्पतिक तेल में से ग्लिसरीन का निष्कासन होता है, बचा हुआ शेष भाग पेट्रोलियम एवं डीजल के समान्तर होता है। बायोडीजल की रासायनिक एवं भौतिक विशेषताएं डीजल से भिन्न होती हैं। बायो डीजल में अत्यधिक सामान्य हाइड्रोकार्बन की श्रृंखला होती है, जिसमें न तो सल्फर और न ही जीवाश्म ईंधन के साथ संयुक्त ऐरोमेटिक अणु उपस्थित होते हैं। बायोडीजल लगभग 10 प्रतिशत ऑक्सीजन से बना होता है, जो इसे प्राकृतिक रूप से ऑक्सीजनित ईंधन बनाता है और पेट्रो–डीजल ईंधन की तुलना में विषाक्त गैसों को उत्सर्जन को लघुकृत करता हैः विविक्त कण को 40 प्रतिशत, अज्वलित हाइड्रोकार्बन को 60 प्रतिशत, कार्बन मोनो ऑक्साइड को 68 प्रतिशत, पोली साइक्लिक ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन पीएचए को 90 प्रतिशत इंजन की बनावट पर नाइट्रोजन के ऑक्साइड की वृद्धि एवं घटाव निर्भर करता है। बायोडीजल द्वारा पैट्रोलियम आधारित डीजल ईंधन का पूर्ण रूप से प्रतिस्थापन करने में असमर्थ होने के बावजूद भी बायोडीजल के विकास को औचित्य बताने के कुछ कारण निम्नलिखित हैः

1. वनस्पतिक तेल एवं पशु वसा के अत्यधिक उत्पादन हेतु बाजार की उपलब्धता।
2. बाहरी देशों से पेट्रोलियम ईंधन के आयात पर निर्भरता में घटाव।
3. बायोडीजल के संवृत कार्बन चक्र के परिणामस्वरूप भूमंडलीय तापक्रम वृद्वि में कमी।
4. बायोडीजल एक नवीकरणीय ईंधन है एवं इसके पूर्णचक्रण के अध्ययन द्वारा यह ज्ञात हुआ है, कि ये 78 प्रतिशत कार्बन डाइ ऑक्साइड के उत्सर्जन को लघुकृत करता है।
5. डीजल ईंधन की अपेक्षा बायो डीजल से कम मात्रा में कार्बन मोनोऑक्साइड तथा अज्वलन हाइड्रोकार्बन विविक्त कण का उत्सर्जन होता है।

ट्रांसस्टरीफिकेशन (Transesterification)

बायो डीज़ल का उत्पादन ट्रांसएस्टरीकरण प्रक्रिया द्वारा होता है।

H2C&OCOR* + 3ROH —(उत्प्रेरक)→ ROCOR + HC&OH + H2C&OCOR** + H2C&OCOR*** + ROCOR + H2C&OH

ट्राइग्लिसराइड फैटी इस्टर का ग्लिसरीन मिश्रण

उपयुक्त दिए गए समीकरण में आर$_1$, आर$_2$, आर$_3$= 15–21 कार्बन परमाणुओं वाली हाइड्रोकार्बन श्रृंखला है। जिसे वसा अम्ल की श्रृंखला फैटी एसिड चेन भी कहते हैं। सोयाबीन एवं पशु वसा में केवल पाँच श्रृंखला होती है। बायो डीजल के उत्पादन हेतु अधिकतर प्रक्रियाओं का विकास सन् 1940 में हुआ, जिसका मुख्य उद्देश्य सामान्य प्रक्रिया से साबुन के उत्पादन द्वारा ग्लिसरोल का निष्कर्षण था। युद्व के समय ग्लिसरोल का उपयोग विस्फोटक पदार्थ के निर्माण में अनिवार्य था। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा तेल एवं वसा को मिथाइल एस्टर में परिवर्तित करने से ग्लिसरोल का पृथक्कीकरण आसानी से हो जाएगा, क्योंकि ये एस्टर में अघुलनशील होते हैं। ग्लिसरोल अत्यधिक घनत्व के कारण आसानी से अपकेन्द्रीकरण द्वारा निष्कासित हो जाता है और ग्लिसरोल रहित मिथाईल एस्टर क्षार के साथ अभिक्रिया करके साबुन बना देता है। ब्रेडसॉ के प्रक्रिया के अनुसार 1–6 गुना एल्कोहल जैसे मिथनॉल जिसमें 0–1 से 0–5 प्रतिशत सोडियम या पोटैशियम हाइड्रोऑक्साइड उपस्थित हो तेल या पशु वसा में मिलाकर 80 सेन्टीग्रड पर रखना चाहिए। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 98 प्रतिशत एल्कोहल एस्टर और उच्च गुणों वाले ग्लिसरोल की प्राप्ति होती है। ब्रेडसॉ को इस प्रक्रिया के लिए एकस्य अधिकार प्राप्त हुआ और इस एकस्य अधिकार के अन्तर्गत ट्रांसएस्टरीकरण के बारे में निम्नलिखित प्रेक्षण सामने आए हैः

1. अभिक्रिया को पूर्ण रूप से सामाप्त होने के लिए 1–6 गुना से अधिक मात्रा में एल्कोहल की आवश्यकता होगी।
2. एल्कोहल की मात्रा को लघुकृत करने हेतु अभिक्रिया को विभिन्न चरणों में विभाजित करना होगा, जिसमें प्रथम चरण में एल्कोहल एवं उत्प्रेरक को मिलाया जाएगा और अंतिम चरण में ग्लिसरोल का निष्कासन किया जाएगा।
3. मिथनॉल की अपेक्षा अन्य एल्कोहल जैसे (इथेनॉल, प्रोपेनॉल, आइसो प्रोपेनॉल, ब्युटेनॉल, पेन्टनॉल आदि का भी उपयोग किया जा सकता है।
4. जल एवं मुक्त वसा अम्ल फ्री फैटी एसिड्स अभिक्रिया में अवरोध उत्पन्न करते हैं।
5. अम्ल उत्प्रेरक तेल एवं पशु वसा में उपस्थित मुक्त फैटी अम्ल को एल्कोहल एस्टर में परिवर्तित कर देता है। ट्राइग्लिसराइड का परिवर्तन मानक अल्कली उत्प्रेरक ट्रांस एस्टरीकरण स्टैडर्ड अलकली एंड कैटालाइज्ड ट्रांसएस्टरीफिकेशन अभिक्रिया द्वारा होता है।
6. तेल के ट्रांसएस्टरीकरण द्वारा एल्कोहल एस्टर की प्राप्ति हेतु अम्ल उत्प्रेरक का उपयोग होता है, परन्तु ये अल्कली उत्प्रेरक की अपेक्षा धीमी गति से कार्य को सम्पन्न करते हैं। यह देखा गया है, कि तेल में फॉस्फोरस की उपस्थिति से उत्पाद में कमी आती है क्योंकि एस्टर से ग्लिसरोल को पृथक करना काफी सीमा तक कठिन हो जाता है।

बायोडीजल के उत्पादन की प्रक्रिया

बायोडीजल विनिर्माण प्रक्रिया में तेल एवं चर्बी को मोनो एल्काइड इस्टस में परिवर्तित करना होता है। मोनो इल्काइड इस्टस नामक रासायनिक पदार्थ को ही बायोडीजल कहते हैं। इसके विनिर्माण की प्रक्रिया स्टरीफिकेशन भी कहलाती है।

बायोडीजल विनिर्माण प्रक्रिया में एल्कोहल, उत्प्रेरक एवं तेल को एक साथ ही रिएक्टर में डालकर 1 घंटे के लिए, 60 सेन्टीग्रड पर छोड़ देते हैं। छोटे स्तर के प्लांट बैच रिएक्टर का उपयोग करते हैं, जबकि बड़ी संख्या में उत्पन्न करने वाले प्लांट कन्टिन्युएस फ्लो वाली प्रक्रिया का अनुप्रयोग करते हैं। कभी–कभी अभिक्रिया दो चरणों में होती है। प्रथम चरण में लगभग 80 प्रतिशत एल्कोहल और उत्प्रेरक को तेल के साथ मिलाया जाता है, उसके पश्चात् अभिक्रिया द्वारा उत्पन्न वाष्प दूसरे चरण में जाने से पूर्व ग्लिसरोल के निष्कासन चरण से गुजरती है। बचा हुआ 20 प्रतिशत एल्कोहल एवं उत्प्रेरक इस रिएक्टर में लाते हैं। इस प्रणाली के द्वारा पूर्ण अभिक्रिया हो पाती है, जिसमें एल्कोहल की मात्रा भी कम लगती है जबकि एक चरण वाली प्रणाली में एल्कोहल अधिक लगता है।

ग्लिसरोल से पृथक होने के पश्चात् मिथाइल एस्टर निष्प्रभावीकरण चरण में प्रवेश के बाद मिथेनॉल स्ट्रीपर से गुजरता है। अन्य अवशिष्ट उत्प्रेरक एवं अभिक्रिया द्वारा बने साबुन के विभाजन को निष्प्रभावी करने हेतु बायोडीजल में अम्ल को मिलाया जाता है। साबुन अम्ल के साथ अभिक्रिया करके जल में विलयशील होने वाले लवण एवं मुक्त वसा अम्लों का निर्माण करता है। जल द्वारा धोने के चरण में और मुक्त वसा अम्ल जैव डीजल में ही उपस्थित रहता है तथा बचे हुआ उत्प्रेरक, साबुन, लवण, मिथेनॉल एवं मुक्त ग्लिसरोल का पृथकत्व होता है। बायो–डीजल से बचे हुआ जल का निष्कासन वॉल्यूम फ्लैश प्रक्रिया द्वारा होता है। सेपरेटर से निकलने वाली ग्लिसरोल में केवल 50 प्रतिशत ही ग्लिसरोल होती है, क्योंकि उसमें अत्यधिक मात्रा में मिथेनॉल, उत्प्रेरक एवं साबुन भी उपस्थित रहते हैं। ग्लिसरोल को परिशोधित करने के लिए अम्ल को मिलाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप साबुन को मुक्त वसा अम्ल एवं लवण में विभाजित किया जाता है। ग्लिसरोल में मुक्त फैटी एसिड के अविलयशील होने के कारण ये ऊपरी सतह पर आ जाते है, जिसको आसानी से निकाल कर उसका पुनः चक्रण किया जा सकता है। ग्लिसरोल में उपस्थित लवण वाष्प बनकर उड़ जाता है। मुक्त वसा अम्ल के अम्लीयकरण एवं पृथक्करण के पश्चात् ग्लिसरोल में उपस्थित मिथेनॉल का निष्कासन वैक्यूम फ्लैश प्रक्रिया या अन्य प्रकार के इवेपोरेटर द्वारा होता है। इस चरण में ग्लिसरोल की शुद्धता 85 प्रतिशत होती है और इसके पश्चात् ग्लिसरोल को वॉल्यूम आसवन अथवा आयन एक्सचेंज प्रक्रिया द्वारा 99–5 से 99–7 प्रतिशत तक शुद्ध किया जाता है। इस प्रक्रिया को आरेखीय अनुक्रम द्वारा आकृति 1 में दर्शाया गया है।

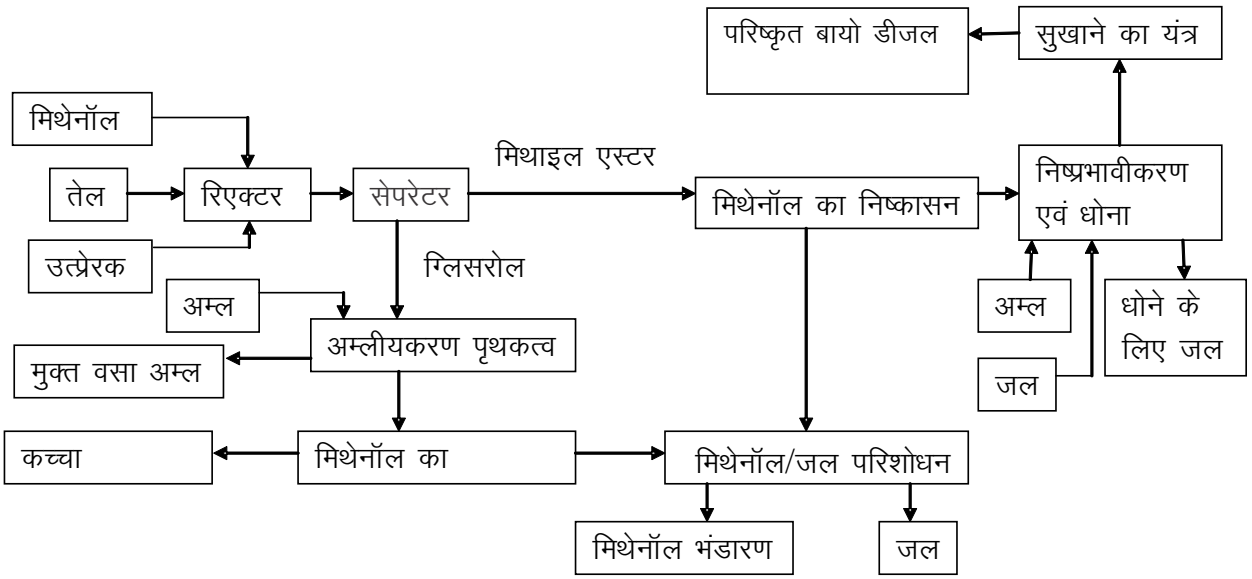

यदि तेल में सार्थक रूप से मुक्त फैटी एसिड की उपस्थिति हुई, तो विशिष्ट प्रकार की प्रक्रियाओं की आवश्यकता होगी। जैसे खाद्य सामग्री में उपयोग होने वाले तेल में मुक्त फैटी अम्ल की मात्रा 2–7 प्रतिशत पशु वसा में 5–30 प्रतिशत, निम्न स्तर के अनिर्मित सामग्री जैसे ग्रीस में लगभग 100 प्रतिशत होती है। जब एल्कली उत्प्रेरक को अनिर्मित सामग्री में मिलाया जाता है, तब मुक्त फैटी एसिड उत्प्रेरक के साथ अभिक्रिया करके साबुन और जल में विभाजित हो जाते हैं, जिसे नीचे दिए गए समीकरण में दर्शाया गया है

$$RCOOH + KOH \qquad K+O-C-R + H2O$$

फैटी एसिड पोटाशियम पोटाशियम का साबुन जलः

हाइड्रोऑक्साइड

यदि मुक्त फैटी एसिड की मात्रा 5 प्रतिशत से अधिक होती है तो साबुन, मिथाइल एस्टर एवं ग्लिसरोल के पृथक होने की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करता है और धोने की प्रक्रिया के दौरान पयस्य एमल्सन के निर्माण में योगदान देता है। अम्ल उत्प्रेरक जैसे सल्फ्यूरिक अम्ल से एस्टरीकरण द्वारा मुक्त फैटी एसिड को मिथाइल एस्टर में विभाजित करने की प्रक्रिया को नीचे दिए गए समीकरण में दर्शाया गया हैः

$$RCOOH + CH3OH \quad CH3COOR + H2O$$

फैटी अम्ल मिथेनॉल मिथाइल एस्टर जल

नई पीढ़ी के बायोडीजल

प्रथम पीढ़ी के बायोडीजल का निर्माण, जैसा कि उक्त प्रक्रियाओं में दर्शाया गया है, वनस्पति तेल, खाद्य तेल, चर्बी आदि से किया जाता है। द्वितीय पीढ़ी के बायोडीजल का निर्माण लिग्नो–सेल्यूलॉसिक जैव पदार्थ, लकड़ी, कृषि अवशिष्ट आदि से किया जाता है। शैवाल से परिष्कृत बायोडीजल को तीसरी पीढ़ी के बायोडीजल के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न अनुसंधान से बायोडीजल के परिष्करण की नई–नई प्रणाली विकसित करने की कोशिश हो रही हैं।

बायोडीजल के गुण

बायोडीजल के भौतिक और रसायनिक गुण पेट्रोलियम ईंधनों से कुछ अलग हैं। यह एक प्राकृतिक तेल है जो परंपरागत वाहनों से इंजन को चलाने में पूर्णतः सक्षम है।

इसके प्रयोग से निकलने वाला उत्सर्जन को प्रभाव नही छोड़ता क्योंकि इसमें धुआं व गंध न के बराबर है।

बायोडीजल पेट्रोल की अपेक्षा जहरीले हाइड्रोकार्बन, कार्बन–मोनोक्साइड, सल्फर इत्यादि से वायु को दूषित नहीं करता है।

बायोडीजल स्वास्थ्य और पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित ईंधन है।

यह सरल जैव निम्नीकृत, न समाप्त होने वाला, स्वास्थ्य और कार्य दक्ष ऊर्जा स्रोत है।

यह जैव ईंधन अज्वलनशील होने के कारण सुरक्षित है इसलिए इसके भंडारण और परिवहन में कोई खतरा भी नहीं है।

पेट्रोल व डीजल की अपेक्षा बायोडीजल बेहतर आंकटेन नम्बर देता है और यह गाड़ी के इंजन की आयु सीमा भी बढ़ा देता है।

बायोडीजल के उपभोग से प्रमुख लाभ

बायोडीजल में सामान्य अल्कोहल के फैटी एसिड ईस्टर्स उपस्थित होते हैं, जो दक्षतापूर्वक यातायात में उपयोग होने वाले डीजल ईंधन का प्रतिस्थापन कर देते हैं। ये दोनों ही उपयोगी है और इनका नवीन वनस्पतिक तेल एवं पशु वसा से उत्पादन होता है। यह एक नवीकरणीय संसाधन है जो हाइड्रोकार्बन, कार्बन मोनोऑक्साइड एवं कार्बन डाईऑक्साइड के उत्सर्जन को कम करते हैं।

बायोडीजल के उपयोग से निम्नलिखित लाभ हैं;

1. खनिज डीजल की अपेक्षा बायोडीजल की उत्सर्जन क्षमता उच्चतम होती है।
2. जहाँ भी पेट्रोल एवं डीजल का संग्रहण किया जाता है, वहाँ बायोडीजल भी रख सकते हैं।
3. प्रवर्तन क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डाले बिना, बायोडीजल का प्रचलित इंजन एवं फ्यूल इंजेक्शन उपकरण में उपयोग हो सकता है।
4. बायोडीजल स्वतः या किसी भी दर पर पेट्रोलियम एवं डीजल ईंधन के साथ सम्मिलित होकर भी उपयोग में लाए जा सकते हैं। सबसे सामान्य मिश्रण है 20 प्रतिशत बायो डीजल और 80 प्रतिशत पैट्रोलियम डीजल जिसको ''बी 20'' भी कहते हैं।
5. बायोडीजल 90 प्रतिशत कैंसर के खतरे को लघुकृत करता है।
6. बायोडीजल में भार के अनुसार 11 प्रतिशत ऑक्सीजन की उपस्थिति होता है, परन्तु सल्फर बिल्कुल नहीं होता है।
7. बायोडीजल के उपयोग से डीजल इंजन लम्बे समय तक अच्छी अवस्था में कार्य कर सकते हैं, क्योंकि ये पैट्रोलियम डीजल के तुलना में अधिक चिकने होते हैं।
8. बायोडीजल का सरलता एवं सहजता से स्थानान्तरण किया जा सकता है, क्योंकि ये शर्करा की तरह जैव निम्नीकरणीय है।
9. फारेनहाइटडीजल के उत्तेजना का समय उच्च (250 फारेनहाइट) होता है, जबकि पैट्रोलियम डीजल का (125 फारेनहाइट) उससे कम होता है और इसलिए बायोडीजल का संग्रहण करना अत्यंत सुरक्षित है।
10. घरेलू विधि द्वारा उत्पादित नवीकरणीय तेल के बीजों वाले फसलों से भी बायोडीजल बनाया जा सकता है।
11. डीजल इंजन में बायोडीज़ल के जलने से तले हुए आलू या पोपकॉर्न की सुगन्ध आती है, जो पैट्रोलियम या डीजल के जलने से दुर्गन्ध का प्रतिस्थापन करता है।
12. यह भारी वाहनों के लिए एक मात्र वैकल्पिक ईंधन है, जिसका वास्तव रूप सें एम.पी.जी. दर पैट्रोलियम डीजल की तरह है।
13. पैट्रोलियम डीजल की तुलना में बायोडीजल का उच्च सीटेन नम्बर, उसे उच्च इंजन उपलब्धि दक्षता प्रदान करता है।
14. अध्ययन द्वारा यह पता चला है, कि बायोडीजल की ईंधन उपभोगता, अश्व शक्ति (होर्स पावर) एवं घूर्णन (टोर्क) पारम्परिक डीजल से उत्तम होता है।
15. बायोडीजल को प्रमुख तरीके से चिकना बनाने वाली विशेषता के फलस्वरूप ये प्रकार्यात्मक इंजन की दक्षता को बढ़ाते हैं।
16. बायोडीजल के अणु सामान्य हाइड्रोकार्बन के श्रृंखला से बने होते हैं, जिसमें न ही सल्फर और न ही जीवाश्म ईंधन के साथ संयुक्त होकर ऐरोमेटिक पदार्थ उपस्थिति होते हैं।
17. बायोडीजल में अत्यधिक मात्रा में ऑक्सीजन के उपलब्ध होने के कारण हाइड्रोकार्बन का पूर्ण रूप से दहन हो जाता है।
18. बायोडीजल के उपयोग से मानव स्वास्थ्य वर पड़ने वाले पार्टिकुलेट मैटर के कुप्रभाव को कम किया जा सकता है।

निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को सूल

– भारतेंदु हरिश्चन्द्र

मिट्टी की तैयारी हेतु पावर चालित मशीनरी

[1]अनुराग पटेल एवं मुकेश कुमार सिंह[2]
[1]भा.कृ.अनु.प–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, नबीबाग, भोपाल–(मध्य प्रदेश)
[2]भा.कृ.अनु.सं.–कृषि अभियांत्रिक संभाग, पूसा–(नई दिल्ली)

किसी भी फसल की उत्पादन में प्रथम कार्य खेत की तैयारी होता है, इसमें मृदा को तैयार कर बीज की बुवाई के लिये शैय्या तैयार करते हैं। कृषि यंत्रों के प्रयोग तथा ऊर्जा खपत के सिद्धांतों द्वारा फार्म यंत्रीकरण में आज जुताई की एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। खेत की तैयारी हेतु पर्याप्त यन्त्र उपलब्ध हैं। भारतीय कृषि में ट्रैक्टर चालित जुताई यन्त्र के द्वारा यन्त्रीकरण सुविधाओं का अत्यधिक विस्तार हुआ है। भारत आज ट्रैक्टर उद्योग में विश्व की तुलना में सर्वोपरि स्थान पर पहुँच चुका है। सामान्यतः जुताई औजार जैसे, हल, कल्टीवेटर, हैरो या रोटावेटर प्रचलित यंत्र है। जुताई उपकरण के प्रयोग द्वारा पौधशाला में मृदा संरचना उचित रुप से तैयार हो जाती है। फसलों में आधुनिक भूमि समतलीकरण यंत्रों द्वारा भूमि समतल करके नर्सरी तैयार कर लेते हैं जिससे विभिन्न जल भराव की समस्यायें कम हो जाती हैं। वे क्रियायें हैं जो खेत में बीजों की बुवाई करने के पूर्व की जाती हैं जैसे खेत की जुताई करना, भूमि का समतल करना, खाद या उर्वरक को भूमि में मिलाना, पाटा लगाना आदि। इनसे मृदा की जुताई 15–90 सेमी. तक करते हैं। इसी प्रकार सब–सोयलर, चिजल प्लाऊ, रोटावेटर, रिजर, लेवलर तथा बेड मेकर आदि विशेष उद्देश्यों के लिए प्रयोग किये जाते हैं। परिशुद्ध खेती की महत्वपूर्ण आवश्यकता के लिए एवं उचित भूमि समतलीकरण के लिए ट्रैक्टर चालित लेजर लैण्ड लेवलर उपयुक्त है। विभिन्न ट्रैक्टर चालित यंत्र उपलब्ध है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

(क) मोल्ड बोर्ड हल

यह हल खेत की प्राथमिक जुताई के लिए उपयुक्त है। यह

मिट्टी को काटकर पलट देता हैं, जैसे खरपतवार को नष्ट करना, हरी खाद की फसल को मिट्टी में दबाना आदि। ट्रैक्टर चालित हल से 25–30 सेमी. गहरी जुताई होती है। इसके मुख्य भाग फार, मोल्ड बोर्ड, भूमि पार्श्व एवं फ्रोग हैं 1. फारकूंड की मिट्टी को काटने का कार्य करती है। 2. मोल्ड बोर्ड फार से मिट्टी पलटने और मिट्टी तोड़ने में सहायता मिलती है। हल की गति तथा मोल्ड बोर्ड के घुमावदार कोण से मिट्टी का पलटना तथा टूटना सम्भव हो पाता है। 3. भूमि पार्श्व बॉटम का निचला भाग है जो कूंड की दीवार से लगकर चलता है। मिट्टी काटने में जो दबाव पड़ता है, यह उसके विपरीत कार्य करके हल को सीधा रखने में मद्द करता है। 4. फ्रोग लोहे का बस एक भाग होता है, जिससे बॉटम के सभी भागों को आपस में जोड़ दिया जाता है। इसकी कोई विशेष आकृति नहीं होती है।

(ख) तवेदार हल

इस यन्त्र का प्रयोग प्राथमिक जुताई के लिए उन स्थानों में

उपयुक्त है जहाँ मिट्टी में कंकड़–पत्थर तथा अधिक खरपतवार हैं, या मिट्टी चिकनी व चिपकदार होती है। इस यन्त्र पर लगे हुये घुमने वाले तवे उपरोक्त दशाओं में मोल्ड बोर्ड हल की अपेक्षा अच्छा कार्य करते हैं। तवे मिट्टी को काटकर एक ओर गिराते रहते हैं। इसका सामान्य व्यास 60–70 सेमी. होता है और कटी हुई मिट्टी की फांक 30–50 सेमी. होती है। इससे जुताई के बाद ढेले तोड़ने नहीं पड़ते हैं, वे अपने आप टूट जाते हैं। प्रत्येक डिस्क एक अलग–अलग धुरी पर बेयरिंग की सहायता से घुमती है। इससे जोतने की गहराई को ट्रैक्टर की हाइड्रोलिक प्रणाली की मदद से बढ़ा या घटा सकते हैं। तवे के पीछे की ओर झुकाव कोण में फेर बदल करके भी गहराई में परिवर्तन हो सकता है। कम झुकाव कोण पर अधिक गहराई होगी। अगर हल में पहिया लगा है तो उसको भी ऊँचा–नीचा करने पर गहराई में परिवर्तन किया जा सकता है। जमीन कड़ी होने पर गहराई अधिक करने के लिए हल पर कभी–कभी अतिरिक्त भार भी रखना पड़ सकता है। डिस्क और टिल्ट कोण कोघटा एवं बढ़ाकर जुताई की चौड़ाई एवं गहराई बढ़ा सकते हैं लेकिन यह डिस्क कोण 42–45 डिग्री और टिल्ट 15–25 डिग्री कोण से अधिक या कम नहीं रखना चाहिए। अधिक कोण पर खींचने की शक्ति बढ़ती है और साथ ही कूंड की मिट्टी भी दूर फेंकी जाती है।

(ग) सब–सोयलर

आजकल भारी भरकम मशीनों का अधिक प्रयोग होने के कारण से खेत में लगभग 25 सेमी॰ से ज्यादा गहराई पर कड़ी परत बनती जा रही है। खेत की निचली सतह में इस तरह की कड़ी परत बन जाने की वजह से मिट्टी में पानी व हवा का आना–जाना कम हो जाता है। इस समस्या के समाधन के लिए सब–सोयलर है। सब–सोयलर लोहे का मजबूत 2.5 सेंमी॰ मोटा व 18 सेंमी॰ चौड़ा होता है जो फ्रेम में लगा होता है और इसके अगले सिरे पर शिन लगा होता है। शिन के निचले सिरे पर फाल लगा होता है जो सबसे पहले मिट्टी के अन्दर जाता है। सब–सोयलर को खींचने के लिए लगभग 45–50 अश्व शक्ति के ट्रैक्टर की जरुरत पड़ती है। यह यंत्र 70–80 सेंमी. की गहराई तक जुताई कर सकती है। इस मशीन के प्रयोग से ज्यादा गहराई तक की सख्त मिट्टी को तोड़ा जा सकता है। किसान 3–5 साल में एक बार सब–सोयलर द्वारा गहरी जुताई अवश्य करें।

(घ) कल्टीवेटर

इस यन्त्र का प्रयोग खेत की जुताई करने तथा खेत में खाद मिलाने के लिए किया जाता है। कुछ फसलों में निराई–गुड़ाई करने का काम भी कर सकते हैं। इसमें 7, 9, 11 या 13 टाईन लगी होती है जो स्प्रिंग–भारित होती हैं। हल्की भूमि में प्रथम जुताई तथा भारी भूमि में इसका उपयोग मोल्ड बोर्ड तथा हैरो से जुताई करने के बाद करना चाहिए। इससे ईंधन की बचत होती है। इससे प्रति घण्टा 0.4–0.6 हैक्टर जमीन जोत सकते हैं।

(ङ) डिस्क हैरो

यह ट्रैक्टर चालित द्वितीय भू–परिष्करण बहुदेशीय यन्त्र है। यह यन्त्र हल्की जुताई के लिए तथा खरपतवारों को काटता है, मिट्टी को काटकर ऊपर उठाता है और पलट देता है। डिस्क हैरो उच्च कार्बन इस्पात से बनी होती है और इनकी धार 5–7 सेंमी. तक होती है। इनके किनारे तेज होते हैं जो कि मिट्टी को काटते हैं। डिस्क साफ्ट में एक लाईन से लगे होते हैं और डिस्क के बीच में स्पूल लगा होता है जो डिस्क से डिस्क की दूरी बनाये रखता है। तवेदार समूह चलने की दिशा से एक कोण पर सेट किये जाते हैं। यदि यह कोण बढ़ाया जाये तो मिट्टी को काटने की चौड़ाई बढ़ जाती है। इसका वर्गीकरण इस बात पर निर्भर करता है कि तवेदार समूह आपस में किस प्रकार जुड़े हुए हैं।

(च) रोटावेटर

यह प्राथमिक भू–परिष्करण के लिए बहुद्देशीय यन्त्र है। रोटावेटर द्वारा फसल के अवशेषों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर जमीन में दबा दिया जाता हैं, जिससे अवशेषों का विघटन शीघ्र हो जाता हैं। यह खेत की मिट्टी को भुरभुरा बनाने में भी उपयोगी है। इस यन्त्र का उपयोग हरी खाद बनाने में भी होता है। इसका उपयोग गीली एवं सूखी दोनों तरह की भूमि को जोतने में किया जाता है, खासकर यह हल्की एवं मध्यम अवस्था वाली मिट्टी में चलने में पूर्ण सक्षम है। यह 10–15 सेमी. गहराई तक की मिटट्ी को मुलायम करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे एक बार की जुताई से ही खेत बुवाई के लिए तैयार किया जा सकता है। रोटावेटर को लगभग 40–50 अश्वशक्ति वाले ट्रैक्टर की पी.टी.ओ. द्वारा शक्ति दी जाती है। रोटावेटर की फालें अंग्रेजी के अक्षर 'एल' आकार की होती हैं। ये एक के बाद एक विपरीत दिशा में रोटर शॉफ्ट पर लगी होती हैं, जोकि ट्रैक्टर के पी.टी.ओ. शॉफ्ट द्वारा लगभग 210 आर.पी.एम.पर चलायी जाती है। यह मशीन एक बार में ही मिट्टी को

भुरभूरी तथा बुवाई योग्य बना देती है। इस यंत्र के पीछे मिट्टी को समतल करने के लिए एक लेवलर भी लगा रहता है जिससे मिट्टी भुरभुरी एवं समतल हो जाती हैं इसकी कार्य क्षमता 0.40 हैक्टर प्रति घण्टा है।

(छ) पावर टिलर

पावर टिलर द्वारा खेत की तैयारी, सिंचाई, निराई–गुड़ाई, अनाज की सफाई आदि में होता है। भारत में ज्यादातर किसानों के पास खेती के लिए ट्रैक्टर रख पाना मुश्किल है। पावर टिलर एक तरह का छोटा ट्रैक्टर है, जिसमें केवल 2 पहिए होते हैं।

और चलाने वाले को इसके पीछे–पीछे चलते हुए हैण्डिल द्वारा नियंत्रण करना होता है। पहिए व टिलर को ताकत इंजन से वेल्ट–पुली या गियरों के द्वारा मिलती है। हैण्डिल में क्लच होता है जिसे पावर टिलर को चलाया या रोका जा सकता है। छोटे खेत और पहाड़ों पर व धान की खेती में पावर टिलर बहुत ही कारगार है। यह न केवल जुताई करता है बल्कि खेत की मिट्टी को भी अच्छी तरह मिला देता है। इसका इंजन हल्के भार वाला मध्यम/हाई स्पीड वाटर कूल्ड 8–16 अश्वशक्ति का होता है। विभिन्न कृषि कार्यों में डीजल, आयल की खपत

1–1.5 लीटर प्रति घंटा होती है।यह एक दिन (8 घंटे) में लगभग 0.8 हैक्टर खेत की जुताई कर सकता है इसके द्वारा खेत की पडलिंग, निकाई–गुड़ाई, धान/गेहूँ की कटाई, पानी निकालने तथा भार की ढुलायी आदि कार्य कर सकते हैं।

(ज) लेजर लैंड लेवलर

लेजर लेवलर एक प्रमुख आधुनिक परिशुद्ध समतलीकरण यन्त्र है। यह परम्परागत विधियों से एकदम हटकर एक अत्याधुनिक तकनीक है, जिसमें लेजर में लगे किरणों के द्वारा लेवलर को अपने आप नियन्त्रित करके भूमि को बराबर मात्रा में समतल कर देते हैं। इस यन्त्र को चलाने के लिए एक प्रशिक्षित मैकनिक की आवश्यकता पड़ती है। यह यन्त्र 50–60 अश्वशक्ति के ट्रैक्टर की सहायता से चलता है। एक एकड़ भूमि को समतल बनाने के लिए कम से कम एक या डेढ़ घण्टा लगता है। ऊँचे–नीचे खेत में सिंचाई करते समय पानी खेत में पूरी तरह से समान रुप से नहीं फैल पाता है। इसके चलते खेत में कुछ जगहों पर खरपतवार पनपने लगते हैं और सभी पौधें व बीजों को सही अनुपात में पानी नहीं मिल पाता है जिससे पैदावार पर बुरा असर पड़ता है। लेजर लैण्ड लेवलर का इस्तेमाल कर किसान इस समस्या को दूर कर सकते हैं। यह सिंचाई जल की बचत करता है तथा सिंचाई दक्षता में सहायक है। लेजर लेवलर द्वारा सीमित जल स्रोतों द्वारा भी किसान सब्जी उगा सकते हैं। लेजर लेवलर के मुख्य भाग निम्नलिखित है; (क) लेजर ट्रांसमीटर (ख) लेजर (ग) रिसीवर नियंत्रण पेटी (घ) लेवलर

(झ) ट्रेसर ब्लेड

यह यन्त्र खेत की जुती हुई सतह को समतल करने में इस्तेमाल होता है। इसके ब्लेड को विभिन्न कोण पर समायोजित करके मिट्टी से मेंड़ आदि बनाई जा सकती हैं। यह ब्लेड छोटे एवं मध्यम अश्वशक्ति के ट्रैक्टर के पीछे लगाया जाता है। इससे मिट्टी उठाकर इधर–उधर नहीं ले जाई जा सकती है तथा इससे थोड़ी मात्रा में मिट्टी काटकर आस–पास के क्षेत्र में फैलाई जा सकती है। बुवाई के पूर्व लेवलर को चला देने से खेत एक सार हो जाता है तथा सिंचाई का पानी खेत में एक सार लगता है।

(ञ) स्क्रैपर

स्क्रैपर ट्रैक्टर के पीछे लगाकर चलाया जाता है। इससे भारी क्षमता में मिट्टी को काटकर और उठाकर किसी भी दूरी तक ले जाया जा सकता है और मिट्टी को जहाँ भी चाहें और जिस मात्रा में चाहें, फैलाया जा सकता है।

(ट) पल्वराइजिंग रोलर

यह लोहे की छड़ों से बना रोलर कल्टीवेटर के पीछे चलाया जा सकता है। कल्टीवेटर द्वारा जुती हुई भूमि को अधिक भुरभुरी बनाने में यह प्रभावी होता है। पल्वरजिंग रोलर में फ्रेम व भार देने वाले स्प्रिंग होते हैं। इसकी कुल लम्बाई व चौड़ाई कल्टीवेटर के नाप पर निर्भर करती है। कल्टीवेटर के साथ लगा रोलर खेत को जल्दी तैयार करता है। इसके

प्रयोग से 20–30 प्रतिशत से ऊर्जा की बचत होती है।

(ठ) बन्ड (मेंड) मेकर

यह यन्त्र आलू आदि की फसलों के लिए तथा कूँड बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। कूंड बनाने की गहराई या मेंड़

की ऊँचाई को ट्रैक्टर के हाइड्रोलिक प्रणाली की सहायता से घटाया–बढ़ाया जा सकता है। इसमें दो मोल्ड बोर्ड लगे होते हैं जिनमें से एक दाहिनी ओर एवं दूसरा बायीं ओर मिट्टी पलटता है। दोनों मोल्ड बोर्ड एक ही फ्रेम में लगे होते हैं। इससे मेंड़ या रिज बनाया जाता है तथा मिट्टी चढ़ाने का भी काम लिया जाता है। इनसे चौड़े मेंड़ तथा छोटी नालियाँ बनती हैं। इसके लिए फ्रेम में 150 सेमी. की दूरी रखी जाती है। यह ट्रैक्टर चालित यंत्र जुते हुए खेत में क्यारियों के मेंड़ या नाली बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(ड) रेज बेड

इस यन्त्र का प्रयोग विभिन्न चौड़ाई की बेड बनाने में होता है। कुछ फसल जैसे मक्का, कपास एवं सब्जियों आदि को बेड़ पर उगाने से सिंचाई की क्षमता प्रभावी होती है। जिससे फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

(ढ) पाटा

कभी–कभी खेत में जुताई करने के बाद भी ढेले बच जाते हैं। ऐसी अवस्था में इस यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। यह ऊँची–नीची जमीन को समतल करने, मिटटी को भुरभुरी

करने तथा खेत में उचित नमी बनाये रखने में सहायक होता है। यह लकड़ी का बना होता है और दोनों सिरों पर दो कड़ियों में जंजीर या रस्सी बांधकर इसे चलाया जाता है।

अधिक सूखी जमीन मे काम करने के लिए वजन की आवश्यकता होती है।

यंत्र का रख–रखाव

1. सभी मशीनों को टिन सेड में ही रखें।
2. नये यन्त्र को चलाने के दो घंटे बाद सभी नट बोल्ट कस लें।
3. प्रत्येक दिन कार्य से पहले मशीन की जाँच अवश्य करें।
4. हिच और टॉपलिंक पर ग्रीस अथवा आयल का प्रयोग करें।
5. समय–समय पर यंत्रों का संर्विसिंग अवश्य करा लें।
6. प्रत्येक कार्य दिवस के बाद मशीन की सफाई अवश्य करें।
7. गियर बाक्स में आयल लेवल की जाँच करें।

फसल की उत्पादन में प्रथम कार्य खेत की तैयारी है बीज की बुवाई से पूर्व खेत की तैयारी के लिए विभिन्न उन्नत यंत्रों का प्रयोग किया जाता है जैसे कि हल, कल्टीवेटर, रोटावेटर, हैरो, लेजर लैंड लेवलर, स्क्रैपर, पाटा आदि। इन सभी यंत्रों का प्रयोग कर बुआई के लिए मिट्टी को अच्छी तरह से तैयार किया जा सकता है। अच्छी बीज शैया होने पर बीज का जमाव अच्छा होता है और कम लागत के साथ–साथ उत्पादन भी अधिक होती है।

भारतीय कृषक व उन्नत आटोमेटिक डेरी प्रोसेसिंग

चित्रनायक, मंजुनाथ एम, महेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी एवं जितेन्द्र डबास
भा.कृ.अनु.प–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

दुग्ध उत्पादों की शेल्फ लाइफ

देश में प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता वर्ष 1991–1992 में 178 ग्राम/दिन थी वो बढ़कर अब वर्ष 2016–2017 में 355 ग्राम/दिन हो गयी है और साथ ही साथ दुग्ध उत्पादन में भारत पूरे विश्व में प्रथम स्थान पर पहुँच गया है। देश की प्रतिष्ठित राष्ट्रीय डेरी बोर्ड से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार देश में दुग्ध उत्पादन वर्ष 2016–2017 के 165.4 मिलियन टन से 6.6 प्रतिशत तक बढ़कर वर्ष 2017–2018 में 176.35 मिलियन टन तक पहुँच चुका है। पच्चीस वर्ष पहले देश में वर्ष 1991–1992 के दौरान दुग्ध का उत्पादन 55.6 मिलियन टन था जिसमें अब तीन गुने से अधिक की वृद्धि हो गयी है। देश में दुग्ध का उत्पादन व प्रतिदिन उपलब्धता में वृद्धि के साथ–साथ दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की उपलब्धता में भी समानुपाती वृद्धि देखने को मिली है। आज के दौर में बाज़ार में पहले की तुलना में बहुत ही अधिक प्रकार के दुग्ध उत्पाद उपलब्ध हैं। शोधकर्ताओं ने पाया है कि भारतीय जलवायु में खाद्य–पदार्थों में से खासकर गाय, भैंस अथवा मिश्रित दूध व दूध से बने उत्पादों की शेल्फ लाइफ सामान्यतः कम रहती है और सामान्य तापक्रम पर वे जल्दी ख़राब होने लगते हैं। दुग्ध व विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पादों में माइक्रोबियल काउंट मान को नियंत्रित करने हेतु इन्हें फ्रिज या रेफ्रिजरेशन तापक्रम पर रखा जाता है, ताकि माइक्रोबियल गुणन की गति न्यूनतम स्तर पर बहुत ही धीमी रहे। दुग्ध उत्पादों के साथ साथ हर खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ के दौरान मुख्यतः उनमें तीन प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ये तीन मुख्य परिवर्तन है–भौतिक, रासायनिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन। इन परिवर्तनों में से मुख्यतः रासायनिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन द्वारा खाद्य पदार्थों व दूध व दूध के उत्पादों की शेल्फ लाइफ प्रभावित होती है। इनके रंगों में भी इनकी गुणवत्ता के कारण परिवर्तन होता है, साथ ही साथ ख़राब होने के पश्चात् ये अपना प्राकृतिक सौन्दर्य खो देते हैं व इनकी गंध भी खराब होने पर आसानी से पहचानी जा सकती है।

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार यह पाया गया है कि चार डिग्री या चार डिग्री से कम तापक्रम पर दुग्ध, दुग्ध उत्पादों व विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में माइक्रोबियल गुणन की गति काफी धीमी या लगभग नगण्य रहती है, तत्पश्चात शोधों से यह भी सिद्ध हुआ है कि माइक्रोबियल गुणन की गति तापक्रम बढ़ने के साथ साथ तेजी से बढ़ती जाती है। अतः शोधकर्ताओं के समक्ष दुग्ध, दुग्ध उत्पादों व विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों की उत्तम गुणवत्ता को संरक्षित रखने हेतु उन्हें उचित तापक्रम उपलब्ध कराना है, जिससे ये चार डिग्री या उससे कम तापक्रम पर लम्बे समय तक संरक्षित व सुरक्षित रखे जा सके। शोध–पत्रों के अनुसार गाय के दूध में प्रति मिली लीटर माइक्रोबियल काउन्ट 105 से अधिक नहीं होना चाहिए, साथ ही साथ गाय, भैंस अथवा मिश्रित दूध में माइक्रोबियल काउन्ट का मान 105 प्रति मिली लीटर से कम होने पर ही इस दूध को उत्तम गुणवत्ता की श्रेणी में रखा जाता है व इसे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में स्वीकारा जाता है।

वर्षा पर कृषकों की निर्भरता व अतिरिक्त आय के श्रोतः पनीर उत्पादन

सूखे की हालत में बारिश पर कृषि की निर्भरता के कारण देश की इतनी बड़ी आबादी का पेट भरने वाले छोटे व मध्यम वर्गीय कृषक व उनके पूरे परिवार व पशुओं, यथा गाय–बैल, भैंस, बकरियों आदि की स्थिति बहुत ही दयनीय हो जाती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यह पाया गया है कि अभी भी देश में जब–जब अच्छी बारिश होती है तो कृषकों ओसत से कम होती है और जिस वर्ष वर्षा तो पूरी की पूरी फसल चौपट हो जाती है। आजादी के सत्तर वर्षों के बाद भी देश की लगभग 50 से 60 प्रतिशत से अधिक खेती प्रायः वर्षा के पानी पर ही आश्रित है। रबी की फसल की कटाई के पश्चात्, मई–जून माह से ही पूरे देश के कृषकों को प्रायः हर वर्ष बारिश का बेसब्री से इंतजार करना पड़ता है। देश के कई हिस्सों में बारिश की कमी से कई बार कृषकों की आय काफी कम हो जाती है और इस परिस्थिति में छोटे व मध्यम वर्ग के किसानों की स्थिति काफी दयनीय हो जाती है। ऐसी हालत में जिन कृषकों के पास अतिरिक्त आय के श्रोत होते हैं, जैसे पशुपालन, डेरी आदि वे इन परिस्थितियों का सामना अच्छी तरह से कर लेते हैं, परन्तु सिर्फ कृषि पर आधारित कृषकों की स्थिति दयनीय हो जाती है। आजकल मौसम की अनियमितताओं को देखते हुए यह लगभग आवश्यक सा हो गया है कि हर कृषक छोटा, मध्यम या बड़ा, सभी कोई न कोई अतिरिक्त आय का श्रोत भी खेती के साथ साथ अवश्य रखें। डेरी का विकल्प भारत के पर्यावरण के हिसाब से सर्वोत्तम है। गाय के दूध के साथ साथ पनीर, खोया आदि भी से भी कृषकों की आय में अच्छी वृद्धि संभव है। गाय के दुग्ध से निर्मित पनीर भारत ही नहीं पूरे विश्व में एक बहुत ही लोकप्रिय दुग्ध उत्पाद होने के साथ–साथ हमारे दैनिक आहार में उच्च गुणवत्ता वाले वसा, प्रोटीन, विटामिन, मिनरल, यथा कैल्शियम व फॉस्फोरस आदि का उत्तम स्रोत भी है। पनीर बनाने हेतु गाय अथवा भैंस अथवा मिश्रित दुग्ध से ऊष्म–अम्लीय विधि द्वारा छेना पृथक कर, छेना के पानी को छानकर अलग करने के पश्चात थक्के के रूप में प्राप्त किया जाता है। पनीर भारत में सबसे लोकप्रिय पारंपरिक दुग्ध उत्पादों में से एक है और इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की सब्जियों यथा, पालक पनीर, मटर पनीर, शाही पनीर, पनीर बटर मसाला, इत्यादि एवं स्नैक्स आइटम

जैसे, पनीर टिक्का, पनीर मसाला, पनीर भुर्जी आदि के रूप में बहुतायत में होता है। पनीर बनाने हेतु गाय अथवा भैंस अथवा मिश्रित दुग्ध को 90 डिग्री तापक्रम तक गर्म करके ऊष्म–अम्लीय विधि द्वारा छेना पृथक कर उसे जमने के लिए 2–3 मिनट छोड़ा जाता है। छेना के पानी को छानकर थक्के के रूप में पृथक कर छेना को श्वेत कपड़े में रखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त छेने को श्वेत पतले वस्त्र में लपेट कर छिद्र वाले हूप में रखकर 10 से 15 मिनट तक दबाया जाता है। इस दौरान तापक्रम 65 डिग्री तापक्रम से अवश्य ही अधिक होना चाहिए तभी अच्छी गुणवत्ता का पनीर बनता है। इस शोध कार्य में छेने को स्वचालन तकनीक द्वारा प्रेस करके पनीर बनाने की मशीन को विकास किया गया। इस मशीन का प्रयोग कर पनीर के कई नमूने प्राप्त किये गए व उनका गुणवत्ता मूल्यांकन किया गया। विकसित स्वचालन विधि वाले मशीन से बनाये गए पनीर व बाजार से प्राप्त किये गए देश के उत्तम ब्रांड के पनीर लिए गए व इन दोनों पनीर के नमूनों के सेंसरी गुणों की जांच विशेषज्ञों द्वारा व अन्य गुण–धर्मों की जाँच इंस्ट्रूमेंटेशन द्वारा प्राप्त की गयी। दोनों प्रकार के नमूनों की विस्तार से जाँच करने व इनके परिणामों की तुलना करने पर दोनों की गुणवत्ता में व अन्य अवधर्मो में कोई ख़ास फर्क नहीं पाया गया।

तालिका 1: पनीर का विशेषज्ञों द्वारा प्राप्त सेंसरी विशेषताएँ मान

सेंसरी विशेषताएँ	पी $_1$		पी $_2$		पी $_3$	
	टी $_1$	टी $_2$	टी $_1$	टी $_2$	टी $_1$	टी $_2$
रंग	7.50	8.00	7.00	8.20	8.00	8.50
बॉडी एवं टेक्सचर	7.86	7.28	6.00	7.80	7.50	8.00
फ्लेवर	8.21	7.57	7.50	8.00	8.00	7.50
कुल मिलाकर स्वीकार्यता	7.93	7.35	7.00	7.80	7.75	8.25

पी$_1$=7.6 किग्रा.बल; पी$_2$=10.8 किग्रा.बल; पी$_3$=14.13 किग्रा.बल; टी$_1$=20 मिनट; टी$_2$=30 मिनट

दूध उत्पादों में दही, पनीर, खोया आदि का उपयोग भारत में व अन्य देशों में बहुतायत में होता है। सामान्य तापक्रम पर पनीर लगभग एक दिन (24 घंटे) तक ही सुरक्षित रह सकता है, जबकि रेफ्रिजेरेशन तापक्रम पर पनीर को लगभग सात दिनों तक उत्तम गुणवत्ता की अवस्था में सुरक्षित रखा जा सकता है। भारतीय खान–पान व खासकर शाकाहारी लागों के लिए गाय या भैस के दुग्ध से बना पनीर ऐसा उपयोगी उत्पाद है, जो मुख्य आहार का अंग होने के साथ साथ आजकल हर होटलों, घरों, शादी–ब्याह या पार्टी में बहुतायत में उपयोग में लाया जाता है। पनीर में उपस्थित पौष्टिक तत्वों के कारण ये स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से भी बहुत ही फायदेमंद आहार है।

आटोमेटिक डेरी प्रोसेसिंग

हर उपभोक्ता पौष्टिक, स्वच्छ, उत्तम गुणवत्ता व स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से पूरी तरह सुरक्षित खाद्य पदार्थ ही बाज़ार से खरीदना चाहता है। अतः उपभोक्ताओं के साथ–साथ खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए भी खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता, उनका रख–रखाव आदि काफी महत्वपूर्ण होती है। हर खाद्य पदार्थ से जुड़ी इंडस्ट्री व कम्पनी भी अच्छी, पौष्टिक व उत्तम गुणवत्ता वाले उत्पाद मार्केट में लाकर अपनी साख बनाना व अपनी बनी हुई साख मार्केट में बरकरार रखना चाहती है। विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ व खासकर दुग्ध व दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता बरक़रार रखने हेतु उनमें होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएं, उनके माइक्रोबियल काउन्ट मान तथा उनके रख–रखाव व सफाई आदि पर काफी ध्यान रखना पड़ता है। खाद्य पदार्थों को खुले में रखने व बार–बार छूने से उनमें रासायनिक प्रतिक्रिया की दर व माइक्रोबियल संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। अतः बाह्य संक्रमण व बार बार छूने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए स्वचालन (ऑटोमेशन) तकनीक अपनाई जाती है। ऑटोमेशन तकनीक में मानवीय दखल कम हो जाती है व मशीन निर्धारित ढंग से सुरक्षित वातावरण में बिना किसी बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप के अपना कार्य सम्पादित करता है। इसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थों की सेल्फ लाइफ में वृद्धि होती है व इन्हें अधिक समय तक उत्तम गुणवत्ता के साथ संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है।

दुग्ध उत्पादों व पनीर से सम्बंधित शोध पत्रों में यह पाया गया है कि विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ खासकर दुग्ध व दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता बरक़रार रखने हेतु उनमें होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएं, उनके माइक्रोबियल काउन्ट मान तथा उनके रख–रखाव व सफाई आदि पर काफी ध्यान रखना पड़ता है। खाद्य पदार्थों को खुले में रखने व बार–बार छूने से उनमें रासायनिक प्रतिक्रिया की दर व माइक्रोबियल संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। अतः बाह्य संक्रमण व बार बार छूने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए स्वचालन (ऑटोमेशन) तकनीक अपनाई जाती है। ऑटोमेशन तकनीक में मानवीय दखल कम हो जाती है व मशीन निर्धारित ढंग से सुरक्षित वातावरण में बिना किसी बाह्य मानवीय भागीदारी व बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप व दखल मे कमी आने से मानवीय भूलों व गलतियों में तो कमी आती है साथ ही माइक्रोबियल संक्रमण की संभावनाओं में भी कमी आती है। गाय या भैंस के दूध से पनीर बनाने हेतु उपयोग में लाये गए दूध के प्रकार, उनमें उपस्थित प्रतिशत नमी, जल, वसा, प्रोटीन, लैक्टोज आदि की मात्रा पर ही पनीर का रासायनिक संयोजन व उसकी गुणवत्ता निर्भर करती है। गाय व भैंस के दूध में उपस्थित वसा की मात्रा से पनीर में भी वसा की मात्रा काफी हद तक प्रभावित होती है। साथ ही साथ इस विधि द्वारा प्राप्त मानों में निर्धारण करने वाले विशेषज्ञ की वर्तमान स्थिति के अनुसार बदलाव व विविधता भी पायी जाती है। इस कमी को दूर करने हेतु दूसरी विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के यंत्रों व ऑटोमेटिक यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। ये स्वचालित (ऑटोमेटिक) यन्त्र खाद्य पदार्थों में होने वाले हर प्रकार के परिवर्तनों का सटीक मूल्यांकन करके उनका सही मान देते हैं व इस प्रकार प्राप्त मानों में विविधता नहीं होती

है। इन यंत्रों द्वारा प्राप्त मानों को कंप्यूटर में सुरक्षित रखा जा सकता है। यंत्रों द्वारा स्क्रीन पर दिखाए गए मानों के द्वारा खाद्य पदार्थों में होने वाले रासायनिक, भौतिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन का सही मूल्यांकन संभव हो पता है व ये डाटा, ग्राफ, टेबल आदि के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं।

चित्र 1: पनीर प्रेसिंग हेतु स्वचालित मशीन का विकास

प्रसंस्करण व स्वचालन तकनीक द्वारा पनीर बनाने की प्रक्रिया

पनीर बनाने हेतु दूध को लगभग 90 से 95 डिग्री सेंटीग्रेड तक गर्म कर उसमें 2 से 3 प्रतिशत की मात्रा का सिट्रिक अम्ल का घोल, 70–75 डिग्री सेंटीग्रेड गर्म जल में बनाकर डाला जाता है। सिट्रिक अम्ल को घोल डालने पर दूध फटने लगता है व गरम छेना पृथक होने लगता है। पांच सात मिनट तक छेना के नीचे बैठने व पृथक होने के बाद इसे श्वेत पतले कपड़े से छानकर अलग कर प्रेसिंग मशीन में हूप में रखा जाता है।

ये भी ध्यान रखा जाता है कि प्रेसिंग से पूर्व छेना का तापक्रम 65–70 डिग्री सेंटीग्रेड से कम न हो। छिद्रित पनीर हूप में रखने के बाद डिजिटल टाइमर में समय का रिफरेन्स मान नियत कर कंप्रेसर ऑन किया जाता है। एफ आर एल यूनिट व सोलेनोइड वाल्व से होकर कंप्रेस्ड हवा न्यूमैटिक सिलेंडर को ऑपरेट कराती है व छिद्रित पनीर हूप के ऊपर दाब पड़ने लगता है। दाब का मान भी एफ आर एल यूनिट द्वारा स्वचालन विधि से नियत कर छेना के ऊपर लगाया जाता है। इस प्रकार छेना के ऊपर लगाने वाला दाब व समय दोनों को स्वचालन विधि नियत किया व पनीर के ऊपर लगाया जाता है। नियत समय के सोलोनोइड वाल्व का ऊपरी वाल्व बंद हो जाता है व नीचे का वाल्व खुल जाता है जिससे सिलिंडर ऊपर उठ जाता है व तैयार होकर पनीर हूप में प्राप्त हो जाता है, जिसे ठंढे जल में दो से तीन घंटे तक रखा जाता है, तत्पश्चात् इसे पैकिंग करके मार्केट में वितरित किया जाता है।

स्वचालन विधि द्वारा बने पनीर का गुणवत्ता मूल्यांकन

भारत के तटीय क्षेत्र, जहाँ मौसम सालो भर प्रायः गर्म व उमस भरा रहता है वहाँ खाद्य पदार्थों को उत्तम गुणवत्ता के साथ अधिक समय तक संरक्षित रखना पूरे खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए एक बड़ी चुनौती है। अधिक तापक्रम वाली जगहों पर दूध व दुग्ध उत्पाद भी बहुत ही जल्दी ख़राब होने लगते हैं। उत्तरी भारत के कई राज्यों में ठंड़ के मौसम में तो खाद्य पदार्थ आदि लम्बे समय तक उत्तम गुणवता के साथ संरक्षित रखे जा सकते हैं, परन्तु यह पाया गया है कि भारतीय मौसम में खासकर गर्मियों के मौसम में दुग्ध व अन्य खाद्य उत्पाद बहुत ही जल्दी ख़राब हो जाते हैं। गाय के दुग्ध व इनके उत्पादों की सेल्फ लाइफ बढ़ाना शोधकर्ताओं के लिए मुख्य कार्य है व इसके लिए कई तरह की तकनीकें अपनाई जाती हैं। दुग्ध व दुग्ध के उत्पादों के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ के दौरान इनमें होने वाले परिवर्तन मानों का मूल्यांकन व मापन मुख्यतः दो तरीकों से किया जाता है। पहली विधि में पनीर व खाद्य पदार्थों के गुणों का मूल्यांकन विशेषज्ञों द्वारा अपने अनुभव के आधार पर उनकी स्थिति देखकर, खाद्य पदार्थों की वर्तमान अवस्था यथा, रंग, गंध आदि देखकर किया जाता है, परन्तु इस विधि द्वारा प्राप्त मानों में अनेक प्रकार की विविधता होने की संभावना अधिक होती है व प्राप्त मान प्रायः सटीक नहीं होते हैं।

मानक विधि द्वारा पनीर का गुणवत्ता मूल्यांकन

स्वचालन विधि से बनाये गए पनीर प्रेस में तापक्रम मापने व देखने हेतु पी. आई. डी. कंट्रोलर व तापक्रम सेंसर भी लगाया गया है, जो पूरी प्रक्रिया के दौरान पनीर हूप का तापक्रम बताता रहता है। कंण्ट्रोल पैनल में लगे पी आई डी कंट्रोलर में पूरी प्रक्रिया का तापक्रम मान लगातार उपलब्ध होता रहता है। स्वचालन विधि से तैयार किये गए पनीर की गुणवत्ता की जांच की गयी, जिसमें नमी की मात्रा लगभग 50 से 58 प्रतिशत तक पाई गयी जो उत्तम क्वालिटी के पनीर में होती है। इनके पश्चात् टेक्सचर एनालाईज़र यन्त्र में डबल–बाईट परीक्षण कर पनीर के नमूनों के टेक्सचर गुणवत्ता मान प्राप्त किये गए। न्यूमैटिक सिलिंडर द्वारा पनीर प्रेस के ऊपर लगाने वाला दाब का मान 2.5 से 3.5 किलोग्राम/सेंटीमीटर 2 के मध्य उत्तम पाया गया व पनीर हूप के ऊपर ये दाब 10 से 15 मिनट की अवधि तक लगाया गया। पनीर नमूनों का हार्डनेस का मान जो तालिका–2 में दर्शाये गए हैं, लगभग 22 से 42 न्यूटन के मध्य पाये गये और ये मान पनीर की उत्तम गुणवत्ता हेतु आवश्यक हैं। स्वचालन तकनीक से बनाये गए पनीर के अन्य टेक्सचर गुण भी उत्तम गुणवत्ता के पाए गए। डिजाईन एक्सपर्ट सॉफ्टवेर द्वारा लैब में बनाये गए पनीर के नमूनों के प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर 3.45 किलोग्राम/सेंटीमीटर^2 का दाब व 13.15 मिनट का मान पनीर की उत्तम गुणवत्ता हेतु सर्वोत्तम पाए गए।

तालिका 2: टेक्सचर एनालाईज़र इंस्ट्रूमेंट द्वारा पनीर का फिजिको केमिकल मान

पनीर नमूनों का गुणवत्ता मान	2.5 किलोग्राम/सेंटीमीटर^2		3.0 किलोग्राम/सेंटीमीटर^2		3.5 किलोग्राम/सेंटीमीटर^2	
	10 मिनट	15 मिनट	10 मिनट	15 मिनट	10 मिनट	15 मिनट
नमी (प्रतिशत)	58.55	57.00	56.00	53.55	52.55	50.65
हार्डनेस (न्यूटन)	22.50	27.55	32.60	35.50	38.60	41.15
थोक घनत्व (किलोग्राम/मीटर^3)	1.08	1.10	1.12	1.16	1.34	1.47

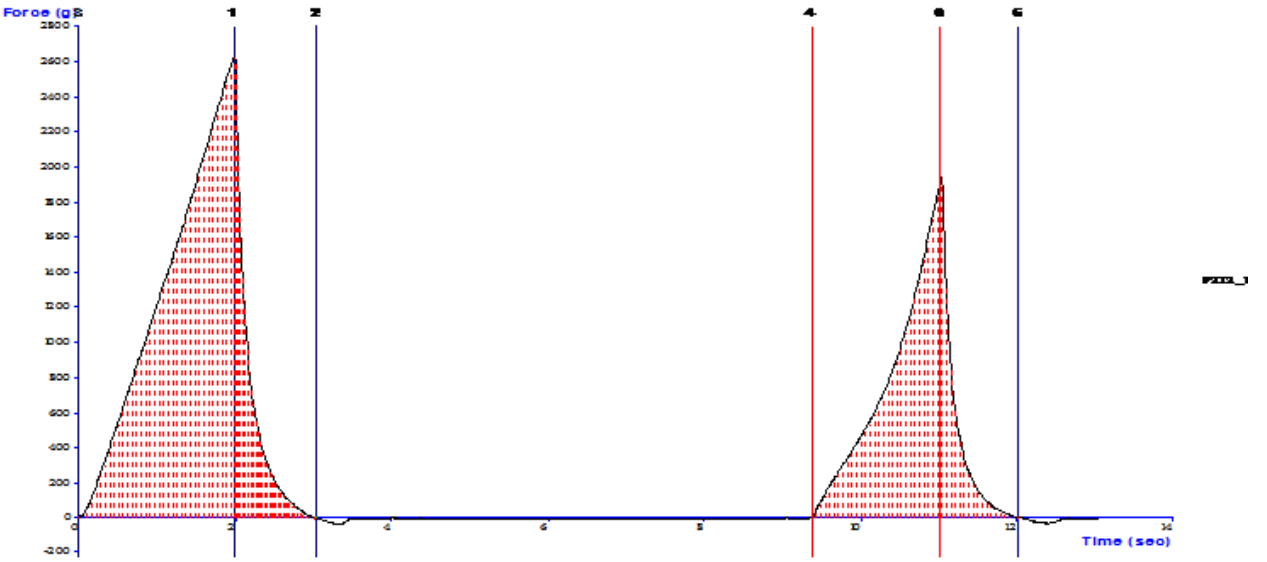

चित्र 2: टेक्सचर एनालाइसर से डबल–बाईट टेस्ट द्वारा पनीर का फ़ोर्स–टाइम ग्राफ द्वारा हार्डनेस मान

वर्तमान समय में फूड प्रोसेसिंग इंडस्ट्री का विकास काफी तेजी से हो रहा है और इनमें इस स्वचालन तकनीक का उपयोग कई वर्षों से हो रहा है और इनके द्वारा वे उत्तम गुणवत्ता के उत्पादों का उत्पादन करने में सक्षम हो पा रहे हैं। डेरी उद्योग भी स्वचालन तकनीक को अपनाकर इस दिशा में आगे बढ़ रहा है। देश के बड़े डेरी उद्योगों व डेरी फार्मों यथा, मदर डेरी, अमूल, वेरका, वीटा, सुधा, नंदिनी इत्यादि के विकसित प्लांटों में तो स्वचालन की तकनीक का उपयोग कई वर्षों से बहुतायत में होने भी लगा है, परन्तु छोटे व मध्यम स्तर पर अभी भी काफी कुछ करने की आवश्यकता है। बड़े व विकसित डेरी उत्पादों की पहुँच से अभी भी देश के कई भाग अछूते हैं और उन जगहों में स्थानीय स्तर पर छोटे व मध्यम स्तर के फार्म ही हैं जो स्थानीय स्तर पर उपभोक्ताओं की आवश्यकतों की पूर्ति करते हैं। इसलिए मध्यम वर्गों के कृषकों हेतु भी स्वचालन तकनीक की आवश्यकता है। कम व्यय में उत्तम गुणवत्ता के पनीर बनाये जा सकें तथा स्थानीय व लोकल स्तर पर उच्च गुणवत्ता के दुग्ध उत्पादों की आपूर्ति समय से पूरी हो इसके लिए पनीर प्रेस की तकनीक इन्हीं छोटे व मध्यम स्तर के डेरी फार्मों की जरूरतों के अनुसार विकसित की गई है। स्वचालन विधि से बनाये पनीर में मानवीय हस्तक्षेप कम होने के कारण इनका माइक्रोबियल काउन्ट मान कम पाया गया। मध्यम व छोटे कृषकों की अतिरिक्त आय का श्रोत बनने हेतु यह तकनीक उत्तम गुणवत्ता के पनीर व ऐसे अन्य कई उत्पादों हेतु उपयुक्त है।

लाभकारी आय हेतू उपयुक्त कृषि प्रणाली : वानिकी/कृषि वानिकी में महिलाओं का योगदान

पंकज कुमार सिंह एवं शिव मंगल प्रसाद
केन्द्रीय वर्षाश्रित उपराऊँ भूमि चावल अनुसंधान केन्द्र, हजारीबाग (झारखंड)

कृषिरेव महालक्ष्मी अर्थात् कृषि से बड़ा कोई धन नहीं, कोई लक्ष्मी नहीं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ कि करीब 64 प्रतिशत आबादी कृषि कार्यों में आज भी लगी हुई है। परन्तु प्रतिकूल पर्यावरणीय अर्थव्यवस्था, कृषि के बिगड़ते हालात एवं जनसंख्या का उच्च दबाव के कारण खाद्य समस्या बढ़ती जा रही है ऐसे में हमें वनों पर आधारित कृषि या कृषि के साथ–साथ वानिकी (यानी कृषि वानिकी) को अपनाना होगा तभी 125 करोड़ की जनसंख्या का भरण–पोषण संभव हो सकेगा।

जैसा कि हम जानते हैं कि झारखंड राज्य को 15 नवम्बर, 2000 को एक अलग परिस्थितिकी क्षेत्र की बेहतर योजना और विकास नीति विधियों के क्रियान्वन के लिए बिहार राज्य से 79 लाख हैक्टर भौगोलिक क्षेत्र को अलग करके बनाया गया। इस राज्य में लगभग 1.8 मिलियन कृषि योग्य भूमि है, जबकि वनों का कुल क्षेत्रफल 23605 वर्ग किलोमीटर है जो कि लगभग 29.65 प्रतिशत कुल राज्य की भूमि का क्षेत्र है जिसमें 82 प्रतिशत क्षेत्र सुरक्षित क्षेत्र में है वहीं 17.5 भूमि रिर्जव वन का क्षेत्र है।

हम अपनी आजीविका पर गौर करें तो झारखंड की करीब 80 प्रतिशत आबादी कृषि से अपनी जीविका चलाते हैं वो भी दुर्भाग्यवश अनेकों कृषि समस्याओं से जुझते हुए भी तीन वक्त रोटी जुटाने में असमर्थ हैं। ऐसे में कृषि वानिकी को अपनाना एक बेहतर विकल्प हो सकता है।

कृषि वानिकी में महिलाएँ अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं जैसे कि कृषि के साथ–साथ वानिकी में मुख्य रूप से बॉस की खेती जो न सिर्फ आय का एक मुख्य रूप स्रोत है जबकि थोड़ी सी श्रम, धन एवं लागत से मूल्य संर्वधन यदि किया जाए तो काफी मुनाफा अर्जित किया जा सकता है। बाँस आधारित कृषि वानिकी में लगभग सभी तरह की फसलें उगाई जा सकती है उदाहरण के लिए–उड़द, मूगँ, तिल, मुंगफली, गेहूँ, चना, हल्दी, अदरक इत्यादि। सबसे खास बात यह है कि बाँस की जड़े रेसेदार होती है जो मृदा संरक्षण भी करती है यह वायु अवरोधक का भी कार्य करती है। बाँस आधरित रोजगार में महिलाएँ स्वरोजगार कर सकती है। बाँस के बने घरेलू जरूरत का समान, खाद्य सामग्री के रखने के हेतू समान, घरेलू सजावट की वस्तुएँ इत्यादि। यहीं नहीं बाँस रोजगार स्वरोजगार, मृदा संरक्षण के अलावा चारा, जैविक उत्पादन (40 टन हैक्टर प्रतिवर्ष) के साथ–साथ कार्बनडाई ऑक्साइड के स्तर को अवशोषित कर लगभग 35 प्रतिशत ऑक्सीजन विसर्जित करता है।

यही कारण है कि आज बॉस लगभग 5 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार से जोड़ने में सक्षम हो रहा है। आज बॉस के अचार के साथ–साथ महिलाएँ बॉस से नूडल्स, कैंड़ी और पापड़ भी बना रही हैं।

ऐसी ही एक सफल गाथा है झाँसी निवासी, ग्राम हस्तिनापुर के श्री हरपाल सिंह की जिन्होंने वर्ष 2008 में अपने खेत की जोत के दो तरफ सिंचाई नाली के किनारे बॉस के 85 पौधे 4 मीटर के अंतराल पर उगाये। वर्ष 2012 में उन्हें बॉस कि बिक्री ने कुल अतिरिक्त आय के रूप में 1500 रु, वर्ष 2013 में 20,000 रू तथा वर्ष 2014 में 35,000 रू का अतिरिक्त लाभ हुआ। वर्ष 2015 में ओलावृष्टि एवं तेज हवा के कारण इनकी मुख्य फसल गेहूँ बर्बाद हो गई परन्तु बॉस की खेती से इनकी जिन्दगी में हरियाली बनाए रखा।

जिनकी मुख्य कृषि वानिकी की आधरित वृक्ष पोपलर है। गेहूँ के साथ इस वृक्ष का रोपण विशेष महत्व रखता है। 6–8 वर्षों में जिस समय जमीन से 1.37 मीटर की ऊँचाई पर तने की लपटे एक मीटर हो जाती है, यहाँ पेड़ काटने लायक हो जाता है। वर्तमान में एक पेड़ की कीमत 500–700 रू के लगभग है। इसकी लकड़ी माचिस, प्लाईवुड़ पैकिग के लिए बॉक्स, खेल का सामान बनाने में काम आता है। आज कई महिलाएँ भी स्वरोजगार के लिए प्लाईवुड़ इंड़स्ट्री एवं माचिस निर्माण में लगी हुई है।

गैर इमारती वनोंपज में आँवला को नकारा नहीं जा सकता है जिससे ग्रामीण महिलाएँ सदियों से स्वरोजगार के रूप में उपयोग करती आ रही है। जरूरत है इनमें मूल्य संवर्धन की ऐसा करने से पद्धति मुनाफा दोगुना से भी ज्यादा बढ़ सकता है। वर्तमान में इनकी खेती भारत में 50,000 हैक्टर क्षेत्रफल पर हो रही है। जिससे 2 लाख मीट्रक टन आँवले का उत्पादन हो रहा है। कई ग्रंथो में इसे अमृत फल की भी संज्ञा दी गई है। आज भी इसका उपयोग आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्वति की औषधियों में बड़े पैमाने पर किया जाता है।

कैंडी बनाना एक आसान प्रक्रिया है जिसकी सहायता से किसान विशेषकर महिलाएँ अपनी आय दोगुनी कर सकती है। त्रिफला, च्यवनप्राश तथा अमृतकलश ख्याति प्राप्त स्वदेशी आयुर्वेदिक औषधियाँ है जिनको बनाकर अच्छी आय अर्जित की जा सकती है। जबकि आँवला अन्य गैर इमारती वनों से प्राप्त उत्पादों में लाह एवं इमली भी ग्रामीण महिलाओं के लिए स्वरोजगार से जुड़कर आय प्राप्त करने का बेहतर विकल्प हैं। इसमें न सिर्फ अपना बल्कि देश का भी कल्याण निहित है।

उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकियों द्वारा टिकाऊ एवं सतत् कृषि

महेन्द्र सिंह कटियार, सरायप्रयाग, कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

मौजूदा समय में कृषकों द्वारा कृषि उत्पदान में परम्परात खेती की पद्धतियाँ एवं प्रौद्योगिकियाँ प्रयोग में लाई जा रही हैं, जो टिकाऊ एवं कारगर साबित नहीं हो रही हैं। यही नहीं इन अपनाई जाने वाली प्रोद्योगिकियाँ से में भी बढ़ोत्तरी नहीं हो पा रही है।

अतः अब प्रत्येक स्तर से चाहे सरकार, वैज्ञानिक, विचारक एवं अधिकांश कृषकों द्वारा यह अनुभव किया जा रहा है कि टिकाऊ एवं सतत् कृषि करने के लिए कौन–कौन सी पद्धतियाँ व प्रौद्योगिकियाँ अपनाई जायें जिनसे हम कृषकों की फसल उत्पादन में वृद्धि हो और आमदनी को बढ़ाई जा सके। मेरे विचार से निम्न प्रौद्योगिकियाँ अपनाने से इस दिशा में सार्थकता के साथ बढ़ा जा सकता है।

1. गर्मी में गहरी जुताई – कृषकों को मिट्टी पलटने वाले हल से मई–जनू में खाली पड़े हुए खेतों को दो बार मिट्टी पलट कर जुताई करना अति आवश्यक है। यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा और इसके द्वारा खरपतवार व बिमारियों पर नियंत्रण किया जा सकता है साथ ही मिट्टी में वायु का संचार बढ़ाकर मिट्टी की जल धारण क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। इसे ग्रीष्मकालीन जुताई भी कहते हैं।

2. हरी खाद एवं कम्पोस्ट खाद का प्रयोग – ढैचा, सनई, मूँग आदि को वर्षा के मौसम में वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था में खेतों में पलटकर मृदा की कार्बनिक दशा को सुधारा जा सकता है। इससे ही मृदा की भौतिक संरचना में सुधार एवं पोषक तत्त्वों की उपलब्धता प्राप्त कर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। यही नहीं साथ–साथ कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट व कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से भूमि की गुणवत्ता में भी सुधार कर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने से टिकाऊ खेती को बढ़ावा मिलेगा।

3. फसल अवशेषों को मृदा में मिलाना – फसल अवशेषों को खेतों में मिला देने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी। साथ–साथ यह प्रक्रिया पौधों की पैदावार में भी वृद्धि करेगी। कृषकों को फसल अवशेषों को खेतों में नहीं जलाना चाहिए।

एक अखल जलायेंगें, जन जन को समझायेंगें
धरती माँ के सीने पर आग नहीं लगायेंगे
अपनी मृदा के पोषक तत्वों को बचायेंगे

क्योंकि फसल अवशेषों को खेतों में जलाने से जीवाणुओं एवं पोषक तत्वों का विनाश होता हैं

4. फसल–चक्र का समुचित उपयोग – कई राज्यों में कृषक एक–दो फसलों को ही बार–बार उगाते हैं। पंजाब, हरियाणा, उतर प्रदेश, बिहार जैसे राज्यों में धान–गेहूँ फसल–चक्र को लगातार अपनाने से जमीन की उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। इससे उत्पादन घटता जा रहा है। दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करना अति आवश्यक है। मृदा की उर्वरता फसल उत्पादन के लिए जीवाणुओं की कार्य क्षमता को बढ़ाने में अह्म पहलू साबित हो सकता है। टिकाऊ खेती के लिए निम्न बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

- अधिक पानी वाली फसलों के बाद कम पानी वाली फसलों की बुआई करना।
- दलहनी फसलों का धान–गेहूँ फसल–चक्र में समावेशित करना।
- अधिक पोषक तत्व चाहने वाली फसलों के स्थान पर कम पोषक तत्व शोषण करने वाली फसलें उगाना।
- सहफसली खेती अपनाना।
- गहरी जड़ों वाली फसलों को उथली जड़ वाली फसलों की बुआई करना अति महत्वपूर्ण है।

5. टिकाऊ खेती के लिए स्वच्छ पर्यावरण हेतु सूक्ष्म जीवों व जैविक खादों पर आधारित तकनीक – आजकल किसान अधिकाधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग करने के होड़ में लगा हुआ है। अधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन घटता जा रहा है। इसलिए कृषकों को समय की मांग को देखेते हुए जैविक खाद व जीवाणु खाद का प्रयोग करना चाहिए।

मृदा की उर्वरता के लिए पोषक तत्वों की लगातार उपलब्ता बनाये रखना टिकाऊ कृषि के लिए आवश्यक होगा। पी.एस.बी. एजोटोबैक्टर, राइजोबियम, ब्यूबेरिया, बैसियाना, नीलहरित शैवाल आदि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यह सभी पौधों की जड़ों में असीमित जीवाणु उपलब्ध कराकर पादप वृद्धि में अपना असर दिखाते है। यह प्रक्रिया टिकाऊ कृषि का अभिन्न अंग है।

खाद्यान्न एवं दलहनी फसलों के बीजों का उपचार में पी.एस. बी. कल्चर, राइजोबियम कल्चर का प्रयोग 50 से 60 प्रतिशत तक नाइट्रोजन की बचत तथा 30 प्रतिशत तक सुपर फास्फेट की बचत देता है। यही नहीं 15 से 35 प्रतिशत तक उत्पादकता में वृद्धि भी पायी गयी हैं। साथ ही पादप वृद्धि अधिक होने से उत्पादन में 25 प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है। अतः कृषकों को टिकाऊ खेती के लिए इनका उपयोग करना बहुत ही फायदेमंद रहेगा।

6. बीज उपचार – जैसा कि मेरे द्वारा पीछे वर्णित किया जा चुका है कि जैविक बीज उपचार करने से कृषि में टिकाऊपन लाया जा सकता है। जैविक उपचार में कम लागत, फसल निरोग एवं अधिक उत्पादन देने में लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसके साथ ही साथ मृदा में नत्रजन स्थिरीकरण होने के कारण लागत में कमी आती है।

बीजोपचार द्वारा बीज अंकुरण में वृद्धि पौधों के विकास में वृद्धि, अधिक नत्रजन स्थिरीकरण एवं उच्च उत्पादकता प्राप्त होती है। बीजोपचार व उच्च उत्पादकता वाले बीजों का प्रयोग करने से लगभग 40 प्रतिशत अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता।

7. टिकाऊ खेती का आधार प्रत्येक क्षेत्र के मृदा स्वास्थ्य के अनुसार उच्च गुणवत्ता वाले बीजों को प्रयोग – उच्च गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का प्रयोग कृषकों के लिए टिकाऊ खेती में बहुत महत्वपूर्ण योगदान रखता है। कहावत है कि जैसा बोओ वैसा पाओ। समृद्व कृषि में बीज महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उन्नत किस्मों के बीजों के प्रयोग से अंकुरण में अनुकूलन परिस्थितियाँ प्राप्त होती है।

8. टिकाऊ खेती में जैविक कीटनाशी प्रबन्धन – जैविक कीटनाशकों के प्रयोग से फसलों पर किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं देखा गया। जैविक कीटनाशकों के प्रयोग का प्रभाव लम्बे समय तक देखा जाता है। इसके साथ–साथ वातावरण स्वस्थ्य रहता है और प्राणी मात्र पर किसी प्रकार का सेहत पर दुष्प्रभाव नहीं डालता है।

9. टिकाऊ खेती के लिए जलवायु पर आधरित उन्नतशील फसल प्रजातियाँ – टिकाऊ खेती के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान नई दिल्ली (पूसा) द्वारा राष्ट्रीय मिशन की शुरूआत की गई एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा अनुकुल रणनीतियाँ भी बनाई गयी। पूसा संस्थान के द्वारा जलवायु ''प्रति स्कन्दी तकनीक'' के आधार पर भारतीय कृषि में क्षेत्रों के अनुसार तथा जलवायु के अनुसार फसलों की प्रजातियों का चयन करने की कृषकों को सलाह भी दी गयी है। भारत वर्ष में कृषि व्यवसाय जोखिम से भर हुआ है। अतः कृषकों को फसलों की ऐसी प्रजातियों का चयन करना चाहिए जो कि उस क्षेत्र की जलवायु के अनुकूल हो और अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। जलवायु के अनुसार ही उन्नत प्रजातियों का प्रयोग टिकाऊ खेती का अंग होगा।

- किसानों द्वारा सूखा प्रतिरोधी किस्मों को उगाना।
- कृषि विविधीकरण पर किसानों को ध्यान केन्द्रित करना।
- फसल प्रबन्धन पर मंथन तथा ध्यान केन्द्रित करना।

आखिर में मैं चाहूँगा कि किसान संरक्षित कृषि पर भी ध्यान दें।

10. टिकाऊ एवं सतत् कृषि के लिए जलवायु को सहने वाली जल प्रोद्योगिकियाँः वर्षा पर आधारित'' क्षेत्रों में किसान तालाबों में संचित जल का उपयोग, भूमिगत पाइप लाइनों द्वारा सिंचाई, ड्रिप सिंचाई, रेनगन द्वारा छिड़काव प्रणाली आदि के द्वारा विभिन्न फसलों में पानी के उपयोग में बचत की जा सकती है। **''बचे हुए जल का पुनः प्रयोग''** पानी अभाव वाले क्षेत्रों में मल जल को शोधित कर सब्जी उत्पादन, फसल उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। और इससे लागत में भी कमी होगी और आय भी अधिक प्राप्त होगी। यह विधि टिकाऊ कृशि के लिए बहुत ही उत्तम साबित हुई है।

''सब्जी में उच्च तकनीकी ड्रिप सिंचाई तथा ड्रीप फर्टीगेशन'' ड्रिप सिंचाई के दो लाभ होते हैं। एक तो फसल की सिंचाई होती है तथा पानी के माध्यम से खाद एवं दवाओं को पौधों की जड़ो तक पहुँचाया जा सकता है।

''फव्वारा सिंचाई पद्धति'' इस विधि से कम पानी, कम समय, कम लागत, से टिकाऊ कृषि को रूप दिया जा सकता है। कइ प्रकार के स्प्रिकलर उपलब्ध है जिनमें आदि प्रमुख है।

पोर्टेबाल स्पींकलर, माइक्रो स्पींकलर, मिनी स्पींकलर एवं

रेन स्पींकलर

भारत सरकार इस ओर बहुत अधिक जोर दे रही है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के अन्तर्गत इन मदों पर कृषकों को अनुदान भी दिया जा रहा है। अतः किसान भाई इस सिस्टम को अपनाकर टिकाऊ कृषि कर सकते है।

''कम लागत कम दबाव वाली (ड्रम और बाल्टी) घरेलू ड्रिप सिंचाई प्रणाली'' भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (पूसा) के द्वारा यह प्रणाली विकसित की गई है। छोटे पैमाने पर कृषि उत्पादन जैसे गाजर मूली, धनिया, अगेती फूलगोभी, टमाटर में इसका उपयोग कर उत्पादन की लागत को कम किया जा सकता है।

11. टिकाऊ कृषि के लिए वातावरण समुत्थानशील शस्य तकनीकियाँ

- गेहूँ आधारित फसल प्रणाली
- धान आधारित संरक्षण कृषि फसल प्रणाली
- दलहनी फसल अवशेषों का गेहूँ आधारित फसल प्रणाली

12. समेकित कृषि प्रणाली

- उद्यान आधारित
- पशुपालन आधारित
- कृषि वानिकी आधारित प्रणाली

इस सम्बध में मेरी अपनी अवधारणा है कि जब तक भारतवर्ष का किसान कृषि को व्यवसाय उद्योग मानकर नहीं चलेगा और तब तक किसान प्रगति नहीं कर बढ़ सकता है। कृषि के साथ–साथ अन्य व्यवसाय जैसे; पशुपालन, मछलीपालन, कुक्कुटपालन आदि पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए ताकि आमदनी के नए–नए आयाम खुले और किसानो को आर्थिक समृद्धि मिले।

टिकाऊ खेती की प्रोद्योगिकियाँ

आनन्द कुमार ठाकुर गाँव–पटसारा, मुजफ्फरपुर (बिहार)

समुचित जल प्रबंधन तकनीकें

फसलों के उत्पादन में वृद्धि किसानो के हित में लगातार होना चाहिए। इसके लिए फसल उत्पादन बढ़ाने की तकनीकों की समुचित जानकारी तथा उनके खेतों पर उनका सफल अंगीकरण होना चाहिए।

फसलों की उचित समय बुआई सबसे महत्वपूर्ण है फिर फसल की अवस्थाओं के अनुसार उवर्रकों का प्रयोग, सिंचाई का समय एवं उचित मात्रा में पानी का उपयोग। बदलते मौसम के परिवेश में फसलों में सिंचाई–प्रबंधन के लिए नई–नई तकनीकों जैसे टपका विधि या फव्वारा विधि सिंचाई से अधिक से अधिक फसलों पर सिंचाई कर अपने समय के साथ–साथ पैसों की भी बचत कर सकते है। कृषि के उत्पादन में खासतौर पर जल संरक्षण पर पानी की उपलब्धता के आधार पर ही फसलों का चयन करें।

फसल–चक्र

मौसम के बदलते परिवेश में फसल–चक्र का बदलाव करना आवश्यक है जैसे कि खरीफ में धान की बुआई ऊपरी जमीन पर करें। हम धान की फसल की जगह अन्य फसल जैसे मक्का, अरहर आदि भी लगा सकते हैं।

समुचित मात्रा में कृषि आदानों का प्रयोग

कृषि वैज्ञनिको के सलाह आधार पर ही कीटनाशक, रोगनाशक, खरपतवारनाशक व अन्य रसायनों का उचित समय पर उचित मात्रा में प्रयोग करे। हम अपने खेत में कृषि–वानिकी के साथ अन्तवर्ती–खेती करके उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरण की भी रक्षा कर हम अपनी आमदनी को बढ़ा सकते हैं। कृषि में वानिकी में वृक्षों के पत्तों के सड़ने–गलने से खेती की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है।

बीज प्रबंधन

फसल उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण घटक बीज है। अच्छी गुणवत्ता का बीज उत्पादन को बहुत हद तक प्रभावित करता है। खेती में हमेशा उत्तम बीज (रोपण सामग्री) का ही प्रयोग करना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि बहुत से किसान भाई खुद का बीज प्रयोग करते है या फिर साथी किसानो से बीज लेते हैं। ऐसी स्थिति में अंकुरण की जाँच करना अनिवार्य हो जाता है। हमेशा उचित बीज दर का ही प्रयोग करें किसी भी स्थिति में बीज दर न बढ़ाए इससे उत्पादन कम हो सकता है बीज का उपचार अतिआवश्यक है ऐसा करने से बीज जनित बिमारियों से निजात मिल जाती है। आवश्यकतानुसार फफूंदनाशी, कीटनाशी व जैव उर्वरक से बीज उपचारित करें। गेहूँ के लिए एजोटोबैक्टर एवं पी एस बी से बीज शोधन करें। दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम कल्चर का प्रयोग करें। बीज उपचार पर खर्च बहुत मामुली आता है परन्तु उसके परिणाम बहुत अच्छे होते हैं।

कृषि वानिकी

खेती में उत्तम बीज का प्रयोग करने के साथ–साथ उत्पादन में काफी उत्पाद लाभकारी होता है। बीज की बिजाई (बुआई) समय पर करें, समय पर बुआई करने से उत्पादन में कुछ वृद्धि जरूर होती है। फसलों की खेती के साथ–साथ बागवानी फसलों, औषधीय फसलों, मशरूम की खेती, आदि द्वारा अपनी आमदनी में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ जोखिम प्रबंधन भी आवश्यक है। कृषि में सब्जी के विभिन्न तरह की मौसमी सब्जी का उत्पादन उचित तकनीकी द्वारा किया जा सकता है। इस संदर्भ में ग्रीन हाउस, पॉली हाउस, पॉली टनेल का जिक्र करना आवश्यक है। पॉली हाउस के लिए अच्छे बीज का चुनाव करें तथा अच्छी नर्सरी से पौधा खरीदें।

वार्षिक फलदार पेड़ जैसे आम, अमरूद, नीबू आदि का प्रयोग उपयोग को बढ़ावा देना भी बहुत जरूरी होता हैं। इससे किसानों की आय में वृद्धि होगी।

औषधीय पौधों के क्षेत्र के अनुसार आधारित जैसे–चिरैता, अलोवीरा, तुलसी, अश्वगंधा आदि का बड़े पैमाने पर खेती करके भी किसान लाभ कमा सकता है।

फूलों की खेती भी आज के समय की माँग को देखते हुए किसान भाई कर सकते है। फूलों में गेंदा, गुलाब, रजनीगंधा, जरबेरा, अमेरीकन लिली आदि की खेती शहर से सटे हुए गाँवों में की जा सकती है।

मशरूम उत्पादन भी छोटे एवं मंझोले किसानों के हित हेतु लाभकारी होता है। यह खेती बिना खेत की खेती होती है। जिसमें हम धान का पुआव–गेहूँ का भुसा आदि से भी हम मशरूम की खेती विभिन्न प्रभेदों के बीज से करके कृषि से हम लाभ ले सकते है। ज्यादातर बीज बटन–मशरूम, आयस्टर मशरूम फसल आधारित सर्व–खरीफ फसल की तरह उत्पादन कर सकते हैं। यह खेती पूर्ण रूपेन घर में ही की जाती है। इसमें प्रोटीन के साथ पौष्टिक तत्त्व होता है।

कृषि की वस्तु स्थिति को जानने के लिए किसानों से मिल जुलकर देखने की जरूरत है। ज्ञान पाने के लिए गुरू की ही आवश्यकता होती हैं इस बात को किसानो हमारे कृषि वैज्ञनिकों की भी जिम्मेदारी बनती है। इसी से हमारी कृषि एवं किसानों का भला हो सकता है। साथ ही कि वे सक्ष्म समय पर किसानों का मार्गदर्शन करते रहें।

राजभाषा खण्ड

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।

—मैथिलीशरण गुप्त

हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट

वर्ष 2018–19 के दौरान भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल के हिन्दी अनुभाग द्वारा अनेकों कार्यक्रम आयोजित किये गए जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

राजभाषा कार्यान्वय समिति की तिमाही बैठकें

इस संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चार तिमाही बैठकें (08.06.2018, 04.09.2018, 12.12.0218 तथा 12.12.2018 आयोजित की गई, जिनमें संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी की प्रगति पर चर्चा की गई। संस्थान की कार्यान्वयन समिति द्वारा सुझाये गये अधिकतम मुद्दों पर प्रगति सराहनीय रही।

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में प्रत्येक वर्ष की भांति वर्ष 2018 में भी **1–15 सितम्बर के दौरान राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा** का आयोजन किया गया। इस दौरान विभिन्न वर्ग के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए आठ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों व कर्मचारियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। हिन्दी दिवस के अवसर पर दिनांक 14.09.2018 को मुख्य अतिथि के रूप में आए डा. पी सी शर्मा, निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा सम्मानित किया गया।

तालिकाः हिन्दी ''राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा'' 2018 परिणाम के दौरान आयोजित प्रतियोगिताएं एवं विजेताओं की सूची।

विजेता का नाम	वर्ग	प्रतियोगिता का नाम	प्राप्त स्थान
श्रीमती सुमन थापा	कुशल सहायक कर्मचारी वर्ग	श्रुत लेख/सुलेख	प्रथम पुरस्कार
श्री अमन कुमार			द्वितीय पुरस्कार
श्री बीरु राम			तृतीय पुरस्कार
श्री हरिन्द्र कुमार			प्रोत्साहन पुरस्कार
श्री सुनील कुमार	वैज्ञानिक वर्ग	निबंध लेखन ''सशक्त भारत''	प्रथम पुरस्कार
श्री कृष्ण पाल			द्वितीय पुरस्कार
श्री प्रोमिला वर्मा			तृतीय पुरस्कार
श्री सुनील कुमार			प्रोत्साहन
श्री सुरेन्द्र सिंह	प्रशसनिक वर्ग	कविता पाठ	प्रथम पुरस्कार
श्री सुरेन्द्र सिंह			द्वितीय पुरस्कार
श्री रामकुमार			तृतीय पुरस्कार
श्री ओम प्रकाश			प्रोत्साहन पुरस्कार
श्री ओम प्रकाश	तकनीकी वर्ग	वाद–विवाद ''क्या किसानों की आय वर्ष 2022 तक दोगुनी हो पाएगी?''	प्रथम पुरस्कार
डा. रतन तिवारी			द्वितीय पुरस्कार
श्री सुरेन्द्र सिंह			तृतीय पुरस्कार
डा. संजय सिंह			प्रोत्साहन पुरस्कार

श्री ओम प्रकाश, डा. हनीफ खान, डा. रवीश चतरथ, श्री सतीश कुमार, डा. सी एन मिश्रा, डा. मम्रथा एमएच, डा. पुनम जसरोटिया,	सभी वर्ग	कृषि क्षेत्र में शोध पर पोस्टर प्रदर्शनी	प्रथम पुरस्कार
श्री ओम प्रकाश गुप्ता, डा. वनिता पाण्डेय, डा. स्नेह नरवाल, श्री तुषार खंडाले, रितू सैनी, विपिन कुमार मलिक, डा. सेवा राम			द्वितीय पुरस्कार
रितू सैनी, श्री तुषार खंडाले, विपिन कुमार मलिक, डा वनिता पाण्डेय, डा. स्नेह नरवाल, डा. ओपी. गुप्ता, डा.सेवा राम			तृतीय पुरस्कार
श्री सुरेन्द्र सिंह, डा. रेखा मलिक			प्रोत्साहन पुरस्कार
डा. रतन तिवारी	सभी वर्ग	आशु भाषण	प्रथम पुरस्कार
डा. विष्णु गोयल			द्वितीय पुरस्कार
डा. सेवा राम			तृतीय पुरस्कार
डा. ज्ञानेन्द्र सिंह			प्रोत्साहन पुरस्कार
डा. रतन तिवारी			प्रोत्साहन पुरस्कार
डा. विष्णु गोयल			प्रोत्साहन पुरस्कार

उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार 2018

प्रत्येक वर्ष की भांति वर्ष 2018 में भी राजभाषा हिन्दी में अधिकतर कार्य करने वाले कर्मचारियों को उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार से नवाजा गया। सभी वर्गों के लिए इस प्रतियोगिता के आयोजन का मुख्य उद्देश्य हिन्दी में काम–काज को बढ़ाया देना है।

नराकास करनाल का पुरस्कार

नराकास करनाल के अधीनस्थ सभी केन्द्रीय कार्यालयों/संस्थाओं को हिन्दी में उत्तम कार्य करने के लिए 2017–18 का पुरस्कार दिया गया जिसमें भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल को द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। संस्थान की ओर से प्रधान वैज्ञानिक व राजभाषा अधिकारी डा. अनुज कुमार ने 30 दिसम्बर, 2018 को राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में नराकास की छमाही बैठक में आयोजित समारोह में पुरस्कार ग्रहण किया। गेहूँ एवं स्वर्णिमा के नावें अंक में प्रकाशित ''कैसे होगी वर्ष 2022 तक किसानों की आमदनी दोगनी'' (अनुज कुमार, सेन्द्रिल आर, राज पाल मीना एवं जे.के. पाण्डेय) तथा किसानों की आमदनी दोगुनी करने की रणनीति (महेन्द्र सिंह कटियार) को उत्कृष्ट लेख पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इस प्रतियोगिता में चयनित दो लेखों के लिए 3000 रूपये प्रति लेख की नगद राशि दी जाती है।

कार्यशालाएँ

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में विभिनन रूप से कार्यशालाओं का आयोजन किया गया।

- **''योग का जीवन में महत्व''** के अवसर पर दिनांक 21.06.2018 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।
- **''राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा''** पर दिनांक 14.09.2018 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।

- **''स्वच्छता ही सेवा''** के अवसर पर दिनांक 15.10.2018 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया साथ ही स्कूली बच्चों को पर्यावरण को स्वच्छ रखने की लिए प्रेरित किया गया।

- **''कृषि शिक्षा दिवस''** के अवसर पर दिनांक 03.12.2018 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। जिसमें स्कूल के बच्चों को कृषि के प्रति रूझान बढ़ाने व भविष्य में व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया गया।

- **''कृषक वैज्ञानिक संवाद''** के अवसर पर दिनांक 24.02.2019 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा, 2018 के दौरान सम्पन्न गतिविधियों की झलक

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा, 2018 के दौरान सम्पन्न गतिविधियों की झलक

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

का ग्यारवाँ अंक (वर्ष 2019)

''कृषि वैज्ञानिकों, तकनीकों एवं कल्याणकारी योजनाओं का कृषि के समग्र विकास में योगदान'' विषय पर आधरित होगा।

उत्कृष्ट लेख पुरस्कार

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

नौवाँ अंक (वर्ष 2017)

1. कैसे होगी वर्ष 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी

अनुज कुमार, सेन्दिल आर, राज पाल मीना, जे.के. पाण्डेय

2. किसानों की आमदनी दोगुनी करने की रणनीति

महेन्द्र सिंह कटियार

कृपया अपने लेख 30 नवम्बर, 2019 तक भेजें

aunjp2001@gmail.com/ anuj.kumar1@icar.gov.in

पर kurti Dev10/16 में तथा फोटो JPEG प्रारूप में भेजें।

आर.आर.बी.सिंह
अध्यक्ष

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

भाकृअनुप
ICAR

प्रशस्ति-पत्र

गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी पत्रिका पुरस्कार

वर्ष 2016-17 के दौरान 'क' और 'ख' क्षेत्र में स्थित संस्थानों में से भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा प्रकाशित हिन्दी पत्रिका ''स्वर्णिमा'' को द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

दिनांक: 16 जुलाई 2018
नई दिल्ली

सचिव
(भा.कृ.अनु.प.)

महानिदेशक
(भा.कृ.अनु.प.)

सौजन्य से : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली